पगडंडियां

अंतर्भारतीय पुस्तकमाला

पगडंडियां

सी. राधाकृष्णन

अनुवाद

विनीता डोगरा

नेशनल बुक ट्रस्ट, इंडिया

भूमिका

कला के कई रूप होते हैं। उनमें विचार-विमर्श को सर्वाधिक स्थान देनेवाला कलारूप साहित्य है। वह विश्व और मानव अस्तित्व की व्याख्या करता है। इसके अतिरिक्त उनमें परिवर्तन लाने की भूमिका भी साहित्य ही निभाता है। इसी वजह से साहित्य सबसे प्रभावशाली कलारूप बन जाता है। कवि विश्व को अपनी कामना के अनुरूप तथा मानव अस्तित्व को अपनी इच्छा के अनुसार परिवर्तित करनेवाला स्रष्टा है। आनंद प्रदान करना उसका सामान्य धर्म है। इसके अतिरिक्त साहित्य अर्थ विधान के द्वारा अस्तित्व को परिवर्तित भी करता है। ईशावास्योपनिषद् की सूक्ति है— "यथातथ्यतोऽर्थानव्यदधान शाश्वतोभ्यः समाभ्यः"। काव्य धर्म की व्याख्या के दौरान प्राचीन भारतीय मनीषी इस काव्यलक्ष्य को नहीं भूले थे। यों वे साहित्य की प्रतिबद्धता के बारे में कदापि संशयात्मा नहीं बने थे। युगों के बीतने के बाद छंदबद्ध प्राचीन उपन्यास (महाकाव्य, पुराण बृहतकथाएं आदि) बाद में गद्य उपन्यास के रूप में बदल गये। प्रतिबद्धता इस नये युग की संकल्पना नहीं है। प्राचीन मानव के आख्यान और अतीत की कथाओं के वर्णन भविष्य की मनुष्य कथाओं को अवश्य प्रभावित करेंगे। इसे हम परिवर्तन से अभिहित करते हैं। कवि-प्रजापति के बारे में आनंदवर्धन का कथन है—"यथास्मै रोचते विश्वंनथेदं परिवर्तते।"

मलयालम की प्रथम पीढ़ी के उपन्यासकारों में चंतुमेनोन और सी.वी. रामन पिल्ले आते हैं। द्वितीय पीढ़ी के उपन्यासकारों में तकषी, बशीर, देव और ललितांबिका अंतर्जनम प्रमुख हैं। इन दोनों पीढ़ियों के लेखकों ने अतीत की कथाओं के द्वारा भविष्य के जीवन को अपने अपने ढंग से परिवर्तित करने की इच्छा प्रकट की थी आर्थिक और सामाजिक दासता, ऊंच-नीच के भेदभाव, पीड़ा तथा तकलीफों को कम करने के लिए दूसरी पीढ़ी के लेखकों ने कथा साहित्य को माध्यम बनाया था। किंतु तटस्थ दृष्टि से सोचनेवाले लोग तर्क नहीं करेंगे कि केवल दूसरी पीढ़ी के लेखकों ने प्रतिबद्धता पर बल दिया है। सारे अच्छे साहित्यकार जीवन में उत्कर्षोन्मुख परिवर्तन लाने की कामना करते हैं। हां, उत्कर्ष संबंधी उनके दृष्टिकोणों में अंतर हो सकते हैं। सी.वी. रामन पिल्लै ने सोचा था कि राजा के प्रति भक्ति, कानून और व्यवस्था का पालन सामाजिक मंगल के लिए आवश्यक गुण हैं। इस विचार के अनुरूप उनकी कृतियों में मूल्य उभर आये थे। राजाधिपत्य के स्थान पर सामाजिक आधिपत्य की प्रतिष्ठा होने पर कई परिवर्तन आयेंगे। कुछ परवर्ती लेखकों की कृतियों में ऐसे क्रांतिदर्शन से जुड़े मूल्य उभर आये। व्यक्ति की त्याग-मनोवृत्ति दोनों व्यवस्थाओं में बराबर महत्व रखती है। यों व्यवस्था संबंधी विचार के अनुसार मूल्यबोध भी बदलेगा। किंतु मूल्यों की पूर्ति के लिए साहित्य के दायित्व संबंधी विचारों में बुनियादी अंतर नहीं है।

परवर्ती पीढ़ी के कथाकारों की प्रतिबद्धता का रंग-ढंग कैसा था? अमीरों के खोखले

आधार, धार्मिक पाखंड, सामाजिक असमानता आदि इधर कायम हैं। इस प्रकार की पीड़ादायक शक्तियों से मुक्ति प्राप्त करना इस पीढ़ी के लेखकों का लक्ष्य बन गया था। शब्द-प्रयोग उनके लिए खड्ग-प्रयोग के समान था। इनके पीछे भी एक पीढ़ी आयी। इनमें से कुछ लेखकों की दृष्टि मानवीय परिस्थितियों के बाहरी स्तरों से हटकर आंतरिक स्तरों पर टिक गयी। यानी उन्होंने अपनी प्रतिबद्धता को अधिक ध्वन्यात्मक बनाया। सहज अनुराग के प्रवाह को कभी कभी धनबल रोक लेता है। साहित्यकार के मूल्यबोध में उसका मुकाबला करने की प्रबल कामना घुलमिल जाती है। कवि-प्रजापति का अंतर्मन-विघ्न को हटाना चाहता है। अनुराग-विघ्न के मानुषाकार को पात्र हटाना चाहता है। पात्र की उन्मूलन-कामना लेखक की कामना के रूप में अवतरित होती है। उरूब के उपन्यास 'उम्माचु' में एक प्रणय प्रसंग है। एक गरीब का प्रेम सफल नहीं होता है। उसकी प्रेमिका को एक अमीर हड़प लेता है। तब गरीब प्रेमी उस अमीर का उन्मूलन करता है। सहज प्रेम की सफलता के मार्ग में आर्थिक असमानता बाधा बन जाती है। इस जंजीर को तोड़ने की इच्छा प्रतीकात्मक अभिव्यक्ति बन जाती है। काम-भावना पाप का कारण है और आर्थिक असमानता खतरे का। यह तत्व भी कृति की ध्वनियों में शामिल हो जाता है। यों 'पगडंडियां' उपन्यास में भी अधिक दारुण और क्रूर घटनाओं का वर्णन मिलता है। **अथकेन प्रयुक्तोयम पापं चरति पूरष: ?** अर्जुन के इस प्रश्न का उत्तर कृष्ण ने दिया था कि रजोगुणसमुद्भव काम-क्रोध महापापकर्मों के कारण बन जाते हैं।

'उम्माचु' में एक हत्यारा है। काम-क्रोध ने उसे पाप करने की ताकत दी थी। 'पगडंडियां'' के हत्यारे की हालत कैसी है ? यहां निष्काम पुत्री-प्रेम हत्या का कारण है। क्रोध की गुंजाइश तक नहीं। स्नेह-कारुण्य भाव यहां पापकर्म को प्रेरणा प्रदान करते हैं। उपन्यासकार ने इसमें एक अजीब परिस्थिति का वर्णन किया है। यह गीतावाक्य का सुधार नहीं, पूरक है। इससे यह बात भी ध्वनित होती है कि स्नेह-कारुण्यादि भावों से प्रेरित उन्मूलन पापकर्म नहीं है। यह ध्वनि और भी व्यापक बन जाती है। जीवन बिताने लायक लोगों को जीने न देकर, दुख-दुविधाओं की अथाह खाई में धकेलनेवाली शक्तियां हैं। उनका उन्मूलन पापकर्म नहीं है। इस प्रकार वह एक सामान्य दर्शन के रूप में व्यापक बनता है। इस उपन्यासकार के अन्य उपन्यासों की भी एक अंतर्धारा के रूप में यह दर्शन आया है। समाज के समग्र उत्कर्ष पर केंद्रित प्रतिबद्धता की दार्शनिक नींव डालने में इस उपन्यास की देन महत्वपूर्ण है। 'उम्माचु' की ध्वनि यह है कि आर्थिक असमानता विपत्ति का कारण है। 'पगडंडियां' की ध्वनि यह है कि उन्मूलन सदा-सर्वदा पाप नहीं है। पाठकीय चेतना में यह ध्वनि हमेशा मुखरित हो उठेगी। यही उपन्यासकार की प्रतिबद्धता और सृजनात्मकता की खूबी है। इस प्रकार की प्रतिबद्धताएं उरूब की अन्य कृतियों में देख सकते हैं। पोट्टेक्काट्ट, वासुदेवन नायर, पद्मनाभन जैसे कथाकारों में भी यह द्रष्टव्य है। इन सारे लेखकों की सामान्य प्रवृत्ति यही है कि बाह्य स्तरों की अपेक्षा उनकी दृष्टि आंतरिक स्तरों पर केंद्रीभूत हो जाती है।

दूसरी पीढ़ी और उनके भी पीछे आये लेखकों की कृतियों के परिप्रेक्ष्य में श्री सी. राधाकृष्णन के उपन्यासों पर विचार करते समय कुछ उल्लेखनीय समन्वय बिंदु हमारे सामने उभर आते हैं। उनकी प्रतिबद्धताओं के कुछ नये आयाम दिखते हैं। सोशलिस्ट समाजवादी बाह्य व्यवस्था के साकार होने पर सारी समस्याएं समाप्त हो जायेंगी—इस प्रकार का मिथ्यामोह उनमें नहीं है। सोशलिस्ट रियलिज्म साहित्य सृजन का गंगा-वोल्गा संगम है। ऐसा विश्वास और इससे प्राप्त आश्वासन और सौभाग्य भी वे खो बैठे हैं। किंतु एक बात पर संदेह नहीं है—आर्थिक क्रांति आनी है। समत्व की व्यवस्था आनी है। इन दोनों लक्ष्यों की पूर्ति अविलंब होनी है। दूसरी पीढ़ी के इस दृष्टिकोण को इन्होंने अपनाया है। इतना ही नहीं, अधिक तीव्रता से उसे व्यंजित करने में वे निष्ठावान हैं। उनकी और एक पाबंदी है। सामाजिक जीवन का बाह्य स्तर व्यक्ति-चेतना के आंतरिक स्तर को न निगल ले। इस मामले में द्वितीय पीढ़ी के पीछे आये इस लेखक की शैली में अधिक तीक्ष्णता देख सकते हैं। सामाजिक जीवन के ऊंच-नीच, भेदभावनाएं, परतंत्रता, पीड़ाएं—ये सब मिलकर अस्तित्व-सत्य के चंद्रमा का एक अर्धगोला बनता है। व्यक्ति-चेतना का निगूढ़ स्तर दूसरा अर्धगोला है। दो अर्धगोलों के सत्यों को एक साथ दर्शानेवाले यांत्रिक दर्पण के रूप में राधाकृष्णन की कृतियों को देख सकते हैं। उनकी कृतियों में उनका समग्र चैतन्य द्रष्टव्य है।

मलयालम के कथा साहित्य को राधाकृष्णन ने एक और आयाम प्रदान किया है। पूंजीवाद, विज्ञान का विकास, विज्ञान के वरदान, प्रौद्योगिकी की व्याप्ति, उपभोग संस्कार की पकड़—ये सब नवयुग की समस्याएं हैं। इनको नवयुग के मनीषियों के विकासशील मनन की तरंग-दीर्घता के अनुसार प्रक्षेपण करने में वे समर्थ हुए हैं। उच्च शिक्षा प्राप्त विवेचनशील पाठकों के ध्यान को वे आकृष्ट कर सके हैं। अपनी कृतियों की ओर उन्हें वे खींच सके हैं। उन कृतियों में एक अजीब चुंबकीय शक्ति है। पहले इस श्रेणी के पाठकों को अपनी रुचि की पूर्ति के लिए अक्सर अंग्रेजी उपन्यासों की ओर मुड़ना पड़ता था। राधाकृष्णन ने इस स्थिति को बदल डाला। उन्होंने साबित कर दिया कि मलयालम के थन से दुहे गये दूध से भी अच्छा घी और चीजें बना सकते हैं। उनके पाठकों में उच्च तकनीकी शिक्षा-प्राप्त युवक ज्यादा हैं। प्रेम के जाल, गरीबी की तकलीफें और अमीरी की ज्यादतियां—सिर्फ इनको जीवन की समस्याओं का बुनियादी कारण मानकर राधाकृष्णन उपन्यास नहीं लिखते हैं। उनकी प्रमुख कृतियों में प्रेम अंगी न होकर अंग रस के रूप में आया है। इस युग ने रसराज के सिंहासन से शृंगार को निकाल दिया है। भले ही इस युग में राजाओं के अपने सिंहासन नष्ट हुए हैं तथापि अधिकार की लालसा ने उन सिंहासनों को हड़प लिया है। यह इस युग का विरोधाभास है। राधाकृष्णन के चार प्रमुख उपन्यासों में अधिकार-लिप्सा के संहारतांडव के शिकार बने लोगों की त्रासदी बिखरी पड़ी है। ये उपन्यास हैं—'चीते और रजत नक्षत्र' (पुल्लिपुलिकलुम वेल्लि नक्षत्रंगलुम), 'स्पंदमापिनियो! आभार' (स्पंदमपिनिकले नंदी), 'इधर सारे लोग सही सलामत हैं' (इविटे एल्लावरक्कुम सुखं तन्ने), 'आगे उड़ते पक्षी' (मुन्पे परक्कुन्ना पक्षिकल)। प्रेमकथाएं इनके दबे-पिसे

अवयव हैं। मलयालम के कुछ प्रमुख उपन्यासकार आज भी त्रिकोणप्रेम के इंद्रजाल से आकृष्ट होकर उस नयी दुनिया की तलाश में डूबे हुए हैं। इस बात को भूल नहीं सकते कि कभी-कभार कुछ उपन्यासकार कुछ नयी उपलब्धियां भी हासिल करते हैं। किंतु वैज्ञानिक अनुसंधान और तकनीकी ज्ञान ने मिलकर आज एक भीषण युग की सृष्टि कर ली है। यह युग विचित्र अक्षौहिणियों और व्यूह-विधान वाले नये कुरुक्षेत्र युद्धों को जन्म दे रहा है। इसको भली भांति समझनेवाला वैज्ञानिक जब उपन्यासकार बनेगा तब वह नरवर्ग के भविष्य के बारे में आकुल होकर सोचेगा। आर्द्रचेतना की घबराहट, उद्वेग, भय और आशंका की मनोवृत्तियां उनकी कृतियों में प्रतिफलित होंगी। उन ज्वालाओं को दर्शानेवाले पात्र एक ओर आयेंगे। उनकी कार्यशैली, विचार-पद्धति, दार्शनिक दृष्टि तथा उत्सर्गबोध को इन पात्रों के माध्यम से अभिव्यक्ति मिलेगी। लोभ, दुर्मोह, स्पर्धा, स्वार्थ और अधिकार-लिप्सा की तलाश में निकली निकृष्ट मानसिकता के पात्र भी दूसरी ओर आयेंगे। ये पात्र हथियार लेकर युद्ध-क्षेत्र में खड़े होते हैं। इस प्रकार के वैविध्यपूर्ण चित्र राधाकृष्णन के प्रमुख उपन्यासों में मिल सकते हैं। युद्ध के इन मैदानों में खून की बदबू से मुक्त हवा की तलाश करनेवाली एक आत्मा का सान्निध्य इन उपन्यासों में हमें प्रतीत होगा। स्वर्ग-द्वार के पक्षी के समान भड़कनेवाली इस अशांत चेतना की आंतरिक पीड़ाएं मलयालम उपन्यास के लिए एक नयी उपलब्धि है। इसने आज तक अप्राप्त, नवयुगधर्म के अनुरूप एक भाव-गरिमा मलयालम उपन्यास को प्रदान की है। इस भाव-गरिमा का एक अनूठा पहलू उसका अर्द्धनारीश्वर प्रभाव है। यहां स्त्री-मुख और पुरुष-मुख परस्पर पूरक बने हैं। राधाकृष्णन के पुरुष पात्र विशिष्ट गुण रखते हैं। रसोईवाली, धोबिन, झाड़ूवाली, रखैल और प्रसवयंत्र के रूप में सेवा निभाने वाली स्त्री को मां और कुटुंबिनी के लाड़ले नामों से पुकार-पुचकारकर सुलाना और उसके खून और चैतन्य को चूसकर अंतिम समय में थूक देना आम बात है। लेकिन राधाकृष्णन के पुरुष पात्र उस व्यवस्था के प्रतिनिधि नहीं हैं। उनके नारी पात्र भी उस व्यवस्था के निरीह शिकार नहीं हैं। वे नारियां आंसू में नहीं डूब मरतीं। वे आंसू के सागर में तैरकर सतह की शुद्ध हवा लेकर सिर्फ जिंदा रहने के लिए बल बटोरनेवाली भी नहीं हैं। उनके उत्तमांग फूल पहनती केश-राशि का अनहिला स्थान मात्र नहीं हैं। वे उसका उपयोग करती हैं और पुरुषों के समान सोचती हैं। वे अपने विचारों को पुरुषों के समान कथनी और करनी में प्रकट करती हैं। वे अपने व्यक्तित्व की खूबियां प्रकट करती हैं। वे नारी पात्र यह साबित करती हैं कि सावित्री (सी.बी.रामन पिल्लै के उपन्यास की) और इन्दुलेखा (चंतुमेनोन के उपन्यास की नारी) के वंशजों का सत्यानाश नहीं हुआ है। राधाकृष्णन की नारी पात्र इस बात की पुष्टि करती हैं कि केरल देश का हृदय एवं धमनियां मजबूत हैं। उरूब और वासुदेवन नायर जैसे लेखक पहले ही इस शक्ति के आकर्षण को चित्रित करते रहे। किंतु राधाकृष्णन ने अवतारकृत्य के समान स्त्री का चित्रण जागृति के प्रतीक के रूप में किया है। उनके प्रथम उपन्यास 'परछाइयां' (निषलघाट्टकला) को केरल साहित्य अकादमी का पुरस्कार मिला था। उसके तथा कुछ परवर्ती उपन्यासों के नारी पात्र आत्महत्या करती हैं। ऐसी स्थिति में राधाकृष्णन

के नारी पात्रों को समग्रता में जागृति का प्रतीक मानना कहां तक उचित होगा? हां, यह माना जा सकता है कि वे आत्महत्याएं अनिवार्य परिस्थितियों की साजिश की परिणतियां हैं। किंतु वहां इच्छाभंग और कायरता के निशान नहीं हैं। अपराधबोध के विषैले बिच्छू उन्हें काटते हैं और इसी स्थिति में वे मर जाती हैं। वे धैर्य से मृत्यु का वरण करती हैं। मृत्यु उनके लिए पलायन नहीं है। अप्रिय सत्य के चेहरे को वे आमने-सामने देखती हैं। अस्तित्व-भार को वे जीर्ण वस्त्र के समान छोड़ देती हैं। उनके देहत्याग को केवल स्त्री की परेशानी और पराजयों के परिणाम नहीं मान सकते हैं। उस मामले में भी वे पुरुषों के समान जीवन के बोझ का वहन करके दृढ़ता से आगे बढ़ती हैं। सामाजिक व्यवस्था की ओर पहले ही उड़कर आये पक्षियों के समान राधाकृष्णन के उपन्यास के स्त्री पात्रों को मान सकते हैं। चिरकाल से नीचे के स्तरों से चिपके पैरों के बंधन को तोड़कर राधाकृष्णन उन्हें पंख का बल और मुक्ति देने की कोशिश करते हैं।

मलयालम में लक्ष्यबोध और प्रतिबद्धता के साथ कई लेखक सृजनरत हुए हैं। उनमें राधाकृष्णन ने ही इस कर्म को एक तपस्या के रूप में निभाया है। उनकी कृतियां संख्या में अधिक हैं और हर कृति सार्थक भी बनी है। इस क्षेत्र में उनकी बराबरी के लेखक मलयालम में नहीं हैं। साहित्य सृजन को जीवन-यापन का मार्ग बनाने के लिए उद्यत थोड़े से लेखकों में राधाकृष्णन भी शामिल हैं। उनके अड़तीस उपन्यास प्रकाशित हुए हैं। उनमें छह उपन्यास एक ही परंपरा के हैं। उनमें अप्पु नामक एक पात्र कथावाचक के रूप में आता है। ये आत्मसंस्पर्श के उपन्यास हैं। सन् 1950 से सन् 1990 तक के चार दशकों में पले-बढ़े एक मनीषी के अनुभव, विचार-तत्वदर्शन, स्वत्व की खोज, लक्ष्य-बोध, समस्याओं के प्रति दृष्टिकोण, परिहार-मार्गदर्शन—सब इन उपन्यासों में भरे पड़े हैं। केरल के गांवों के सरल-शालीन परिवेश में ये छह बृहत उपन्यास उद्योग-धंधों की संकीर्णता, कृत्रिमता, कपटता, कांक्रीट वन के रंग-ढंग, गरम हवा आदि से मिले-जुले व्यावसायिक परिवेश तक की यात्रा के परिणामों की भीषणता के अनुभव हमें प्रदान करते हैं। 'शाकुंतल' में एक वर्णन यों मिलता है—कण्वाश्रम से निकले वैखानस तपस्विनी और आश्रम बालक नगर-सीमा में प्रवेश करते हैं। जब उन्होंने उधर कदम रखा तो उन्हें लगा कि वे जलते अंगारों पर पैर रख रहे हैं।

इस प्रकार की एक विपरीत दशा के चित्र और इतिहास का वर्णन राधाकृष्णन ने अपनी उपन्यास-परंपरा में किया है। यहां व्यक्ति, समाज, जननी-जन्मभूमि और मानवीयता के भविष्य के बारे में आकुल चेतना की प्रतिध्वनि 'अंजुली के पानी में सागर गर्जन' की तरह सुनायी पड़ती है। अप्पु के तत्वज्ञानी दादा ने इस उपमा का प्रयोग किया है। अगर ध्यान से सुनें तो अंजुली के पानी में सागर का गर्जन सुन सकेंगे (स्पन्दमापिनियो! आभार)। इसके लिए ध्यान देने का तरीका भी जानना है। तरंग की आवाज को पकड़ने की अंतरंग तैयारी भी आवश्यक है। 'नदी से नदी तक' (पुषा मुतल पुषा वरे) और 'सबको पोंछता सागर' (एल्लां मायक्कुन्ना कटल) दो बृहत् उपन्यास हैं। यहां उपन्यासकार गरीबी और तकलीफों के बीच पलकर बाल्यावस्था एवं किशोरावस्था को पार करने वाले अप्पु की कथा कहते हैं।

फिर अप्पु बड़ा आदमी बन जाता है। वह आग में तपकर धूप में न कुम्हलानेवाला आदमी बनता है। वह शक्ति अर्जित कर लेता है 'चीते और रजत रक्षत्र' (पुल्लिपुल्लिकलुम वेल्लिनक्षत्रगंलुम) में एक दूसरी स्थिति का वर्णन हुआ है। अल्प बुद्धिवाले लोग अधिकार के सिंहासन पर आरूढ़ हो जाते हैं। बुद्धिमानों को उनकी बेवकूफी ढोंग, वक्रता और अधिकार-लिप्सा से टकराना पड़ता है। उस समय की चोट और जख्मों की कथा इस उपन्यास में वर्णित हुई है। कभी-कभी बुद्धिमानों को बलि का बकरा सा बन जाना पड़ता है। 'स्पंदमापिनियो! आभार', उपन्यास में उन्होंने इसी भीषण स्थिति को उजागर किया है। मनुष्य की प्रतिभा को मिला वरदान है विज्ञान। वह भस्मासुर को मिले वरदान के रूप में न बदले, इसके लिए पीड़न-प्रताड़न और अधिकार केंद्रीकरण के उपकरण के तौर पर विज्ञान को अपनानेवाले नकली देवों का उन्मूलन आवश्यक है। उनके स्थान पर विज्ञान को मुक्ति का मार्ग बनाने वाले वैज्ञानिकों तथा दार्शनिकों को आगे आना चाहिए। इस प्रकार के पावन उद्देश्य से उपन्यासकार सृजनरत होता है। अच्छी फसल के लिए फालतू पौधों को उखाड़ना होता है। आदर्शवादियों की विध्वंस-योजना के पतन के चित्रण के जरिये उपन्यासकार संहार के तत्वशास्त्र में छिपे तमोगह्वर के रहस्यों को तलाशते हैं। यह उपन्यास सन् 1987 में केंद्रीय साहित्य अकादमी द्वारा पुरस्कृत हुआ। आतंकवादी गतिविधियों की जड़ों, मनोवैज्ञानिक सत्यों, दार्शनिक आयामों और अनिवार्य विपत्तियों का यह पर्दाफाश करता है। 'इधर सारे लोग सही सलामत हैं' (इविटे एल्लावरक्कुम सुखम तन्ने) उपन्यास का कथावाचक अप्पु है। वह वैज्ञानिक प्रगति, जनतंत्र और पूंजीवादी व्यवस्था के मिश्रण में डूब मरनेवाली मानवता के सामने एक गवाह के रूप में खड़ा रहता है। 'आगे उड़ते पक्षी' (मुन्पे परक्कुन्ना पक्षिकल) में भी इन्हीं तीन तत्वों के मिश्रण की बात आयी है। इस मिश्रण रूपी सागर की तह में छिपकर ओक्टोपस बैठा है। उसको मार डालने के लिए उद्यत यौवन का साहस पराजित होता है। अप्पु इस दृश्य का भी साक्षी बन जाता है। साक्षी बनने की हर घटना अप्पु के लिए आत्ममंथन का अनुभव है। यह मंथन अमृत दर्शन की सिद्धि को लक्ष्य करता है। अतिभौतिकता पर आधिरित अधिकार का केंद्रीकरण और बल का अहंकार शांति के द्वार कदापि नहीं खोल सकेंगे।

एक ओर अतिभौतिकता तथा उत्पादन-उपभोग शृंखला हैवानियत की भांति मानव के गले का फंदा बन जाती है। उसको नकारते हुए मानवता के बुनियादी अधिकारों का निर्वाह किया जाना चाहिए। इस आत्ममंथन के फलस्वरूप अप्पु को इस काम को निभाने लायक विज्ञान और प्रकृति से संतुलन को बनाये रखने का दर्शन मिल जाता है।

कहानी हो या उपन्यास, राधाकृणन की अधिकांश रचनाओं में वे मानव-मनोजगत के आंतरिक स्तरों पर घुसनेवाले 'गोप्रसर' (रश्मि या शब्द) हैं। 'पगडंडियां' (ओट्टयटिप्पातकल) उपन्यास को इस श्रेणी में विषय स्थान मिलता है। स्नेहसंपन्न पिता, पंडित और विधि-विशेषज्ञ न्यायाधीश—इस प्रकार का एक आदमी सबसे बड़ा अपराध, यानी हत्या करता है। और वह भी अपने पुत्र तथा अल्पबुद्धि वाले एक निरालंब की हत्या। जिस

उद्देश्य से वे हत्या करते हैं, बाद में उसका उल्टा परिणाम निकलता है। इसके साथ ही उसे अपराध का दंड मिलता है। वह पागल होने लगता है। एक निर्दोषी को अपराध का बोझ ढोना पड़ता है। यों यी एक संकीर्ण कथा है। 'सहयज्ञा' के रूप में सती पैदा हुई थी। जन्मजात रुचि के बल पर वह त्याग को भोग समझ लेती है। अपने अल्पबुद्धि भाई सुकु को छोड़कर सुख की तलाश में जाना और प्रेमदेव पुरुष के साथ जीना उसके लिए असंभव हो जाता है। त्याग ही उसका भोग है। पिता दृढ़ निश्चय लेते हैं कि बेटी के जीवन की बलि न दें। जिंदा रहें या मरें, एक ही हालत है। रुकावट को हटाना उनका कठिन कर्तव्य है। वे इस दायित्व को अत्यंत निपुणता के साथ निभाते हैं। किंतु बेटी सोचती है कि उसे पत्नी बनाने की लालसा रखनेवाले अनूप ने यह काम किया है। पिताजी को पता चलता है कि इस आघात ने बेटी की चेतना को चरमरा दिया है। फिर पिता भी विक्षिप्त हो जाते हैं। पिता की बीमारी का पता चलते ही सती के जीवन में एक नया लक्ष्यबोध आता है। अनूप के साथ आने वाले दांपत्य जीवन से उसे बचना है। अनूप को उसके अपराध का दंड भी देना है। सती इन उद्देश्यों की पूर्ति चाहती है। मृत्यु के वरण को उद्यत सती अपने विक्षिप्त पिता के लिए वात्सल्य भाव से पुन: जीवन की ओर उन्मुख होती है। सती को उसके स्वार्थ-त्याग का उचित फल मिलता है। विक्षिप्तता की ओर फिसलती नाजुक स्थिति में वह न्यायाधीश सारी बातें लिख डालता है। अपना अपराध उसकी परिस्थितियां, उसके पक्ष-विपक्ष के तर्क-सारी बातें उसमें आती हैं। अनूप को रहस्य का पता चलता है और वह पिता तथा पुत्री को उनके ग्रामीण परिवेश के घर में वापस पहुंचाकर विदाई लेता है। सिर्फ विदाई के समय वह कागज का बंडल सती को सौंप देता है। सती समझ जाती है। कि अनूप निर्दोष है। तपस्या के फलस्वरूप सती शिव का वरण कर सकेगी—इस उम्मीद की लाल रश्मि फैल जाती है और इस के साथ अवचेतन के आधिपत्य की रात की कथा समाप्त हो जाती है। मनोविज्ञान की अंतर्दृष्टि के साथ विश्वसनीय ढंग से किये इस कलाख्यान के सामने खड़ा होते समय हम 'अपराध और दंड' (Crime and punishment) उपन्यास की याद करेंगे। मनुष्य की योजना से परे अज्ञात शक्ति निरलंब मनुष्य को एक एक पगडंडी की ओर धकेलती है। हरेक को अपना रास्ता माप लेना है। कोई किसी को बचा नहीं सकता। डूब मरनेवाले को बचाने की कोशिश करनेवाला भी मरनेवाले की पकड़ में पड़कर खतरे में पड़ जाता है। यही न्यायाधीश की नियति है। वर्तमान की जीर्ण व्यवस्था बीत जायेगी और उसके स्थान पर नयी व्यवस्था का उदय होगा। मानवीय अस्तित्व में इस तरह की कई बोझ भरी समस्याएं आयेंगी। राधाकृष्णन के ध्यान में पड़े जीवन-सत्यों में वे पहलू भी शामिल हैं। देश, काल और वर्ग से मिले सत्यों में वह भी समाविष्ट है। इस कृति की जीवन-समस्या के सामाजिक आयाम का विश्लेषण पहले किया जा चुका है।

राधाकृष्णन के उपन्यासों के पात्र कच्चे मानव हैं। वे मात्र केरलीय या भारतीय नहीं हैं। उन्हें धैर्यपूर्वक किसी भी भाषा में ले चल सकते हैं। प्रांतीयता की सीमा-रेखाएं उनके सामने बाधा नहीं बनती हैं। यह मानव कथा के अनुगान का अनुपम ढंग है। यह तरीक़ा

राधाकृष्णन की रचनाओं को मानवीयता का मंदिर बनाता है। यह प्रतिपादन क्रम उनके स्वप्नों को उपास्य-मूर्ति के सामने अर्पित अर्चना का फूल बन जाता है। प्रतिबद्धता और कला सौंदर्य के पहलू मानवीयता की पीठ पर प्रतिष्ठापित हुए हैं। यह सत्य की वेदी पर शिव और सौंदर्य का योग है।

एम. लीलावती

एक

"हां या ना, दोनों में से एक तो कहो, सती!" अनूप अपने दोनों हाथ छाती पर बांधे तिरछा खड़ा हो गया। आवाज में पीड़ा और हल्की सी निराशा थी।

सती ने धीरे से आंखें उठायीं। अब तक वह सिर झुकाये खड़ी थी। पुराने बड़े मकान की छत पर संध्याकालीन मेघों से सूर्य की अरुणिम और मद्धिम रश्मियां पड़ रही थीं।

बाहर गेरुए रंग की सड़क थी, उससे पूमुरवम (बैठक) तक आती हुई पगडंडी के किनारे लगी बाड़ के समीप वे काफी देर से खड़े थे। घर के चौक और बैठक में कोई न था।

उमस भरा वातावरण! हवा भी जाने क्या सोचकर थम सी गई थी। बाड़ की दूसरी ओर खरपतवार छोटे छोटे रहस्यों की तरह खुश्क जमीन से लिपटे पड़े थे। अपने आप उगे देशी अरबी के पौधों में एक ऊंची उठी कोंपल ही अनजाने में आई हवा से हिलती रही। निश्चल पौधों और बेलों के बीच यही कोंपल एकमात्र जीवन की धड़कन थी। यह नन्हीं कोंपल, जो किसी की उंगलियों या दिलों से छेड़ी तान के बिना ही थिरक रही थी, सती और अनूप की नजर में नहीं आई।

वे दोनों अपने अपने विचारों की दुनिया में खोये हुए थे। और लंबी बातचीत के बाद भी किसी निष्कर्ष पर न पहुंचे अथवा काफी देर साथ चलकर बिछुड़ने में सकुचाते हुए व्यक्तियों की तरह खड़े थे। अगर बिछुड़ गये तो फिर कोई ठिकाना नहीं मिलेगा, मानो यह बात दोनों अच्छी तरह जानते थे।

अनूप की नजर घूमकर सती पर आ टिकी। उसकी हल्की हरी धारीदार साड़ी के पल्लू पर एक काली चींटी थी। शायद ऊपर फैले आम की टहनियों से गिरी होगी। उसके घने, लंबे, रूखे और अनसंवरे केशों में बीच से मांग निकली हुई थी। केशों का गुंथा हुआ निचला हिस्सा कमर तक झूल रहा था।

सती के हाथ में बगीचे से उठाये हुए नारियल के कुछ छोटे फल थे। दाएं हाथ में जकड़े उन कच्चे नारियलों पर वह बाएं हाथ की उंगली घुमा रही थी।

छाती पर बंधे हाथ खोलकर उन्हें मसलते हुए लंबी सांस भरकर अनूप ने बोलने की कोशिश की, "या तो . . . . . . "

तब तक सती की नजरें अनूप की आंखों से मिल गयी थीं। वे ऐसे भरी हुई थीं, मानों किसी भी क्षण छलक पड़ेंगी।

शुरू की हुई बात को अनूप पूरा नहीं कर सका। उसके बजाय सती के कंधे पर रेंग कर पहुंची काली चींटी को उसने झटक दिया।

सती हल्के से चौंक गयी। साथ ही उसकी दाहिनी आंख से आंसू भी छलक पड़े। पल्लू के छोर से उसने दोनों आंखें पोंछीं, माथे पर झूल आए केश झटके से पीछे किये और हिम्मत बांधने की कोशिश में अपने पतले होठों को भींचकर मुंह फेर लिया। अपने आपको संभालने की भरसक कोशिश कर रही थी वह।

अनूप उसकी सभी भाव-चेष्टाओं को भली भांति जानता था और उन्हें पसंद भी करता था। वह जानता था कि इस समय सती के मन में क्या है और अनूप के मन में क्या है, सती भी यह जानती थी। उन दोनों के हृदय बराबर भरी और परस्पर मिली हुई दो झीलों की तरह थे। परंतु प्रकट में किनारा तोड़कर एक से दूसरे में बहने लायक कुछ भी नहीं था। जब लहरें उठती हैं तब दोनों ओर से उमड़कर प्रेरणाओं के कंधों पर डोलती हैं और आपस में लिपटकर छितरा जाती हैं। कभी चुपचाप, कभी मुस्कुराहट बिखेरते हुए।

बीच बीच में तितर-बितर होकर लंबे निःश्वास बुनकर लौटती लहरों के अवशेषों की जुगाली कर दोनों मौन धारण किये हुए थे।

हल्ला-गुल्ला करते, आपस में लड़ते-झगड़ते बड़े हुए थे वे। उन दिनों वे एक-दूसरे को इतना नहीं जानते थे। जानने लगे तो दोनों के बीच लाज रोड़ा बनकर आ खड़ी हुई। लाज की पहली सीमा को पार कर जब वे एक-दूसरे को पहचानने लगे, तो अपनी बात कहने में असमर्थ हो गये। लेकिन यहीं यह भी हुआ कि अब वे बिना बोले ही दिल की बात समझने लगे।

अनूप आज एक जिम्मेदार अफसर है और सती विशाल और उदारहृदया स्वामिनी होते हुए भी कठोर अनुभवों के कारण एक दुखी युवती।

सती का छोटा भाई सुकुमार सोलह वर्ष का होने के बावजूद केवल छह महीने के निरीह अबोध बालक जैसी बुद्धिवाला है। सती उसके लिए मां जैसी है। सुकु के मुंह से 'मां' के सिवाय और कोई शब्द ही नहीं निकलता। उसके होठों के कोरों से लार बहती रहती है। बिना वजह हंसने और रोनेवाला, मूतकर बार बार कपड़े गीले करनेवाला सुकू ही है सती का अनुज।

नींद उसे विरले ही आती है। कभी कभी ही कहीं लेटकर सो गया, सो बस। बाकी हर समय उसे कोई संगी-साथी भी जरूर चाहिए। कोई भी हो, ऐसा नहीं कि सती ही उसे चाहिए। अन्यथा वह गला फाड़ फाड़कर चिल्लाने लगता है। उसका वह चिल्लाना एकदम हृदय-विदारक होता है। सती को लगता, यह स्वर कितना अस्वाभाविक है—एक सयाने स्वर में एक बच्चे का रुदन।

खाना खिलाना, नहलाना, दांत साफ़ कराना और घड़ी घड़ी कपड़े बदलना, यह सब सती को ही करना पड़ता है।

वासंती और सुमति दीदी को वह 'मां' कहकर नहीं पुकारता। उनके साथ उसका परिचय भी नहीं है। इसमें अचरज की कोई बात भी नहीं है। उम्र में बहुत बड़ी वे दोनों शादी करके बहुत पहले घर से चली गयी थीं। साल में एक बार जब वे घर आतीं, तो सुकु उन्हें घूर

घूरकर यों देखता, जैसे वे बेगानी हों।

उसके पास अकारण मत जाना— ऐसा उन्होंने शुरू शुरू में चुपचाप और फिर खुल्लम-खुल्ला अपने बच्चों को समझाया। एक तरह से यह ठीक ही था। सुकु मंदबुद्धि था, पर था दीदियों में हट्टा-कट्टा। दीदियों के बच्चे उम्र में उससे बहुत छोटे थे। सुकु अगर हाथ-पैर चलाये या उनका गला ही पकड़ ले तो खैर नहीं। लेकिन सुकु किसी को भी तंग नहीं करता, यह सच्चाई सिर्फ सती ही जानती है। प्रत्येक व्यक्ति का अपना तरीका होता है। वासंती दीदी को सुमति दीदी की अपेक्षा सुकु से ज्यादा सहानुभूति थी। छुट्टियों में घर आने पर छोटे भाई को नहलाने धुलाने और उसके साथ खेलने में सबकी सहायता करती। इतना ही नहीं, उसके बारे में सोचकर एकांत में आंसू भी बहाती थी। दीर्घ नि:श्वास लेकर कहतीं, 'हे भगवान, हम यहां क्यों आते हैं ? क्या ये महापाप देखने के लिए आते हैं ?' मगर उसका पति सुधाकर बहुत निष्ठुर था। उसे वासंती का सुकु के प्रति सहानुभूति या सेवाभाव बिलकुल पसंद नहीं था।

सुमति दीदी की कहानी तो बिलकुल उल्टी है। उसे केवल अपनी सुख-सुविधाओं और बनकर घूमने से ही फुर्सत नहीं है। अपने बच्चों की तरफ ध्यान देना भी भूल जाती है। वे अगर कुछ पूछें तो उन्हें अपने पिता के पास जाने को कहती है। उसके पति देवन भैया बड़े दयालु हैं।

सुकु के साथ उठने-बैठने में देवन महाशय को खासी दिलचस्पी थी। वे सुकु को बगीचे में घुमा लाते, नारियल का टिकोरा चुन देते और गाना सुना देते। सुमति दीदी खुलेआम कहती कि ऐसा गाना सुनने के लिए उन्हें सुकु के अलावा कोई नहीं मिलेगा। इसीलिए उन्हें सुकु इतना प्रिय लगता है। ऐसा कहकर वह अपने पति की तरफ देखकर व्यंग्य भरी हंसी हसती। सुमति दीदी के स्वभाव से परिचित होने के कारण ही जीजाजी हमेशा एक मसखरे की तरह बातें और आचरण करते।

घर में स्थाई रूप से रहनेवाले सिर्फ पिताजी, नाणियम्मा और सती थे। दोनों दीदियां साल में एक बार आने वाली एकमात्र मेहमान हैं।

इस घर-परिवार से अलग हुए लोग अड़ोस-पड़ोस में रहते हैं। मगर उनमें से शायद ही कोई इस तरफ आता है। छह-सात कोस पर रहनेवाले पिताजी के पुश्तैनी घर में रह रहे रिश्तेदारों की भी स्थिति लगभग यही है। उनमें से जो भलेमानस हैं, उनके पास समय नहीं है और जिनके पास समय है, उनके पास शराफत नहीं है।

उनमें ऐसे भी लोग हैं, जो इस परिवार से बैर रखते हैं। सती के पिता हाई कोर्ट के पेंशनयाफ्ता जज थे। 'वे बड़े लोग हैं', यह धारणा उन लोगों के मन में बैठ गयी थी। जब पिताजी नौकरी पर थे तब तो वे परोक्ष रूप से ऐसा कहते थे। पर जब पिताजी ने पेंशन ले ली तो यही बात प्रत्यक्ष रूप से कहने लगे। 'अपने पापों का फल तो भुगतना ही पड़ेगा', सुकु को ध्यान में रखकर वे यह व्यंग्य भी कसते थे।

उन सबकी यही शिकायत थी कि इतने बड़े ओहदे पर रहकर, अगर उनकी इच्छा होती

तो, सब रिश्तेदारों का भला कर सकते थे। लेकिन क्या उन्होंने ऐसा किया ?

पिताजी थे बड़े निष्ठावान। तीनों लड़कियों को आजादी देने में उन्होंने कोई कंजूसी नहीं दिखाई, पर सरकारी मामलों में वे बड़े कट्टर थे।

अवैध तरीके से— अपने ओहदे के बल-बूते पर— किसी को अपने प्रभाव में लाने के लिए कोई अपने कर्तव्य-निर्वाह में ढील दे, यह भास्कर मेनोन के लिए मरण समान था।

जिस दिन संगीन मुकदमे का फैसला सुनाना होता, उस दिन वे भोर में उठकर स्नान करते। फिर चरणामृत ग्रहण करके सभी संबंधित कागजात अंतिम बार पढ़ते। उसके पश्चात एक-डेढ़ घंटे तक भगवान का ध्यान करते।

सजा के फैसले का अंतिम निर्णय, ध्यान से उठने पर उनके मन में निश्चित होता था, नाक पर, माथे पर और दाढ़ी के निचले हिस्से पर पसीने की बूंदें उभरी रहतीं, खाली पेट अदालत चले जाते। अदालत से वापस आने पर भी उपवास जारी रहता। न किसी से मिलते, न किसी से बातें ही करते। रात को देर तक पदचाप और भगवन्नाम-जप सुनाई पड़ता।

मां अक्सर कहती, 'यह नौकरी न होती तो अच्छा होता। यह पेशा तो दुष्ट लोगों के लिए ही ठीक है, भले मानसों के लिए नहीं।'

अथाह जल से उभरते बुलबुले जैसी मंद मुस्कुराहट ही पिताजी का जवाब होता। कहते, 'निर्णय मेरा नहीं है जानु, भगवान का है।'

'फिर यह मानसिक पीड़ा क्यों ? यह बड़ी अजीब बात है।'

'आखिर मैं एक इंसान जो हूं।'

पिताजी के स्वास्थ्य और सुख-सुविधा के अलावा, नौकरी से संबंधित बातों से मां को न कोई मतलब था, न कोई जानकारी। लड़कियों को आजादी देने से भी मां ज्यादा खुश नहीं थी।

सब मिलाकर पुराने विचारों का एक गठजोड़ था। इसी कारण जब मां के बायें स्तन में एक गांठ निकली तो दर्द के असह्य होने तक उसे छुपाती रहीं। वह अर्बुद (कैंसर) था।

सुकु की उम्र उस समय चार वर्ष की थी। मां कहा करती थी, 'तीन गधियों के बाद बड़े अरमानों से यह नन्हा बिरवा हुआ है।'

सुकु के स्वास्थ्य में कुछ गड़बड़ है, पर बहुत ज्यादा गड़बड़ है, ऐसा मां ने कभी नहीं सोचा था। ऐसी बातों का अच्छा खासा ज्ञान होने के बावजूद पिताजी ने यही सोचा कि सुकु की 'बीमारी' ठीक हो जायेगी और इस बीमारी का इलाज भी आसानी से हो सकेगा।

इसी बीच मां ने बिस्तर पकड़ लिया। बिना समय खोये जो कुछ हो सकता था, किया गया, मगर काफी देर हो चुकी थी।

सुकु के जन्म के बाद जब से डाक्टरों ने यह बताया कि सुकु 'नार्मल' नहीं है, तब से पिताजी कमजोरी महसूस करने लगे थे और मां की मृत्यु के बाद तो वे बिलकुल अपंग से हो गये।

भगवान पर जो उनका अटूट विश्वास था, उसने ही उन्हें फिर से जीने की हिम्मत दी

थी। इंतजार था उनको, लंबा इंतजार! 'जान-बूझकर मैंने कोई भी पाप नहीं किया, इसलिए भगवान मेरा साथ कभी नहीं छोड़ेंगे।'

मकान के ऊपर वाले एक कमरे में बहुत से देवी-देवताओं की मूर्तियां, चित्रपट और पुष्पहार थे। नौकरी से निवृत्त होने के बाद से पूजा-पाठ, व्रत-उपवास में ही उनका पूरा दिन व्यतीत होता था।

पिताजी के दिल की हालत अच्छी नहीं है, यह बात स्पष्ट हो चुकी थी। नपा-तुला भोजन उन्हें नियमित रूप से खाना चाहिए, डाक्टरों की इस राय के बावजूद वे व्रत-उपवास छोड़ने के लिए तैयार नहीं हुए। इसी पूजा-पाठ और व्रत-अनुष्ठान के फलस्वरूप एक दिन सवेरे उठने पर सुकु दूसरे तमाम नवयुवकों की तरह तंदुरुस्त दिखाई देगा, ऐसा पिताजी का विश्वास था। यह सब सोचते रहने पर भी वे सुकु के साथ बहुत देर तक बैठने, खेलने या उसकी देखभाल करने में असमर्थ थे। एक अनबूझ व्यथा पिताजी को सताने लगती थी।

'सती' .... जिस तरह से वे यह शब्द बोलते, उससे अनुभव होता है उनकी व्यथा का। सती जब भागकर आती तो निराश और थके पिताजी बिना कुछ कहे सुकु के पास से उठकर चले जाते। पसीने से तर-ब-तर होते। फिर सारा दिन बिस्तर पर ही बिता देते।

सुकु को देखे बिना भी नहीं रह सकते थे। हर सुबह पहले जाकर उसे देखते और फिर निराशा से भरा एक और दिन शुरू हो जाता।

सुकु को नाणियम्मा के जिम्मे छोड़कर ही सती स्नान या भोजन करने जाती। वरना उस समय जाती जब सुकु सो रहा होता। गत तीस वर्षों से नाणियम्मा उस घर की सदस्या है। वह एक नौकरानी है, ऐसा नाणियम्मा ने कभी नहीं समझा। घर और रसोईघर नाणियम्मा की जिम्मेदारी है। पुश्तैनी मकान और बहुत सी अनावश्यक जमीन थी। पिताजी का विचार था कि इसे तोड़कर छोटा सा एक मकान बनवायेंगे। सुकु की चिकित्सा शुरू होने पर घर बनाने का विचार एक तरफ कर दिया। मां के मरने पर उस बात को सब भूल गये।

नाणियम्मा को सुकु से बड़ा स्नेह है। न उसने शादी की थी, न कोई बाल-बच्चे थे। नाक की नथ और लड़के—दो ही चीजें जीवन में उसे अत्यधिक प्रिय थीं। प्रत्येक कार्य को वह यह मानकर करती, जैसे 'अगर मैं न करूं तो ठीक हो ही नहीं सकता।' पूरी जिम्मेदारी से काम करती। कभी कभी पिताजी को डांटना भी नहीं भूलती। तर्क यह कि मैं उनसे डेढ़ साल बड़ी हूं। पिताजी भी इस डांट को आदर से ही लेते।

मगर सुकु के बारे में नाणियम्मा को ठीक से मालूम नहीं था। 'अत्यधिक लाड़-प्यार से बच्चा बिगड़ गया है', ऐसा उसका विश्वास था। लड़का इकलौता भी हो तो उसे मूसल से मारना चाहिए— इस कहावत से नाणियम्मा का केवल मौखिक संबंध था। सुकु को अगर कोई चींटी भी काट ले तो नाणियम्मा उसे ढूंढ़ निकालती और उसे मार डालने के बजाय चूल्हे की आग में डालकर श्राप देती, 'अरे, दुष्ट ! ले अब जल-भुनकर मर जा।' फिर भी सुकु दूसरे बच्चों की तरह बातें क्यों नहीं करता, क्यों नहीं लिखता-पढ़ता, नहा-धोकर बाल संवारकर क्यों नहीं निकलता—यह सब प्रश्न नाणियम्मा पूछती थी। कहती, 'बच्चे ने यह

क्या ढोंग रचा रखा है ! इतना बड़ा हो गया है पर इन सब बातों का कोई ख़्याल नहीं ! कोई इसके चूतड़ों पर इमली की कमची से मार लगानेवाला नहीं है न,इसलिए ऐसा करता है !'

सुकु के सामने पहुंचते ही 'मेरा प्यारा बेटा!' कहकर दुलारने लगती। नाणियम्मा का ख्याल है कि सुकु की एकमात्र बीमारी है— ऊपरी नजर ! उसके ऊपर जरूर कोई अला-बला सवार है। कहती, 'देखो न अनु बेटे को, कितना होशियार है वह। लड़के हों तो ऐसे होने चाहिए, जैसा वह है।' इस प्रकार नाणियम्मा दोनों की तुलना करती।

अनूप के उस घर में आने के थोड़े दिनों बाद ही उसने यह तुलना शुरू कर दी थी।

तब सुकु तीन साल का था, जब से अनूप इस परिवार का एक सदस्य बन गया था। पिताजी का दूर के रिश्ते में भांजा। अनूप को जब चौदहवां साल लगा तब उसके पिता का देहांत हो गया। उसके पिता थलसेना में काम करते थे। खबर पाते ही सती के पिताजी अनूप के पुश्तैनी घर में गये और उसे अपने साथ ले आये थे। इसके बाद जहां कहीं भी उनका स्थानांतरण हुआ, अनूप उनके साथ ही रहा।

नटखट और जिद्दी, मगर होनहार अनूप, इस परिवार के सभी दुखों का साक्षी और सहभागी था।

वासंती दीदी की दृष्टि में अनूप शुरू से ही अपनी उम्र से बहुत छोटा बालक था। इस बात से अनूप उनसे रुष्ट रहता था। वासंती दीदी कहतीं, 'उस छोकरे से कह देते हैं', या 'ये उस छोकरे का ही काम है।' अनूप अपनी गोल गोल आंखों से उन्हें घूरकर अपना गुस्सा प्रकट करता। वासंती दीदी अनूप में एक ऐसे छोटे भाई को देखतीं, जिसके साथ वे खुलकर कुछ भी कर सकती थीं। इतनी आजादी थी उन्हें। बड़ा होने पर अनूप को यह बात समझ में आ गयी और उसने वासंती दीदी से द्वेष रखना छोड़ दिया। सुमति दीदी से जो खुंदक अनूप को तब थी वो अब भी बनी हुई थी। अनूप को पिताजी प्यार करें, यह सुमति दीदी को सहन नहीं होता था। प्यार के मामले में सुमति दीदी का सदा से ही यह रवैया था। वे चाहती थीं कि पिताजी के स्नेह पर उनका एकाधिकार हो। इसमें कमी उन्हें स्वीकार नहीं थी। वे अनूप की खिल्ली उड़ाते हुए उसे 'भांजा साहब' कहकर पुकारतीं। यह सुनकर अनूप आग-बबूला हो जाता। दोनों हमउम्र जो थे। अनूप उनके सिर पर मुक्का जमाता। और सुमति दीदी इसका बदला अनूप की पुस्तकों और कपड़ों को फाड़कर चुकातीं।

सती के प्रति अनूप की नीयत अभिभावक **जैसी थी**। जो पूछती, बता देता और जो काम कहती, कर भी देता। कहती— अरे, अरे ! भांजा साहब, 'मुरचेरुक्कन' बनने का यह नाटक बंद करो। केरल में यह प्रथा है कि पिता अपनी कन्या का विवाह अपने भांजे से कर देते हैं। अत: भांजा 'मुरचेरुक्कन', यानी रिश्ते में दूल्हा कहलाता है।

आज वही 'मुरचेरुक्कन' उसके सामने खड़ा है। वह केंद्र सरकार की नौकरी करता है। बड़ा आदमी है। उसकी छुट्टियां खत्म हो गयी हैं और वह मामाजी से विदा लेने आया है।

सती की मां अपनी मर्जी से ही अनूप को 'अनी' कहकर पुकारती थीं। इसलिए सती

भी उसे अनियेट्टन (अनी भैया) बुलाती थी।

अनूप की मां अंदर नाणियम्मा के साथ जमकर गांव की खबरें ले रही थीं। सुकु हमेशा की तरह सांझ को झपकी लेकर किसी भी समय उठ बैठेगा। टहलने गये पिताजी भी वापस आने वाले हैं। उनके आने पर अनियेट्टन और मांजी (बुआ जी) वापस चले जायेंगे। अनियेट्ट न दिल्ली में रहते हैं। जाने के बाद फिर ....

एक फर्ज समझकर अनियेट्टन यह बात नहीं पूछ रहे हैं, सती को यह अच्छी तरह मालूम था। एक स्त्री होने के नाते किसी पुरुष के आश्रय में अगर वह फलना-फूलना चाहेगी, तो वह निःसंदेह अनियेट्टन — अनूप ही होगा।

सुकु के बारे में सोचकर सती कुछ भी नहीं कह सकी। पिताजी आज नहीं तो कल....

शांत मन से सोच-विचार करने पर यह अनुचित नहीं कहा जा सकता। पिताजी भले-चंगे रहें तो भी सुकु की देखभाल के लिए कोई न कोई तो चाहिए ही। चाहे किसी को भी यह विश्वास हो कि सुकु की बीमारी इस जीवन में ठीक हो जायेगी और वह भला-चंगा हो जायेगा, सती को इस बात पर जरा भी यकीन नहीं है। वह हमेशा एक 'सयाना बच्चा' बना रहेगा। उसे अकेला छोड़कर जीवन जीना होगा, यह सोचना भी सती के बस के बाहर था। चौबीस घंटे भी उसे उसकी सेवा के लिए कम थे। भले ही अनियेट्टन सब कुछ समझने और जाननेवाले पति होंगे, फिर भी उन्हें कभी न कभी कुंठा का अनुभव जरूर होगा।

हो सकता है, एक पत्नी की हैसियत से पति के प्रति उसके जो प्राथमिक कर्तव्य हैं, उन्हें भी वह पूरा न कर सके। बाल-बच्चे होने पर जो कहानी बनेगी उसके बारे में तो पूछिए ही मत। इसलिए जो काम अपने बस का न हो, उसे शुरू ही नहीं किया जाये, तो ही ठीक रहेगा न ?

लेकिन प्यार करनेवाले एक व्यक्ति को नकारात्मक उत्तर वह कैसे दे ? सोते-जागते नयनों में बसनेवाले व्यक्ति को दुख कैसे पहुंचाये ? पर आज की यह वेदना कल की नारकीय पीड़ा से तो कम ही होगी। आज के दुख को जीवन भर का एक भयंकर नुकसान और नरक-यातना बनाना क्या गलत नहीं है ?

अनियेट्टन छुट्टियों में आयेंगे, जब से सती ने यह सुना था, तब से ही उसके मन में निरंतर एक ऊहापोह चल रही थी। न तो एक दृढ़ निश्चय वह तब कर सकी थी और अब इस निर्णायक मौके पर तो उसकी बोलती बंद हो गयी है। अगर अब भी कुछ नहीं बोलेगी तो फिर कब बोल सकेगी ?

सच्ची बात तो यह है कि यह सवाल तीन साल पहले भी उसके सामने आया था— अनियेट्टन के यह बात उठाने से भी पहले। जिस समय वह अकेली होती या सुकु के पास सो रही होती या जब सुकु उसे 'मां' कहकर पुकारता होता, तो उसकी मासूम आंखों की अनकही चमक में वह अपने मन को प्रतिबिंबित पाती। अनियेट्टन की चिट्ठियां जब आतीं और जब बुआ जी (अनियेट्टन की मां) बार बार आकर उसकी चाल-ढाल को हसरत भरी आंखों से देखतीं, तब भी उसे यह ख्याल आता। अनियेट्टन जब परीक्षा में रैंक सहित उत्तीर्ण हुए और अफसरी के लिए चुन लिये गये, तब पिताजी ने खुशी खुशी सबसे अनूप

की खूबियों का बखान किया। काफी समय बाद घर में आई यह उल्लासंपूर्ण खबर थी।

पहली बार जब अनियेट्टन छुट्टियों में आये तब उन्होंने कहा था, 'मुझे अब एक इम्तिहान और पास करना है।'

अब और कौन-सी परीक्षा रह गयी है?... सती ने सोचा।

'तुम्हारे द्वारा अपना चुनाव कराना— यही परीक्षा देनी है।' यह बात सुनकर सती लज्जा से लाल हो उठी थी और वहां से भाग गयी थी। वे छुट्टियां फिर तो एक आंख-मिचौनी बनकर रह गयीं। दूसरी बार अनूप ने उससे सीधा प्रश्न किया, ''क्या निर्णय लिया है तुमने ?''

उससे कुछ जवाब देते न बन पड़ा। मौन को सहमति का लक्षण ही माना होगा अनूप ने। सिर का झुकाना शरम से ही है, यही सोचा होगा उसने।

सब बातों का स्पष्टीकरण इस बार हो जायेगा, यह सती ने सोचा। मगर हुआ यह कि सती के मुख से एक अक्षर भी नहीं निकल रहा था। अनियेट्टन क्या गलतफहमी की तरफ कदम बढ़ा रहे हैं ? अगर ऐसा हो तो मेरा बचाव हो जायेगा, सती ने अनजाने में यह भी चाहा।

धड़कते हृदय से अनूप प्रतीक्षा कर रहा था। आज सती का निर्णय जानकर ही रहेगा, यह उसने निश्चय कर लिया था। जीवन में ऐसी कोई समस्या नहीं है जिसका हल नहीं निकाला जा सकता, अनूप का यह दृढ़ विश्वास था। सती उससे प्रेम करती है, इसमें शक की कोई गुंजाइश नहीं थी।

सुकु ही एक समस्या है, यह भी वह जानता था। पर बात तो हो सकती है, जब सती मुंह से कुछ बोले। आकाश की लाली फीकी पड़ने लगी थी। अपने अपने नीड़ों की ओर लौटनेवाली चिड़ियों की आतुरता भरी गूंज भी कहीं दूर से आती सुनाई पड़ रही थी।

''नहीं'', सती अचानक बोल पड़ी, ''नहीं अनियेट्टा ! आप मुझे क्षमा करें।''

''क्षमा कर सकता हूं'', अनूप ने कहा, ''मगर भूल नहीं सकता। साथ ही हार मानकर पीछे हटना मेरे स्वभाव के विपरीत है।''

अब तो हृदय का बांध टूट गया था। सती मुड़कर आंगन की तरफ दौड़ी।

सांध्य-दीप जलाकर 'दीप' कहती हुई आ रही नाणियम्मा 'दी' कहकर ही अचानक रुक गयी और भागती आ रही सती को ध्यान से देखने लगी। सती दौड़कर घर के भीतर घुस गयी।

पीछे आ रहे अनूप के चेहरे की तरफ दीपक उठाया तो नाणियम्मा ने वहां एक दृढ़ मुस्कुराहट देखी। ''बस, इतनी-सी बात है! मैंने सोचा कि.......''

बरबस आयी हंसी के कारण उसने अपने वाक्य को अधूरा छोड़ दिया।

दो

मजबूत काठ की बनी चौखटें, पीतल की सांकलें और उन्हें बंद करने के लिए पीतल की कुंडियां थीं, तथा खुलते-बंद होते हर वक्त रोनी सी आवाज करने वाले दरवाजे। पर चौखटों की ऊंचाई बहुत कम थी।

सांध्य-दीप लेकर खड़ी नाणियम्मा के बगल से होकर अनूप सिर झुकाये अंदर घुस गया।

घर के हर कमरे की तरह घर के प्रत्येक व्यक्ति के मन से भी वह परिचित था।

घर और घर के लोगों का स्मरण अनूप के लिए हमेशा सुखदायी होता। किसी से भी किसी तरह की अनबन या मनमुटाव नहीं था। 'छोटे भैया' या 'अनि' कहकर पुकारने के बावजूद अनूप को सती की मां अपना बेटा ही समझती थी, यद्यपि यह सौभाग्य उसे अधिक समय तक नहीं मिला। उसने अपने आपको इस घर में कभी भी पराया समझा हो, ऐसा उसे याद नहीं। मामाजी जैसे एक छायादार पेड़ थे, जिसके नीचे इकट्ठा होकर तमाम परिजन सुखपूर्वक आमोद-प्रमोद करते रहते थे।

घर के अंदर बाहर से भी ज्यादा अंधेरा था, जिसके कारण फीके रंग की दीवारें दिखाई पड़ने में अनूप को क्षण भर लगा।

पता नहीं, सती कहां चली गयी थी। घर के अधिकतर कमरों में धूल और अनुपयोगी वस्तुएं थीं।

दक्खिनी दालान में कोई भी दिखाई नहीं दिया। रसोई की ओर कहीं एक दरवाजे के बंद होने की 'करकर' सुनाई दी। उसे लगा, नाणियम्मा शायद वापस चली गयी हैं।

पूर्वी दालान में दीपक जल रहा था। खुले दरवाजे से आती रोशनी की एक किरण ऐसी प्रतीत हो रही थी, जैसे कोरे कपड़े का थान बिछा हो।

उसी समय सुकु के कमरे से घुटी हुई सिसकियां सुनाई पड़ीं !

अनूप दबे पांव दरवाजे के पास पहुंच गया। सफेद चादर बिछे पलंग पर सुकु एक छोटे बच्चे की तरह सिकुड़ा सोया पड़ा था। तकिये को उसने साथ लिपटा रखा था।

पलंग पर सिर रखे, फर्श पर घुटनों के बल बैठी सती दबी दबी सिसकियां भर रही थी। कमरे के कोने में रखी छोटी मेज दवाई की शीशियों से भरी पड़ी थी। दीवार की बड़ी घड़ी मानो 'किसी को परेशान न करूं' के विचार से बहुत ही धीमे स्वर में 'टिक टिक' कर रही थी।

कमरे के फर्श पर खिलौने बिखरे पड़े थे। मोल लिये जाने वाले खिलौनों के अलावा कच्चे नारियल के पत्तों से बनी सीटियां तथा तरह तरह के और खिलौने भी मौजूद थे।

अनूप को लगा, सती कोई न कोई निर्णय लेने के प्रयास में है। सिर्फ 'नहीं' कहना तो किसी प्रश्न का उत्तर नहीं हो सकता। इन दो अक्षरों में अनि को वह इनकार नहीं कर सकती, अनूप को यह बात अच्छी तरह मालूम थी।

आगे बढ़ाय। पांव अनूप ने पीछे खींच लिया। चुप रहने में ही भलाई है। हृदय से उत्पन्न हुआ है यह दुख। यह तो रोकर ही हल्का हो सकता है। दिलासा देना व्यर्थ है।

अनूप सोच रहा था कि उसे सती को रुलाना नहीं चाहिए था। चाहे कितना समय लग जाता, जब तक वह स्वयं किसी निर्णय पर नहीं पहुंच जाती, वह प्रतीक्षा कर सकता था।

इतना सब्र उसमें नहीं है, यह अनूप अच्छी तरह जानता था और इस सब्र का कोई अर्थ भी नहीं है। आज नहीं तो कल, सती को कोई निर्णय लेना ही पड़ेगा। सुकु का प्रश्न तो जीवन भर के लिए रहेगा।

अनूप का दृढ़ विश्वास था कि जीवन व्यर्थ गंवाना बेवकूफी है। अपने जीवन की उपेक्षा कर जो त्याग किया जाता है, उसका कोई मतलब नहीं। यह तो हाथ-पैर को रस्सियों से बांधकर युद्ध के मैदान में उतरने के बराबर है।

कमजोर मन प्यार के मामले में मजबूत तो हो सकता है, मगर काम यह खतरनाक है। मुश्किलों का धैर्य के साथ सामना करना चाहिए। इसके लिए होना चाहिए साहस। अगर साहस न हो तो चाहनेवालों का कर्तव्य है कि उसे उत्पन्न करें। सती से अगर वह प्यार करता है तो उसे एक अच्छा जीवन देने के योग्य होना चाहिए। ऐसा करने के लिए अगर सती को थोड़ा रुलाना भी पड़े तो उससे पीछे हटना बहादुरी की बात नहीं। यों सती के आंसू देखकर अनूप का मन व्यथित हो जाता है, परंतु इस वक्त उसका रोना आगे चलकर उसके हित में ही होगा।

मंदबुद्धि छोटे भाई के लिए जीवन को दांव पर लगाकर स्वयं को नष्ट नहीं करना चाहिए। सती को अपनी जीवन-संगिनी बनाना है, इसके लिए उसे अपना बनाना जरूरी होगा। उसे सुकु से बहुत प्यार है। एक मां को जैसे अपना पुत्र प्रिय होता है, वैसे ही सती को सुकु भी प्रिय है। सुकु को तो केवल सेवा-शुश्रूषा की जरूरत है जो मां, बहन, नौकरानी या नर्स किसी से भी पूरी हो सकती है। उसके लिए सती अपना जीवन बलिदान करे, इससे सुकु को कोई खास फायदा नहीं होनेवाला।

सती के मामले में अनूप को कुछ जिद सी हो गयी थी। पिताजी की मृत्यु के बाद अनूप मामाजी के संरक्षण में रहे, यह मां की मर्जी से हुआ था। एक अनाथ को दत्तक बना देने का भाव उसमें कहीं जरूर छुपा हुआ था। किसी गरीब लड़के की रक्षा करनी है, यह भाव मामाजी के मन में कभी नहीं था। दीदी (वासंती) या सुमति ने भी कभी ऐसा महसूस नहीं होने दिया। मगर न जाने क्यों, अनूप के मन में एक हीनता-बोध बना ही रहता था।

इसी अहसास के फलस्वरूप अनूप में अच्छी तरह पढ़ने की और प्रत्येक परीक्षा में प्रथम रहने की प्रेरणा जाग्रत हुई।

अनूप को भाई मानकर उसकी उंगली पकड़कर साथ घूमनेवाली सती से उसे विशेष

प्रेम था। सती उसे कभी छोटा नहीं समझेगी, इस बात का भी अनूप को पूर्ण विश्वास था।

मामाजी के स्नेह और वात्सल्य का प्रतिदान देने की अनूप को बहुत चाह थी। उसका दिल चाहता था कि वह सुकु और सती का संरक्षक बनकर मामाजी को मानसिक शांति पहुंचाये।

यह सब बातें, उसे बहुत साल बाद आत्मावलोकन करने पर महसूस हुईं। पर इससे बहुत पहले सती अनूप के मन में एक गहरी छाप छोड़ चुकी थी।

सती का गोल-मटोल चेहरा, बड़ी बड़ी आंखें, ढलती हुई धूप जैसी नजरें, मुस्कुराने को भी पाप समझने वाले पतले होंठ और एक औसत चौड़ाई वाला माथा अनूप को बहुत पसंद था। 'मैं भी यहीं कहीं हूं' — ऐसा जताती हुई 'कोलांबी' (एक जंगली फूल) की कली जैसी नाक भी अनूप को अच्छी लगती थी। सती की चाल-ढाल और हाव-भाव देखकर यह प्रतीत होता था कि उसे इस बात का तनिक भी आभास नहीं है कि वह कितनी सुंदर है।

हरेक बात और चीज से उसे डर लगता था। छोटी सी बात पर दुखी हो जाती और खुशी होती तो किसी के सामने प्रकट भी नहीं करती।

अनूप को यह मालूम था कि उसकी जन्मदात्री के मन में सती से बड़ी आशाएं थीं। वह अक्सर अनूप को सुनाकर कहती, 'सती एक अच्छी लड़की है। कितनी शांत और विनम्र। जिसके घर जायेगी, वहां सदा भगवती का वास रहेगा।'

जब अध्ययन से जी ऊब जाता था, अकारण ही निराशा का आलम छा जाता था, तो अनूप सती के चेहरे का ध्यान कर उसके बदलते हुए भावों की कल्पना करता और इस तरह पुन: अपने उत्साह को प्राप्त करता। यह उसका रोज का कार्यक्रम था।

वासंती दीदी और सुमति की पढ़ाई समाप्त होने पर ही उनकी शादी हुई। मगर सती ने एक साल की पढ़ाई के बाद ही कालेज से विदाई ले ली। उसने अपनी मर्जी से ऐसा किया था।

सच्चाई यह थी कि सुकु की देखभाल के लिए घर में और कोई नहीं था। अनूप का अनुमान था कि शायद उसने यह भी सोचा हो कि जिस तरीके से वह सुकु की देखभाल करती है, दूसरे नहीं कर पाएंगे। सती और अपनी मां को अनूप नियमित रूप से पत्र लिखता था। मामाजी को वह पत्र नहीं लिखता था। सती को भेजे जानेवाले और उससे प्राप्त पत्रों में प्रेम की बातें नहीं होतीं, अनकहा और परस्पर हृदय से महसूस किया जानेवाला प्रेम था उन दोनों में। इस प्रेम में अट्टहास करते जल-प्रवाह के समक्ष अपलक खड़े रहने का सुख था।

घूमकर अनूप बरामदे की ओर लौट पड़ा। पहाड़ी से नीचे उतरती कंकरीली सड़क से मामाजी को आते देखा। मामाजी की चाल में थकावट स्पष्ट दिखाई दे रही थी। उनके हाथ में जो छड़ी थी, वह एक आभूषण ही नहीं, सहारा भी थी।

टीले की लंबी हो आई परछाई ने लाल कंकरीले रास्ते को ही नहीं, मामाजी को भी

ढक दिया था।

सूर्य भगवान टीले के पीछे जा चुके थे। उसके ऊपर खड़े काजू के पेड़ों की ऊंची फुनगियों पर सोना पोतकर एक और दिन समाप्त हो गया।

अंदर से उसने नाणियम्मा को जोर से पूछते हुए सुना, ''न जाने अब कब मुलाकात हो ?''

मां कह रही है, ''अनु के चले जाने के बाद किसके साथ आऊंगी ? जब वह आयेगा, तभी मैं आऊंगी।''

''फिर उन साहब का क्या हुआ ?''

''दूसरी बात पूछ रही हो ?....कुछ तो बात जम रही है....अरे, सती कहां गयी ?''

''सुकु बेटे के कमरे में होगी। दिन-रात वहीं रहती है। क्या यह ठीक है ? बुरा न मानना। मुझे मालूम नहीं है, इसलिए पूछ रही हूं।''

''जैसा होना चाहिए वैसा कुछ नहीं हो रहा है। धीरे धीरे हमें सब कुछ ठीक करना होगा।''

''यह सब कब होगा ? जब बाल पक जायेंगे और दांत एक एक करके गिर जायेंगे, तब ?''

करीब आते हुए मामाजी और अंदर हो रही बातचीत की ओर ध्यान देते हुए अनूप आंगन में इंतजार करता रहा।

''बेटी सती, अरे! तुम रो क्यों रही हो ? अरे, अरे, ऐसा करोगी तो मैं नहीं जाऊंगी।''

नाणियम्मा ने मजाक में कहा, ''अगर अनूप भैया यहां रुक जायें तो शायद रोना बंद हो जाये।''

मां-बेटा सवेरे ही आ चुके थे। मामाजी के लिए एक कश्मीरी शाल और सती के लिए कीमती साड़ियां लाये थे।

मामाजी को कश्मीरी शाल भेंट करते समय अनूप की मां की खुशी का ठिकाना नहीं था। उनके ख्याल से सती के लिए साड़ी नहीं लानी चाहिए थी, बल्कि कोई और अच्छी चीज लानी चाहिए थी।

वह सोच रही थीं— न जाने लोग क्या सोचेंगे! फिर साड़ी देने के तो कई मौके आगे भी आयेंगे।

सुकुमार के लिए ढेर सारी चाकलेट भी लेकर आये थे।

अपनी शादी के बारे में बातचीत करने का निश्चय करके आया था अनूप। किस तरह बातचीत शुरू की जाये, इसके बारे में भी सोच लिया था। पहले सती से बात करनी होगी। उसे यकीन था कि हमेशा की तरह उसे यह बात पसंद आयेगी। उसके बाद मां के जरिए मामा से बात करनी होगी। मामा के सम्मुख अनूप कोई बात नहीं करता था।

सती की मां के मरणोपरांत अपनी आवश्यकताओं के लिए वह सती के माध्यम से निवेदन करता था।

'पिताजी ! अनियेट्टन को' इस तरह शुरू करते ही मामाजी उससे पूछताछ करते। तब अनूप उन्हें बता देता, मगर कहीं पीछे खड़े होकर। मामाजी के सामने खड़े होकर बात करने की हिम्मत उसमें नहीं थी।

पहली बार जब इस घर में कदम रखा था, तब सगी मां भी साथ में थी। उसके पिताजी का देहांत हाल में ही हुआ था। हर बात और हर व्यक्ति से अनूप को नाराजगी थी। मां के साथ इस तरह इस घर में आना भी उसके क्रोध का एक कारण था। मलयालम बोलना भी उसे अच्छी तरह नहीं आता था। पिताजी के साथ, उनके स्थानांतरण होने की वजह से, अन्य भाष-भाषी क्षेत्रों में उसकी पढ़ाई होती रही। स्कूल में दूसरी भाषा हिंदी रही। उससे छोटा कोई भाई-बहन नहीं था, इसलिए उसके खेल के साथी भी अन्य भाषा-भाषी ही रहे।

पिताजी की मृत्यु वास्तव में दोनों मां-बेटे के लिए वज्रपात जैसा था। सवेरे वर्दी पहनकर दफ्तर गये पिताजी की मृत देह लगभग बारह बजे घर लायी गयी थी। कार ऐक्सीडेंट था। क्षत-विक्षत थी उनकी मृत देह।

छायादार नीम के पेड़ों से भरे आंगन में लोगों की भारी भीड़ थी। बेहोश पड़ी मां को हस्पताल ले जाया गया था। एकाकी दहाड़ मारकर रोते हुए अनूप को पिताजी के संगी-साथियों ने पड़ोस के मकान में छोड़ दिया था।

हजारों मील दूर से एक अनाथ की तरह इस घर में आने को अनूप कभी भी भुला नहीं सका।

वह लंबी यात्रा परिवार के इस घर-आंगन में समाप्त हुई थी। दहलीज लांघते ही मां जोर-जोर से रोने लगी थी।

तब पहली बार अनूप ने मां के कंधे पर हाथ रखकर पुकारा था, 'मां!'

वह एक चेतावनी थी। इतना साहस वह कैसे जुटा पाया, यह बात अनूप आज तक नहीं जान सका। मां ने मुड़कर देखा था। उस नजर को बर्दाश्त करने की शक्ति भी न जाने कहां से उसमें आ गयी थी। अनूप को लगा था, जैसे वह अचानक ही उस दिन बड़ा हो गया हो।

पढ़ाई जारी रखने के लिए किसी अंग्रेजी माध्यम स्कूल में भर्ती होना जरूरी था। काजू के पेड़ों और जंगली घास-फूसवाले गांव में ऐसा स्कूल कहां?

अनजाने ही दूसरे दिन अचानक मामाजी का आगमन हुआ था। दहजील लांघकर वे आंगन में अनायास ही रुक गये थे।

इससे पहले एकाध बार ही मामाजी से मुलाकात हुई थी। बस, इससे अधिक कोई परिचय मामाजी के साथ नहीं था अनूप का।

मामाजी ने पूछा था, 'तुम ही अनूप हो न? मां कहां है ?' मां अंदर एक कमरे में सिकुड़कर लेटी धीरे धीरे रो रही थी।

मामाजी ने अनूप के पीछे उस कमरे में प्रवेश किया। मां झट-पट कपड़े ठीक करते हुए अदब से उठ खड़ी हुई थी।

मामाजी ने कहा था, 'कोई बात नहीं। रोओ मत। मौत को रोकने से क्या वह रुकती है ? तुम एक काम करो। अनूप की पढ़ाई में रुकावट मत डालना। तेरहवीं के बाद अनूप को तुम मेरे यहां भेज देना।'

इस प्रकार स्कूल-बैग लेकर अनूप ने मां के साथ सती के घर में प्रवेश किया था।

पिताजी की जगह मामाजी को बिठाने की कोशिश अनूप को क्षुब्ध कर रही थी, मगर इस नापसंदगी का कोई आधार नहीं था। दो ही दिन में वह सामान्य हो गया था।

वापस जाते समय मां ने अनूप को अपने करीब बुलाकर कान में कहा था, 'बेटा ! मामाजी के तौर-तरीके कुछ और हैं। सलीके से पेश आना।' मां के सावधान करने का मतलब यह था कि मामाजी पिताजी जैसे नहीं हैं। पिताजी सब बातें हल्के ढंग से लेते थे। हर वक्त मस्त रहते, खेल में साथ देते और खूब शराब पीते। जिस पर झगड़ा करती हुई मां की ओर देखकर जोर जोर से हंसते। किसी चीज की जरूरत पड़ने पर पिताजी को बताना बेकार था, क्योंकि वह तुरंत ही उसके बारे में भूल जाते। हां बड़ी-बड़ी मूंछों को पकड़कर खींच दो या उंगली को काट जख्मी कर दो तो बगैर भूले सामान खरीद ले आते। अनूप के पिताजी के लिए जीवन एक बड़ा मजाक था। उनका मत था कि जीवन जीने के लिए है।

उनकी न किसी से दुश्मनी थी, न उन्हें किसी से कोई शिकायत थी। मगर मामाजी ऐसे नहीं थे। हमेशा गंभीर रहते। पर थे बड़े दरियादिल। बाहरी आवरण में चाहे फर्क हो, अंदर से दोनों एक जैसे ही थे। इस बात का ज्ञान होते ही अनूप को मामाजी प्राणों से प्यारे लगने लगे।

सवेरे जब अनूप ने घर में प्रवेश किया, तब मामाजी ने उसके दफ्तर के बारे में पूछताछ की। उसके अफसरों और दिल्ली के मौसम के बारे में पूछा।

मामाजी की आंखों के चारों ओर कालिमा और अधिक गहरी हो गयी थी। साल भर में जितना हो सकता था, उससे कहीं अधिक बूढ़े दिखाई देने लेगे थे।

जब मामाजी कुशल-क्षेम पूछ रहे थे, तब सती मां को लेकर दरवाजे के पीछे चुपचाप खड़ी रही।

उसके हृदय में प्रसन्नता अनजाने ही हिलोरें ले रही थी। मरुस्थल में उगे, मुरझाये पौधे में जैसे अनजाने बहार आ गयी हो।

सुकुमार के बारे में न तो मामाजी ने कोई बात कही, न ही अनूप ने कुछ पूछा। चाकलेट का डिब्बा किसके लिए आया है, यह मामाजी जानते थे और यह बात अनूप को भी अच्छी तरह पता थी कि मामाजी सब कुछ जानते हैं।

मामाजी का जिस समय घर में आगमन हुआ, उसी समय मां छतरी लेकर बाहर जा रही थी। बरसात के थम जाने पर शांत, मूक आकाश की तरह सती मां के पीछे चुपचाप खड़ी थी।

मामाजी ने मां की ओर एक नजर डाली और कहा, "अभी, इस संध्या समय ?"

मां असहाय सी बोली, ''अच्छा तो कल ही सही।''

मामाजी ने पक्का करते हुए कहा, ''यही ठीक रहेगा। क्यों, अनूप ?'' अनूप ने सिर हिलाते हुए हामी भर दी।

मामाजी अपने जैसे चार आदमियों के बैठने लायक आरामकुर्सी में थककर लेट गये और कहने लगे, ''मुझे अनूप से कुछ सलाह-मशविरा करना है।''

तीन

पूजाघर में देवताओं के फ्रेम जड़े चित्रों के सामने गीले वस्त्रों में खड़े भास्कर मेनोन ने अगरबत्ती जलाकर, हाथ जोड़ नमस्कार किया।

पिताजी की बड़ी इच्छा थी कि बेटा एक जज बने। वकालत में ही सारा जीवन व्यतीत करनेवाले मेनोन की यही सबसे बड़ी हसरत थी।

इकलौता बेटा था वह उनका। कभी भी उनकी इच्छा के विरुद्ध एक भी शब्द का उच्चारण नहीं किया था। न डांटा-डपटा था, न ही कोई दंड दिया था। इतना प्रिय था वह कि 'भास्कर' नाम भी पूरी तरह जुबान पर नहीं लाते थे।

और बेटा भी ऐसा कि पिता के हर इशारे को ताड़कर उस पर पूरी तरह अमल करता।

मां को यह शिकायत थी कि पिता पुत्र को कभी डांटते तक नहीं। पिता को वजह-बेवजह कभी कभी बेटे को डांटना भी चाहिए, ऐसा उनका सोचना था। पथभ्रष्ट होने से रोकने के लिए ऐसा करना जरूरी है, ऐसे दकियानूसी तरीके से भी सोचती थीं मां।

उनके इस विश्वास को महत्व देते हुए पिताजी अगर डांट देते तो भविष्य में क्या होता, वर्षों बाद यह सोच सोचकर भास्कर मेनोन कभी कभी मुस्कुरा पड़ते। ऐसी परिस्थिति में मां ही सबसे पहले पिताजी के खिलाफ हो जातीं।

पिताजी का तत्वशास्त्र पूर्णत: नियति पर निर्भर था।

पिताजी कहा करते थे, 'इच्छा-आकांक्षा से, डांटने या चाहत से कोई फायदा नहीं है। जो जिसकी किस्मत में होगा, वही उसे मिलेगा। मेरी इच्छा यही है कि मेरा बेटा जज बने। भगवान उस पर और हमारे ऊपर कृपा करें।'

वकील होने के अलावा पिताजी एक जमींदार और किसान भी थे। उन्हें किसी से फीस मांगते या हिसाब करते हुए किसी ने भी नहीं सुना था। फीस पैसे के रूप में नहीं आती थी। फीस आती थी तो सब्जी, चीनी या पापड़ के रूप में।

इनके आने पर पिताजी पूछते, 'ये सब किसके लिए लाये हो ?'

'आपके दिल की खुशी के लिए ......' यह जवाब सुनकर पिताजी के हृदय में ठंडक पड़ जाती। वास्तव में ही यह सब खुशी के लिए था। अपनी और दूसरों की खुशी के लिए ही दुनिया में सब करना चाहिए।

उन दिनों सिर्फ गोरे ही न्यायाधीश बन सकते थे, जो एक बहुत बड़ा ओहदा माना जाता था। शायद यही कारण था कि पिताजी चाहते थे, उनका पुत्र जज बने।

अंग्रेजी और संस्कृत का पिताजी को अपार ज्ञान था। और यह ज्ञान केवल कानून तक ही सीमित नहीं था। साहित्य की किताबों से भी उनकी अलमारी भरी हुई थी।

उच्च शिक्षा के लिए बेटे को विलायत भेजने की पिताजी की बड़ी इच्छा थी। इस कार्य में मां ने ही बाधा डाली थी। उनका सवाल था कि उसे इतनी दूर भेजकर हम अकेले कैसे रहेंगे ? आखिर ले-देकर एक ही तो बेटा है हमारा।

यही प्रश्न पिताजी के मन में घूम रहा था और इसी वजह से बाहर भेजने का विचार उन्होंने त्याग दिया। उच्चतम शिक्षा देने की उत्कंठा एक तरफ और बेटे से बिछुड़ने और उसे दूर भेजने की हिचक दूसरी तरफ। मां की रोक-टोक और बहसबाजी से दूसरे विचार की विजय हुई थी।

एक वकील के रूप में चार्ज लेने के दिन सवेरे घटी घटनाएं जैसे कल ही की बात हो—भास्कर मेनोन याद कर रहे थे —

पिताजी के साथ वे मंदिर गये थे। भक्ति तो अपने पिताजी से उन्हें पैतृक संपत्ति के रूप में मिली थी। यह उनके लिए एक बूढ़े की लाठी की तरह सर्वोपरि सहारा थी।

भीगे वस्त्रों में भगवान की पूजा कर, चरणामृत लेकर और चंदन का तिलक लगाकर चौड़ी गली में आगे आगे चल रहे पिताजी की चाल, मंदिर से निकली भगवान की शोभायात्रा में उनकी मूर्ति को मस्तक पर रखे शान से चलते हाथी जैसी थी।

रास्ते में मिले हर व्यक्ति से पिताजी कहते, 'आज और मुझे अदालत जाना है।'

घर से निकलते समय पिताजी ने पुत्र को अपने पास बुलाया और सिर पर हाथ रखा, 'दिये की तरह चमकना तुम।'

छलछलायी आंखों से पिताजी ने पूछा, 'सब कागजात ले लिये ना ?'

'जी, हां।'

'अपने बड़े मामा लोगों (कारणवर कहलाते हैं) को प्रणाम किया ?'

'जी, किया।'

'भगवान का नाम लेकर कदम बाहर निकालो और चल पड़ो। अच्छा, एक और बात है।'

कौन सी बात, यह जानने के लिए मेनोन ने अपना सिर उठाया। नजरें मिलाये बगैर पिताजी ने कहा, 'गुजारा करने लायक सब सामान हमारे पास है। अच्छाई और अच्छे लोगों के लिए ही वकालत करना। इसके विपरीत तुम कभी कुछ नहीं करोगे, यह मैं जानता हूं। फिर भी मैंने कह दिया है .... ।'

माता-पिता की चरणवंदना कर, पीछे मुड़कर देखे बगैर मेनोन चल पड़े। आंखें डबडबा आई थीं, इसलिए उन्होंने पीछे मुड़कर नहीं देखा था।

उनकी नजरें पीछा कर रही हैं, यह उन्हें मालूम था। वे जिन रास्तों पर चलते गये उनकी नजरें पीछे ही लगी रहीं।

माता-पिता का ध्यान किये बगैर वे कभी भी अपनी नौकरी पर नहीं गये। उनकी मर्जी के खिलाफ कोई निर्णय भी नहीं लिया।

जब मेनोन का मुंसिफ के लिए चुनाव हुआ तो पिताजी के पैर जमीन पर नहीं टिक

रहे थे।

बेटे ने जब वकालत आरंभ की तो पिताजी ने केस लेना बंद कर दिया। अपने से कहते, 'बस, बहुत हो गया।'

फिर भी कभी कभी पिताजी अदालत जाते थे। एक घोड़ागाड़ी पर बैठकर दोनों (पिता, पुत्र) एक साथ अदालत जाते।

भास्कर मेनोन को मालूम था कि पिताजी उनकी बहस सुनकर मजा लेने के लिए आते हैं।

अपने विषय तक सीमित रहनेवाली बहस पिताजी को बहुत पसंद थी। कानून की धाराओं को उद्धत करते समय भावविभोर हुए पिताजी के मुखमंडल पर एक मुस्कुराहट छा जाती थी।

किसी भी मुकदमे में पिताजी ने कोई सहायता नहीं की। पूछने पर उनका जवाब यही रहता, 'तुम किताब देख लो। मुझे तो कुछ विस्मरण भी होने लगा है।'

विस्मरण तो उन्हें मरते दम तक, जीवन के आखिरी क्षण तक भी, कभी नहीं हुआ। वह सब मात्र एक अभिनय होता था।

मुंसिफ की नौकरी मिली तो पिताजी ने सबसे पहले मंदिर में विशेष पूजा-अर्चना, पुष्पालंकार और दीमालंकार करवाया। मन ही मन पिताजी ने पहले ही यह सब करवाने का संकल्प किया होगा। पर उन्होंने यह सोचा है, यह किसी पर जाहिर नहीं किया। 'भगवान की कृपा सदा बनी रहे, इसलिए एक पुष्पालंकार और दीपालंकार करवा लेते हैं।' ऐसा ही उन्होंने कहा।

उस दिन गोटे की किनारीवाली धोती पहनकर शान से पिताजी मंदिर-प्रांगण में खड़े थे। मंदिर में पूजा-पाठ करने के लिए आये लोगों से पिताजी ने कहा था, 'बेटा मुंसिफ बन गया है !' उनका यह कहना ऐसा प्रतीत हो रहा था जैसे इस धरती पर मुंसिफ होने के लिए अगर कोई पैदा हुआ है तो वह उनका बेटा ही है।

वह पिताजी के लिए खास दिन था।

मुंसिफ का पद-भार ग्रहण करने के लिए जाने से पहली रात को पुराने किस्से सुनाना आरंभ कर दिया था पिताजी ने। कानून की कमियों और अदालत में होनेवाले कार्यक्रमों और अपूर्णताओं के बारे में उन्होंने बताया। फिर कहने लगे, 'जज अगर लायक हो, अच्छा हो तो अदालत एक न्यायपीठ से कम नहीं हो सकती। सत्य ही अदालत हो जाता है।' फिर कहा था, 'फैसला करने वाला मनुष्य नहीं है, भगवान है। यह बात हमेशा याद रखना।' और यह बात मेनोन को हमेशा याद भी रही।

जब पिताजी का वक्तव्य पूरा हुआ, आधी रात बीत चुकी थी। इतने पर भी पिताजी में सोने की तैयारी के कोई चिह्न नहीं दिखाई दे रहे थे। मां ने चेताया था, 'क्या उसे कल नौकरी पर नहीं जाना ? क्या सोने का वक्त नहीं हुआ है ?'

'हां।'

फिर भी पिताजी आरामकुर्सी पर से नहीं उठे। मानो वह दिन और वह प्रसंग कभी खत्म न हो— ऐसा पिताजी चाहते हैं।

उन्होंने आराम से अच्छी तरह एक बार फिर पान चबाया। सारी दुनिया सो चुकी थी।

अपने चेहरे पर फबनेवाली उस खास मुस्कुराहट के साथ पिताजी मां की ओर मुड़े और कहा, 'एक भजन गा लें तो कैसा रहे ?' मां बहुत अच्छा गाती थीं।

वे मुस्कुराईं—'इस आधी रात को .....'

'कहां गया तुम्हारा तार-यंत्र ? .... उसे जरा उठा लाओ।' मां की वीणा को पिताजी का दिया यह प्यार का नाम था।

'अच्छा रहने दो', पिताजी ने कहा था, 'बेटा, तुम जाकर जरा वीणा उठा लाओ।'

वीणा के तारों को ठीक करके मां ने चेहरा ऊपर उठाया और पिताजी से पूछा, 'कौन सा गीत ?'

'जो तुम्हें सबसे प्रिय हो।'

'नहीं, 'जिस जिस को' जो पसंद हो वही ठीक है।'

मां ने प्यार से पिताजी का नाम 'जिस जिस को' रखा था। पिताजी ने भजन बता दिया था।

आधी रात की निस्तब्धता में, जब सारी दुनिया सो रही थी, जागी हुई वह आनंद भैरवी उन्हें आज भी याद है। उसके बाद भी पिताजी बेमन से ही सोने के लिए उठे थे। वह भी मां के आखिरी बार उलाहना देने पर कि, 'अब चाहे जो भी हो, इस तरह बैठना ठीक नहीं। आप उठिए।'

आंखों में निद्रा का आगमन हुआ ही था कि मुर्गे की बांग सुनाई दी थी।

बेटे के मुंसिफ बनने के बाद पिताजी ने अदालत जाना ही छोड़ दिया था। मुवक्किलों के सामने लोक-महायुद्ध जीते योद्धा की तरह हाथ फैलाकर कहते, 'बस, अब और नहीं कर सकता।'

मगर एक बार अदालत में गये भी थे। सिर्फ एक बार। वह भी न्याय पीठ पर बैठे अपने पुत्र को देखने के लिए। पर वहां जाने का क्या नतीजा होगा, इसे वह पूर्णरूप से समझ नहीं सके हैं, यह एकदम स्पष्ट था।

एक गंभीर मुकदमे की सुनवाई हो रही थी। सारा ध्यान उसी में लगा था, इसलिए पिताजी को आते नहीं देख सके। जब बयान समाप्त कर वकील अपनी कुर्सी पर बैठ गया, तब उनकी ओर ध्यान गया।

झटपट उठ गये।

अदालत में यह एक अभूतपूर्व घटना थी।

पिताजी अचंभे से चारों ओर देख रहे थे, जैसे कुछ समझ में नहीं आया हो। फिर उठकर चुपचाप बाहर चले गये थे।

बयान सुनने के लिए आये लोगों की भीड़ में दबी जबान में यह सुनाई पड़ा था, 'मुंसिफ

साहब के पिता हैं।'

घर पहुंचने पर पिताजी ने बुलाया था, 'बेटा! यह कैसी बेवकूफी की तुमने ?'

भास्कर मेनोन की समझ में कुछ नहीं आया।

'क्या जज की कुर्सी से उठना ठीक था ?'

'मगर पिताजी ..... '

'उस कुर्सी की गरिमा यह है कि पिता तो पिता, देवेंद्र भी अगर आ जाये, तो भी उस पर से उठना नहीं चाहिए। क्या तुम्हें यह बात मालूम नहीं है ?'

न्यायपीठ के प्रति पिताजी की अपार श्रद्धा इन शब्दों में छलक रही थी। न्यायपीठ के सामने पिता-पुत्र संबंधों का प्रश्न ही नहीं उठता।

मां की खोज-खबर लेने के लिए आने से बचाव हो गया था। मां ने कहा, 'उसने जो किया वह सही है। बड़ी आयी वह न्यायपीठ ! आप भी न जाने क्या क्या कहते रहते हैं।'

'अगर तुम यह सोचती हो तो यही सही !' पिताजी ने मुस्कुराते हुए कहा था।

सुख-चैन के दिन फिर अचानक ही समाप्त हो गये थे। मां का वामांग लकवे से बेकार हो गया, तार टूटी वीणा की तरह !

ताई जी की बेटी, अनूप की मां तभी से उस घर की अभिन्न अंग बन गयी। उनकी शादी के पहले की बात है यह।

तरक्की और स्थानांतरण होने की वजह से मेनोन भी घर से दूर अन्य प्रांतों में रहने लगे।

तसल्ली यही थी कि मां ने अपने जीवन में सब सुख देखने के बाद ही आंखें मूंदी थीं। मेनोन की शादी और वासंती के जन्म के बाद ही उनकी मृत्यु हुई।

शादी भी मां ने ही तय की थी। शैया पर लेटे हुए मां ने कहा था, 'वलियकलम (घर का नाम) की जानकी ही मुझे पसंद है। और कहीं कोई लड़की खोजने की कोई जरुरत नहीं है। सिर्फ जन्मकुंडली देखनी होगी।'

पिताजी ने पत्र देकर एक आदमी को भेजा— मेनोन से कहो कि घर आ जाये।

'मां को ....?' यह प्रश्न उन्होंने बड़ी व्यग्रता से पत्रवाहक से पूछा था। उसकी मुस्कुराहट का अर्थ उस समय समझ में नहीं आया था। फिर भी उसी वक्त निकल पड़े थे। पिताजी के अपराह्नकालीन शयन के समय घर पहुंचे। थकी-हारी मां ने इशारे से पास बैठने को कहा। बैठने पर बिना कोई भूमिका बांधे मां ने कहा, 'अब मैं तुम्हारी शादी देखना चाहती हूं।'

दो महीने पहले जब देखा था, तबसे मां एकदम दुबली हो गयी थीं। आवाज भी बहुत कमजोर थी। मां ने फिर कहा था, 'एक नन्हें-मुन्ने का मुखड़ा देखना चाहती हूं !'

किस लड़की को बहू बनाने का विचार है, यह भी मां ने बताया, 'वही ठीक है। कहावत है कि भात के लिए पुराना चावल और बात के लिए पुराना बंधु। जानु की तुम्हारे साथ अच्छी तरह निभेगी। अच्छी लड़की है वो।'

इस तरह सब कुछ तय हो गया। जिस लड़की को पहले कभी भी नहीं देखा था, उससे

शादी हो गयी।

पिताजी पूछे बिना नहीं रह सके थे, 'क्या तुम्हें लड़की नहीं देखनी है, एडो ?'

'एडो' कहकर पुकारना इस बात को स्पष्ट करता था कि पिताजी ने उसे अपने बराबर की पदवी दी है।

उन्होंने नकारात्मक ढंग से सिर हिलाया था।

मां ने बिस्तर पकड़ा हुआ था, इसलिए बहुत ही साधारण तरीके से शादी करने का निश्चय किया गया। मां को जब इस बात का पता चला तो उन्होंने पूरी शक्ति से इसका विरोध किया।

'फिर इस घर-आंगन में न जाने कब एक शामियाना लगेगा! यह शादी तो धूमधाम से होनी चाहिए। और कुछ नहीं तो वो कितना बड़ा आदमी है, लोग क्या सोचेंगे!'

यही सुनने के लिए पिताजी भी न जाने कब से इंतजार कर रहे थे। कुछ दिनों के लिए मां अपनी बीमारी भूल गयी। मालूम होता था, कोई उत्सव हो रहा हो।

अवियल (एक सब्जी) में पड़ने वाली सब्जियों को काटते समय उसकी कितनी लंबाई हो— यह भी मां शिथिल अवस्था में लेटे लेटे ही बताती थीं।

जानु के विषय में मां की राय सौ प्रतिशत सही निकली। पिताजी उसे प्रेम से 'शोर न मचानेवाली एक मुर्गी' कहकर बुलाते थे।

उसकी आवाज बाहर सुनाई नहीं देती थी। कोई शोरगुल नहीं। उसका दृढ़ विश्वास था कि स्नेह बाहरी दिखावा नहीं है। उसके हृदय में प्यार करने की अविचल और अपरंपार शक्ति थी। अपनी व्यथाएं शारीरिक हों या मानसिक, उन्हें सहने की क्षमता भी गजब की थी। 'जिन्हें प्यार करती हूं उन्हें किसी भी तरह से परेशान न करूं ' ऐसी एक जिद भी थी उसमें। मेनोन ने उसे हंसते या रोते बहुत ही कम देखा था। किसी पर बिना रोब जमाये, बिना अप्रसन्न किये, अपनी हैसियत की रक्षा करते हुए जानु को घर-गृहस्थी संभालते देख आश्चर्य होता था। किनारों को जताये बिना उनका आलिंगन और परवरिश करती, चुपचाप बहती नदी की तरह थी जानु। साज-सिंगार, दिखावे और बनावट में उसका विश्वास नहीं था।

कानून की पुस्तकों, शतरंज के खेल, माता-पिता के प्रति प्रेम, सम्मान और सेवा आदि में मगन रहनेवाले मेनोन के लिए एक नयी दुनिया के दरवाजे खोल रही थी जानु। मानो एकाएक वसंत का आगमन हो, और फिर भी फूलों भरे उस मौसम में उसका कोई अवदान न हो, कुछ इस तरह— सब कुछ पोंछ-पाछकर मिटा देने के लिए वह व्यग्र रहती।

एक-दूसरे को पहचानने में वे जल्दी सफल हो गये। अगर किसी बात पर झगड़े भी तो वह थी, मेनोन का देर रात तक कानूनी किताबें पढ़ना और अपनी नींद खराब करना। एक ही बात से उसे बहुत तकलीफ होती थी, एक-दूसरे से अलग रहने और बिछुड़ने पर। तबादला होने पर घर मिलने में कभी कभी समय लग जाता। इस परिस्थिति में उसका रंग-ढंग ही बदल जाता था। कहती, 'ओह, यह तो बिल्ली के सात घर ले जाने की तरह है!'

यह ऐसी स्थिति है, जिससे बचा भी नहीं जा सकता, यह जानते हुए भी उसकी

बड़बड़ाहट जारी रहती। मेनोन में जो न्यायाधीश था, उससे नहीं बल्कि जो व्यक्ति अपने काम और समय की तरफ ध्यान नहीं दे पाता, ऐसे एक छोटे बच्चे से वह प्यार करती थी। डांट-डपट वह कभी नहीं करती थी, फिर भी एक मां की सी ममता उसकी आत्मा में सदा भरी रहती थी।

पति उसके लिए उसका पहला बच्चा था। कभी कभी इसके विपरीत स्थिति भी होती थी। वह पिता के सामने खड़ी एक बच्ची की तरह बदल जाती। ऐसा कई बार हुआ। उसके पिताजी का देहांत उसकी छोटी उम्र में ही हो गया था।

गलत बातें और गलत काम करते हैं पुरुष, फिर भी उनकी गिरावट उसे पसंद नहीं थी।

गलतियों से उसका मामूली विरोध नहीं था, बल्कि धारणा तो यह थी कि गलती करके आदमी का पौरुष जाता रहेगा। पर जो व्यक्ति ठहाके मारकर हंसता है या आवश्यकता से अधिक बातें करता है, उस वह संशय की दृष्टि से देखती।

उसके बारे में सबसे खास बात थी उसकी धीमी ही नहीं, अत्यधिक सुंदर छोटी सी मुस्कुराहट। उसकी मुस्कान की शुरुआत उसकी आंखों से होती थी, जैसे भोर की किरणें सबसे पहले आकाश की ऊंचाइयों पर फैल जाती हैं! और फिर वह भरी-पूरी सुबह की तरह फैल जाती— सूर्योदय से ठीक पहलेवाली सुबह की तरह।

इसे भी वह बड़ी कंजूसी के साथ प्रकट करती थी, किन्हीं खास दिनों में।

मेनोन को पदोन्नति मिलने की खबर सुनकर, उसकी बनाई हुई किसी सब्जी को और मांगकर रुचिपूर्वक खाने पर, उषाकाल में मेनोन से पहले उठकर और स्नानकर चंदन का टीका लगाकर चाय लेकर जाते समय, पति के सोने के बाद ही सोयेगी— ऐसी जिद करके उनकी मेज के सामने बैठ जाने और आखिरी फाइल बांधकर उनके उठने, अथवा काम के अलावा भी अपनी एक जिंदगी है— इस अहसास से उसके बालों में उंगलियां फिराते हुए पति के हाथों मुखड़ा ऊपर उठाये जाने पर ऐसा समय आता था, जब उसकी मुस्कुराहट खिल उठती थी।

सिर्फ एक बार ही उसे ठहाका मारकर हंसते सुना था मेनोन ने। और हंसी भी कैसी ! कच्चे बांस के चीरने-जैसी आवाज वाली हंसी ! जैसे बहुत दिनों बाद घर वापस आये पिता अपनी छुटकी बेटी को उठाकर सिर के ऊपर उछालें और वह खिलखिला उठे— वैसी निष्कलंक हंसी थी वह!

अभी विवाह संपन्न हुए सात-आठ महीने ही हुए थे। चेहरे पर रोज से कहीं अधिक थकावट दिखाई दे रही थी। संशय से उसकी आंखों में झांककर देखा। उसने सिर झुका लिया।

झुके सिर को उठाकर फिर से देखा तो मुस्कुराई वह और उसी समय दोनों हथेलियों में अपना चेहरा छुपाकर पानी की तरह कल कल स्वर में जोर से हंसते हुए भाग खड़ी हुई।

उसके बाद उसने तीन बार गर्भ धारण किया। बच्चों को जन्म भी दिया। पर; वह हंसी फिर कभी सुनाई नहीं पड़ी। ऐसी परिस्थिति ही फिर शायद नहीं हुई होगी।

जानु की पहली प्रसूति उसकी मां के घर हुई थी। पति से अलगाव ने तब पहली बार

उसे बहुत परेशान किया था।

प्रसव का समय निकट जानकर, छुट्टी लेकर घर पहुंचे थे मेनोन। पर बच्चे का पैदा होना तो किसी ने भी नहीं जाना।

प्रसवपीड़ा शुरू होते ही उसने शयनागार में घुसकर दरवाजा बंद कर लिया था। किसी तरह का रुदन या कराह तक किसी ने नहीं सुनी। अंतत: पीड़ा असह्य होने पर जब अनजाने में चीख निकली, तो नाणियम्मा को स्थिति का ज्ञान हुआ। और उस चीख के साथ ही शिशु का रुदन भी सुनाई दिया।

पिताजी सहित शतरंज के मोहरों के सामने बैठे थे मेनोन कि दोनों अचानक चौंके और मुड़कर देखने लगे। मां ने लोहा मान लिया उसका।

इसके बारे में जानु ने बाद में बताया कि बीमार और कमजोर मां और 'अन्य लोगों' को परेशानी न हो, इसीलिए उसने दांत भींचकर दर्द सहन कर लिया था।

यही भावना थी, जिसके कारण खतरनाक बीमारी से पीड़ित होने पर भी उसे बहुत दिनों तक छुपाये रखने की जानु को प्रेरणा मिली। रोग ऐसा भयंकर होगा, यह शायद उन्होंने सोचा भी न हो। मगर दर्द ?

एक बड़ी इच्छा पूरी होने को तीन महीने अभी नहीं बीते थे कि मां चल बसी। उसके आठ दिन बाद ही पिताजी ने भी प्राण त्याग दिये। पिताजी के मरने पर रिश्तेदारों की एक सेना जैसी घर में थी। मां की मृत्यु के बाद तो जैसे एकाएक पिताजी के हंसी-मजाक का अंत हो गया था। फिर भी उन्होंने उस दिन भी स्नान करके भगवत्नाम का जाप किया।

'बिना किसी कारण और बिना किसी मतलब के अब मैं क्यों जीता-खाता रहूं, बंधुओ, तुम्हीं बताओ ?' रिश्तेदारों द्वारा जब उनसे चाय-नाश्ता करने को कहा गया, तो उनका यही उत्तर था।

और उस रात जो सोने के लिए लेटे तो अगले दिन नहीं जागे।

एक प्रकार का गांभीर्य और उदासी लिये श्राद्धकर्म के बाद अपने बच्चों सहित अपनी नौकरी पर पहुंच गये मेनोन। कई दिनों तक बनी रही उनकी वह उदासी।

एक दिन सवेरे सवेरे खुली हुई फाइल के सामने बगैर कुछ देखे या सुने भरी आंखों मेनोन से जानु ने पूछा, 'मृत्यु का प्रतिविधान क्या है ?'

ऐसा लगा, जैसे कोई आकाशवाणी हो रही है। न जाने वह कब उसके निकट चली आई थी या कितनी देर से वहां खड़ी थी। कुछ पता नहीं। क्या प्रतिविधान है ?

मृत्यु की ओर सरकती हुई जानु जब शैया पर पड़ी थी और दूसरों से छिपकर आंसू बहा रही थी, तब उनके मन को दिलासा देने का व्यर्थ परिश्रम इसी सवाल में निहित था।

मृत्यु का प्रतिविधान क्या है ?

यह तो जानु का ही प्रश्न था। सत्य क्या है, वे शायद नहीं जानती, ऐसा मेनोन ने सोचा। मगर कब वह इस बात को समझ सकी, यह नहीं जान पाया।

बच्चों की अनुपस्थिति में जब वे एक दिन बिस्तर के समीप बैठे तो उसने कहा था,

'मैं जा रही हूं, है न ?'

अपने आपको संभाल नहीं सके थे वे दोनों।

बहुत बेपरवाह होकर उसने सांत्वना दी थी, 'छिः ! क्या हुआ ? ..... क्या यह सब ऐसे ही नहीं होता ? दूसरे का सहारा लेने से पहले ये बच्चे अपने पैरों पर खड़े हो जाते, यही चाहती हूं मैं।' फिर वो मुस्कुराई थी।

लगा, उस मुस्कुराहट में कहीं विगत ही बरसने के लिए घुमड़ आया है, पर गर्भपात हुई सावनी घटा की अवशेष मात्र रह गयी थी वह।

यही उसका आखिरी वाक्य था और यही आखिरी मुस्कुराहट।

ऐसे लोग इस धरती पर शायद ही होंगे, जिन्होंने एकांत में बैठकर आत्महत्या करने के बारे में न सोचा हो या फफक फफककर न रोये हों।

'अब मैं किसके लिए जीवित रहूं ?' यह विचार कभी-कभार भास्कर मेनोन के मन में भी उठता था, मगर सुकु और सती तुरंत उस ख्याल पर पूर्णविराम लगा देते थे।

सबकी नजरें बचाकर वे जी भरकर रोये। साथ ही भगवान पर उनकी आस्था दृढ़ होती चली गयी।

बंद दरवाजे की दूसरी ओर माता-पिता और भगवान के चित्रपट के सामने हाथ जोड़े खड़े मेनोन की आंखों से टप टप कर आंसू गिर रहे थे।

भगवान से दो ही प्रार्थनाएं थीं उनकी— सुकु रोग-मुक्त हो जाये और सती को किसी योग्य व्यक्ति के हाथों में सौंप सकें। काश, ऐसा हो सकता तो कांटों की सेज पर उनका बैठना हमेशा के लिए समाप्त हो जाता। शरीर और कमरे की दीवारों के भौतिक सहारे को पार कर उनकी मूक प्रार्थना सागर-लहरियों की तरह हिलोरें ले रही थी।

दरवाजे पर दस्तक सुनाई दी। उन्होंने अपने आंसुओं को रोका। आंखें पोंछकर गला साफ किया।

''पिताजी!'' सती ने पुकारा, ''देर बहुत हो गयी है।''

''खाना परोस दो।''

देवताओं के सामने कान पकड़े क्षमा-याचना करते और घुटनों के बल झुककर प्रणाम कर उठते हुए भास्कर मेनोन सोच रहे थे, 'यह सब कुछ जानती है। मगर कुछ भी न समझने का स्वांग करती है। इसको उबारना ही होगा, किसी न किसी तरह!'

चार

रसोई के सामने वाले दालान में नाणियम्मा ने खाने की मेज पर तश्तरियों में खाना सजा रखा था।

मेनोन पूजाघर से निकलकर अपने कमरे में चले गये और गीले कपड़े बदलकर सूखे कपड़े पहन लिये। फिर दालान की तरफ चले तो सती भी उनके पीछे चल दी।

दालान के दरवाजे पर पहुंचकर मेनोन ने भीतर झांककर देखा और पीछे मुड़कर पूछा,

''अनूप को नहीं बुलाया?''

''अभी बुला लेती हूं। सोचा था, आपके आ जाने के बाद बुला लूंगी।''

''बेटा अभी नहीं उठा क्या?''

''नहीं, सो रहा है।''

''अभी सो रहा है। क्यों? पहले ऐसा नहीं होता था।''

''सोचा , सबका खाना हो जाये, उसके बाद जगाकर खिला दूंगी। ''

मेनोन मुड़कर सुकु के कमरे की ओर चलने लगे। छाया की तरह सती भी पीछे हो ली। सुकु के कमरे में जाकर मेनोन रुक् गये।

''कब से सो रहा है?''

''चार-साढ़े चार बजे के आसपास सोया था।''

''शायद भूख लग आई होगी।''

''जी हां, लगी होगी।''

''जगा देना। मैं जाकर अनूप को बुला लाता हूं।''

भास्कर मेनोन आंगन की ओर और सती रसोई में चावल लेने चली गयी।

उधर अपने ख्यालों में खोया अनूप एक खंभे से पीठ लगाये बैठा था। कितनी देर इस तरह बैठे बीत गयी है, इसका उसे पता ही नहीं चला।

न जाने क्यों मामाजी ने उसे जाने से रोक लिया है। सती के बारे में बात करने के लिए तो नहीं रोका होगा। यह बात मामाजी उससे कभी नहीं करेंगे।

फिर न जाने वे क्या कहना चाहते हैं?

अनूप सती से दिल खोलकर सब बातें करना चाहता था, पर उसे खोजते हुए उसके कमरे में भी नहीं जाना चाहता था। सती के मन में कहीं कोई और बात न आ जाये!

लेकिन सती ने क्या निर्णय लिया है, यह जानने के लिए अनूप उतावला हो रहा था। पहले दोनों बार ऐसे खड़ी रही, जैसे सोचने के लिए और समय मांग रही

हो। सुकु जल्दी ठीक हो जायेगा, शायद यही उसने सोचा हो। आज उसके चेहरे से स्पष्ट था कि अब उसे सुकु के ठीक की कोई उम्मीद नहीं है। सुकु शायद सारी जिंदगी इसी तरह रहेगा और सती उससे बिछुड़कर जी न सकेगी, कहीं उसने ऐसा तो नहीं सोचा? साथ ही अनूप को संदेह होने लगा कि सती अनूप के प्रति अपने प्यार को अनदेखा कर— अपने भाई को छोड़कर न जा पाने की स्थिति में — एक बहुत बड़ा त्याग करने की तैयारी कर रही है। ऐसा निश्चय कर लेना उसके स्वभाव के एकदम अनुकूल है। अपने काम को सदा पीछे ठेल देना उसकी आदत है। अपने निजी जीवन की इच्छाओं और सपनों को पूरा करने के लिए जीना उसे स्वार्थपूर्ण लगता है। उसके तर्कों को आसानी से समझा जा सकता है। अनियेट्टन को तो एक बढ़कर एक सुंदर लड़कियां मिल जायेंगी, पर अगर वह अनियेट्टन के साथ चली गयी तो छोटे सुकु की सेवा करने के लिए तो और कोई नहीं मिलेगा। अनियेट्टन को ये बातें सुनकर बहुत दुख पहुंचेगा, यह सोचकर ही वह अपने फैसले का खुलासा नहीं कर रही। वह स्वयं ही उसके विचारों को भांप ले, यही सोचकर शायद उसने चुप्पी साध रखी है। संभव है, इस तरह वह अनियेट्टन और अपने प्रेम की परीक्षा लेना चाह रही हो। लेकिन अनूप हो हार नहीं माननी चाहिए, ऐसा उसका मन कह रहा था।

इसकी विपरीत परिस्थिति भी हो सकती है। अनूप को अनुकूल उत्तर देने पर सुकु के भविष्य पर क्या प्रभाव पड़ेगा, शायद यही सोचकर सती रुदन कर रही हो? एक अनुकूल उत्तर देने की चाह उसके मन में उभर रही है, यही सोचा भी जाना चाहिए।

कुछ भी हो, कुरेद कुरेदकर पूछना, बार बार तंग करना और दिल पर वार करके चोट पहुंचाना ठीक नहीं है। कुछ समय और प्रतीक्षा कर लेंगे। जरूरत पड़ी तो साल भर भी इंतजार कर सकते हैं। प्रेम का तकाजा तो यही है कि प्रेमी को किसी धर्मसंकट में न डालें।

नारियल-वृक्षों के पत्तों पर मद्धिम चांदनी छा रही थी। सांझ की निश्चलता को भुलाकर समीर मंद मंद चलने लगी थी।

बाग में कहीं उल्लू बोल रहे थे, मानो कोई सवाल-जवाब कर रहे हों। एक ही सवाल और उसका एक ही उत्तर । उत्तर जानते हुए भी जैसे उसी एक प्रश्न को दोहरा रहे थे। हजारों बार दोहराया वही प्रश्न, तो भी बिना झिझक, बगैर मीन-मेख या अंतर के वही जवाब। कितनी सहनशीलता थी उनमें!

मंदगति से बहती नहर में खड़े होने पर छोटी छोटी लहरें छाती से टकराती और ठंडक पहुंचाती हैं। ऐसे में अगर सिर का कोई बाल भी पानी की सतह को बेंधकर पांवों की उंगलियों में फंसे जाये, तो एक तरह की झुंझलाहट होती है और रंग में भंग पड़ जाती है। ऐसी ही कुछ दशा अनूप के हृदय की हो रही थी। एक तरह की कसक थी दिल में। जैसे सर्दियों में सुबह के उजाले पर कोहरे का आवरण चढ़ जाने पर

और अंधेरा सा छाने लगता है, उसी तरह एकांत में उसे अपने शरीर को सिकोड़कर और अपने सिर को घुटनों में छिपाकर बैठने में कष्ट का अनुभव होता है। तो क्या अपने हृदय की अनगिनत इच्छाओं को दिमाग के तहखानों में कहीं गाड़ देना पड़ेगा? अनूप ऐसा सोच रहा था।

फिर वह सती के व्यथित मन को ठंडक पहुंचाने के लिए अपने हृदय-कपाट खोलने के लिए तत्पर होने लगा।

मैं, मेरा लक्ष्य, मार्ग और मेरी क्षमताएं— इस तरह के भाव ही अनूप के मन में उठते रहते थे। अपने व्यक्तित्व का ज्ञान, धैर्य, आत्मविश्वास रूपी अश्वबल और दूसरों के बारे में ज्यादा सोच-विचार न करना—ये सब अनूप के गुण थे।

अनूप को अब तक किसी महत्वपूर्ण व्यक्तिगत दुख या पराजय का सामना नहीं करना पड़ा था। पिताजी की मृत्यु एक बहुत बड़ा आघात अवश्य थी, वह पराजय नहीं थी, क्यों अनूप ने उस आघात को स्वयं पर हावी नहीं होने दिया।

जहां तक सती या मामाजी का सवाल है, वहां मन: स्थिति कुछ और हो जाती है। इस बात को अनूप ने अच्छी तरह समझ लिया था। उनसे प्यार के नाते उनकी कहां तक और कैसे मदद की जाये,यही अनूप सोचता रहा था।

सुकु के इलाज के लिए और क्या किया जा सकता है, इसका पता लगाना जरूरी है। अगर इस दिशा में कुछ किया जा सकता है तो मामाजी की मदद जरूर करूंगा। हां, आर्थिक सहायता की जरूरत होगी तो अनूप की हैसियत अवश्य इतनी नहीं है कि वह कुछ कर सके।

रहा सती का मामला, तो जब उसकी इच्छा हो वह अपनी मर्जी से निर्णय ले। धर्मसंकट की गहराइयों में डूबे बगैर वह सब्र से प्रतीक्षा कर सकता है। सती शायद सोचती होगी कि अगर प्रेम का बंटवारा किया गया तो दोनों पक्षों के लिए वह अपर्याप्त होगा। वास्तव में स्नेह का बंटवारा कभी भी बराबर नहीं हो सकता। समय और दूसरे का ध्यान रखने का ही बंटवारा हो पाता है।

स्नेह के एक छोटे हिस्से को पा लेने से ही अनूप को संतोष नहीं होगा, यह बात सती अच्छी तरह जानती है। इसमें कोई आश्चर्य भी नहीं है। पर सती को किसी भी प्रकार के धर्मसंकट में डालना उचित नहीं होगा। उससे पूछकर बहुत गलती की। अगर उसे वह खुश नहीं रख सकता तो कम से कम रुलाना तो नहीं चाहिए।

सुकु स्वस्थ हो जाये तो सती खुश होगी और मामाजी भी खुश होंगे। यह घर फिर ठहाकों और वीणा की झंकारों से गूंज उठेगा। सती की लंबी उंगलियां जब वीणा के तारों पर थिरकती हैं, तो देखते ही बनता है।

अचानक अनूप को याद आया कि चंडीगढ़ में एक प्रसिद्ध मस्तिष्क रोग शल्यचिकित्सक (न्यूरोसर्जन) हैं। वे मलयाली हैं। कई बरस लंदन में रह चुके हैं। बड़े ही अनुभवी और दूरद्रष्टा हैं। अनेक लोगों के मुंह से उनकी बड़ी तारीफ सुनी

है। अनूप के दोस्त डा. मोहन सिंह ने भी कई बार उनकी सराहना की है। उनके पास सुकु को ले जाया जाये तो? इस विषय में मामाजी को खबर करनी चाहिए।

इन चिंताओं में डूबे हुए अनूप ने जैसे ही अपना सिर उठाया, तो ड्योढ़ी पर प्रतिमा की तरह सती को खड़ी पाया। वह एकटक उसे देख रही थी। न जाने कब से वह वहां खड़ी हुई थी।

"सती, तुम्हारे आने का तो मुझे पता ही नहीं चला।"

सती की ओर से जो प्रतिक्रिया हुई, वह यह थी, "पिताजी पूजाघर में हैं। अगर भूख लगी हो तो......"

"नही लगी।"

फिर भी वह प्रतिमा की तरह खड़ी रही।

चंडीगढ़ के न्यूरोसर्जन के बारे में बताया। यह खबर सुनकर सती मारे खुशी के उछल पड़ेगी, ऐसा अनूप ने सोचा था। पर यह ख्याल भी गलत निकला। सती कुछ कहना चाहती है, ऐसा उसे महसूस हुआ। ऐसा न होता तो वह यहां क्यों आती?

थोड़ी देर और प्रतीक्षा की। मगर नहीं। उसने कुछ भी नहीं कहा। अनूप ने जैसे तैयारी ही कर ली थी। बोली, "सती!"

"हूं।"

"तुम मुझे क्षमा कर देना।"

"किसलिए, अनियेट्ट?"

सती की इस प्रश्न-भंगिमा ने अनूप को विवश कर दिया। अनियेट्टन को कोई भी गलती करने का अधिकार और स्वतंत्रता मिली हुई है, यह भाव उसके स्वर में स्पष्ट था। अनूप को लगा—मैंने जो किया, वह ठीक नहीं है और सती के उन शब्दों से जैसे मेरे विश्वास की पुष्टि हो गयी है।

"सती! मुझे तुमसे वह आखिरी प्रश्न नहीं पूछना चाहिए था।"

"ऐसा किसने कहा?"

"मुझे ऐसा ही लगता है।"

"यही आपकी गलती है। आप मुझसे जो चाहे पूछ सकते हैं।"

"फिर कभी मैं ऐसा प्रश्न नहीं करूंगा।"

"अनियेट्टा," सती ने कहा, "अगर मैं एक बात कहूं तो आप नाराज तो नहीं होंगे?"

"मैं भला नाराज क्यों होऊंगा?"

"जो प्रश्न आपने पहले मुझसे किया था, क्या किसी और से भी....?"

अनूप मन ही मन बुदबुदाया: अच्छा तो यही है सती का निर्णय!

"क्या मतलब किसी और से?" मगर सती ने बात अधूरी ही छोड़ दी थी। अनूप ने पुन: दृढ़ स्वर में कहा, "ऐसा नहीं होगा सती! कदापि नहीं होगा।"

इसके बाद भी सती बहुत देर तक मौन धारण किये खड़ी रही।

इतना कहने के बाद अनूप को लगा, मानो उसकी छाती से एक बहुत बड़ा बोझ उतर गया है। चांदनी जैसे अत्यधिक उजली और चमकीली हो गयी हो। रात्रिकालीन समूहगान जैसे और संगीतात्मक हो गया हो।

अब किसी और प्रश्न की गुंजाइश है, ऐसा अनूप ने सपने में भी नहीं सोचा था। लेकिन सती ने बातचीत जारी रखी, "अच्छा तो फिर?"

अनूप शुष्क हंसी हंस दिया। जीवन में पहली बार वह प्यार के सामने हार मान रहा था और उस हार की शीतलता में जैसे गोते लगाकर नहाने के आनंद का अनुभव कर रहा था। जीवन में पहली बार उसे इस सुख का आस्वादन करने का मौका मिला था।

उस आस्वादन की दिव्यानुभूति को सती के प्रश्न ने पुन: भंग कर दिया। अनूप ने सिर झुकाकर कहा, "मेरे धीरज की पराकाष्ठा को तुम धीरे धीरे समझ जाओगी।"

"क्या इसकी जरूरत है, अनियेट्टा?" सती ने पूछा।

"क्यों नहीं?"

"अगर यह सब कर्तव्य के नाम पर है तो....."

"ऐसा होता तो सब कुछ कितना आसान हो जाता।"

तभी अनूप को भर्राये हुए कंठ से निकली आवाज सुनाई दी : 'हे भगवान!'

अनूप ने बुरी तरह अपने आपको कोसा। वह चाहे जिस ढंग से बातचीत की शुरुआत करे, मगर अंत में सती को रुलाने में ही सफल हो पाता है। यह सब होने पर जैसे उसका नियंत्रण जाता रहा। वह उठकर सती के पास गया और बोला, "सती! अगर तुम्हें मुझमें छुटकारा चाहिए तो दुखी हृदय के साथ......"

सती चौंक उठी, मानो वह आग में झुलस गयी हो और उसने अनूप के होठों पर हाथ रख दिया, "ऐसा मत कहो।"

लेकिन ऐसा करना अनुचित था, इसलिए उसने तुरंत अपना हाथ पीछे खींच लिया। एक कदम पीछे हटकर दरवाजे से सटकर खड़ी हो गयी और रोते हुए बोली, "मैं और...... छोटा भाई...."

सती को अपने हृदय से लगाते हुए अनूप बोला, "तुम दोनों मेरे अपने ही तो हो।"

पकड़ ढीली करते हुए सती कुछ दूर छिटककर बोली, "नहीं, नहीं अनियेट्टा! नाहक आप अपने ऊपर यह बोझ क्यों डालते हैं?"

"हां, ऐसा ही करना चाहिए।" अनूप ने फिर आगे बढ़कर उसके कंधे पर हाथ रखते हुए कहा, "यह बहुत जरूरी है।" मानो प्राणवायु के लिए कोई छटपटाये, सती इस लहजे में बोली, "ऐसा कभी भी नहीं होना चाहिए, अनियेट्टा! यह ठीक नहीं है।"

और वह अपने कंधे से अनूप का हाथ हटाकर अंदर चली गयी। घुटी हुई सिसकियों के कारण उसके कंधे जैसे थरथरा रहे थे।

अनूप बरामदे में रखे सोफे पर जाकर बैठ गया। उसके एक दृढ़ निश्चय कर लिया था। किसी भी कीमत पर सती के दुखों का निवारण करना होगा।

सती की देह की वह खास सुगंध अभी तक उसकी नाक में बसी हुई थी। तीन वर्ष पहले, इसी आंगन में उसे इस गंध का पहली बार अहसास हुआ था।

पगडंडी के किनारे लगे आम्रवृक्ष के फल ने ही उस गंध से परिचित कराया था। कच्चा आम दांतों से कुतर कुतरकर खाने में सती को बड़ा मजा आता था। उन दिनों हंसने से भी उसे इतना परहेज नहीं था। सुकु उस समय सती के लिए इतनी बड़ी मानसिक व्यथा का विषय नहीं था।

आम्रवृक्ष की टहनियों के बीच लटके इकलौते आम को सती ने ढूंढ़ ही निकाला था। पत्थर और मिट्टी का ढेला उठाकर उस पर निशाना लगाना भी शुरू कर दिया था।

अनूप दूसरी तरफ आम के तने से पीठ लगाये कोई पुस्तक पढ़ रहा था। आवाज सुनकर मुड़ा तो सती को खड़े पाया। देखते ही वह ऐसे सकपका गयी, जैसे कोई भूत देखा हो। सफाई देते हुए हकलाकर बोली थी, 'एक .... आम!'

'किधर?'

हरी पत्तियों की ओर इंगित कर बोली, 'वहां।'

अनूप ने पुस्तक को बंद किया, ढेले उठा लिये और बाड़ की दूसरी तरफ जा पहुंचा। पर उसे वहां कोई आम दिखाई नहीं दिया।

'वो देखो अनियेट्टा, वो सामने!' सती ने कहा था।

'कहां?' अनूप बोला।

'तुम्हारी आंखें भी खूब हैं!' सती ने जल-भुनकर कहा था।

'तुम्हें भी तो बड़ा लालच है आम खाने का।' अनूप का प्रत्युत्तर। तभी सती ने अनूप को हाथ पकड़कर खींचा था और उसे अपने करीब लाकर अपने सीधे हाथ को ऊपर उठाकर बोली थी, 'वो देखो न, इस हाथ की सीध पर!'

हाथ की सीध पर देखने के लिए जब अनूप अपना चेहरा उसके नजदीक लाया तो उसका गाल सती के गाल से छू गया ...... ऐसा तब पहली और आखिरी बार हुआ था।

आम तो अनूप ने देख लिया, पर सती अगले ही क्षण अदृश्य हो गयी थी! अनूप भी लज्जित-सा हुआ था। इसके बाद दो-तीन दिन तक दोनों एक-दूसरे से नजरें बचाते फिरते रहे थे।

मगर वह खुशबू! वह तो जैसे सुगंध। यह तेल, चंदन, वस्त्र, साबुन या इत्र की खुशबू नहीं थी। यह तो सती की अपनी सुगंध थी।

एक अटल निर्णय कर लेने पर अनूप का मन ऐसे शांत हुआ, जैसे बाढ़ का पानी उतर जाये। सड़े-गले झाड़-झंखाड़ों की जगह नयी-नयी कोपलें फूटने लगें। अपने अहं को लय करके आत्मसमर्पण के आनंद में न जाने कितना समय बीत गया, अनूप को इसका आभास ही नहीं हुआ।

"अकेले बैठे बैठे ऊब गये होगे न?"

"आओ। खाना खा लें।"

झटपट अनूप सोफे से उठ खड़ा हुआ और मामाजी के पीछे चल दिया।

आंगन में रखी मेज पर सती सुकु के भात में दही मिला रही थी। मामाजी का रात का खाना दोसा और कॉफी ही होता था। उसके सामने विराजमान होकर मामाजी ने अनूप को बैठने का निमंत्रण दिया। अनूप ने बैठकर चारों ओर नजर घुमायी। मां और नाणियम्मा रसोई के दरवाजे से सटकर खड़ी हुई थीं। उनके चेहरे से ऐसा लगता था, जैसे उन्होंने कोई शैतानी की हो।

"खाना क्यों नहीं परोसा जा रहा है?"

मामाजी ने सती से यह प्रश्न किया था। सती ने अपने हाथ धोये और खाना परोस दिया। अनूप को अब उनकी शैतानी समझ में आ गयी थी।

बरामदे के बाहर जो बातें हुई थीं, उनका कोई भी आभास सती के चेहरे पर नहीं था। अनूप का चेहरा भी स्वाभाविक हो गया था।

मिलाया हुआ दही-भात लेकर सती चली गयी।

अनूप ने अब चंडीगढ़ के शल्यचिकित्सक के बारे में बताना शुरू किया।

मामाजी का मुखमंडल क्षण भर के लिए प्रकाशमान हो उठा और फिर बुझ गया। उनके चेहरे के आते-जाते भावों को अनूप ने स्पष्ट देखा। कुछ समय बाद एक लंबी सांस लेकर मानो वे अपने आप से कहने लगे, "सुकु के बारे में तुम्हारे विचार जानने के लिए ही मैंने तुम्हें रोका था। भगवान की कृपा न जाने किस समय हम पर बरस पड़े। कोशिश करके देख लेते हैं।"

तय यह हुआ कि अनूप जब छुट्टियों के बाद दिल्ली जायेगा, तो सब उसके साथ जायेंगे। वहां पहुंचकर जितनी जल्दी हो सकेगा, डाक्टर साहब से मिलने का समय निश्चित कर लेंगे। तत्पश्चात सुकु की चिकित्सा के आधार पर आगे का कार्यक्रम तय कर लेंगे।

फिर न जान क्या सोचकर मामाजी ने पूछा, "तुम्हें तकलीफ तो नहीं होगी?"

"नहीं तो।" अनूप ने एक ही सांस में कहा।

"बड़े भैया," आप क्या कह रहे हैं!" दरवाजे की दूसरी ओर से अनूप की मां ने धीरे से कहा, "इसकी सुविधा देखकर चलना क्या जरूरी है?"

"फिर भी," मामाजी ने एक बार फिर जोर देते हुए कहा, "दफ्तर में अधिक काम हो तो इससे काफी असुविधा होगी इसे।"

इस बात का जवाब देने के बजाय अनूप चंडीगढ़ वाले डाक्टर की खूबियों के बारे में—जितना उसे मालूम था—बताने लगा।

भोजन की मेज से उठते हुए मामाजी के मन में कुछ आशाएं अंकुरित हो रही थीं। मामाजी ने कहा, "उसके (सुकु के) दुर्भाग्य का अंत होने का समय आ गया है, ऐसा प्रतीत होता है।"

"एक बार काशी जरूर जाना चाहिए। अब अगर नहीं गये तो फिर कभी जाने की संभावना नहीं होगी।"

अनूप का मन संतृप्त हो गया। उसे यह संतुष्टि थी कि वह भी कुछ करने की क्षमता रखता है।

जीवन में वह जो कुछ भी बन पाया है, उसका श्रेय तो मामाजी को ही जाता है। बिना किसी सोच-विचार या नाप-तोल के उन्होंने अनूप के लिए अपने स्नेह का भंडार खोल दिया था।

हाथ धोकर मामाजी सुकु के कमरे की ओर बढ़ गये। अनूप उनके अनुगामी की तरह पीछे हो लिया।

पलंग के किनारे पर बैठे सुकु को एक छोटे बच्चे की तरह 'आं' कहकर सती खाना खिला रही थी। उसकी दाढ़ी पर दही-भात का अभिषेक हो चुका था।

अनूप को देखकर वह भय से सिकुड़ गया। अपरिचितों से मिलने पर वह ऐसा ही करता है। सती से लिपटकर सुकु ने उसकी धोती में अपना मुंह छिपा लिया।

सती ने भात की कटोरी को एक हाथ में पकड़ा और दूसरे हाथ से सुकु के बाल सहलाने लगी।

मामाजी ने पुकारा, "बेटा!"

धोती में से मुंह बाहर निकालकर भयभीत सा सुकु चोरी चोरी देखने लगा। अनूप पर नजर पड़ते ही उसने फिर मुंह फेर लिया और दो-तीन बार ऐसा करने पर सुकु के लिए यह एक खेल-सा बन गया।

सती की धोती भात से भर गयी और मुचड़ गयी।

दिल्ली-यात्रा के बारे में मामाजी ने जब सती के कहा तो उसका प्रत्युत्तर केवल एक ठंडी सांस थी।

आगे आगे मामाजी और पीछे पीछे अनूप। दरवाजे पर ठिठककर देखा—सती अनूप की ओर अपलक देख रही थी। सुकु अपनी आंख-मिचौनी में मस्त हो गया था।

मामाजी एक नयी जागृति के साथ चल रहे थे।

पांच

सुकु खुशी से किलकारियां भर रहा था। रेलगाड़ी बहुत तीव्र गति से भाग रही थी। गाड़ी के प्रथम श्रेणी के डिब्बे में झरोखे के निकट सींखचों को पकड़कर बैठा था। अनूप। अपने से दूर जाते भूखंडों को देखता और बीच बीच में खुशी के मारे सीट पर उठता-बैठता था।

उसके करीब हाथ पर ठोड़ी टिकाकर सिर झुकाये सती बैठी थी। उसके चेहरे पर उदासी स्पष्ट झलक रही थी।

सामनेवाली बर्थ के दूसरे कोने का अनूप टिका बैठा था। उसके हाथ में एक मासिक पत्रिका थी, जिसे वह पढ़ नहीं रहा था और बिना सिर उठाये आंखों के कोरों के बार बार सती सुकु की ओर देख लेता था।

अनूप से ऊपर की बर्थ पर भास्कर मेनोन बिलकुल सीधे लेटे हुए थे। उनकी आंखों में नींद नहीं थी।

सुकु को छोड़ शेष तीनों के मन में उनकी चिंताएं और जीवन के अनगिन दृश्य गाड़ी से भी कहीं तेज दौड़ रहे थे।

यात्रा की पहली रात बीत चुकी थी। दिन चढ़े चार-पांच घंटे हो चले थे।

एक पड़ोसी की देख-रेख में मां और नाणियम्मा को घर पर छोड़कर निकल पड़े थे। घर को संभालने के लिए कोई तो चाहिए। फिर सबके साथ इतनी लंबी यात्रा करने से कोई फायंदा भी नहीं है।

युगों पहले ज्वालामुखी से फूटा हुआ लावा जमीन पर बहकर जम गया था और उसने चट्टानों का आकार ले लिया था। बारिश, बर्फ और भूकंप के आघात से फटकर इतिहास के मील पत्थर बन गये थे। ऐसे खुश्क प्रदेश से होती हुई उनकी गाड़ी आगे बढ़ रही थी। चट्टानों के बीच पड़ी मुलायम मिट्टी पर धान को बोते-काटते हजारों पीढ़ियां गुजर गयीं। न जाने कितनी और पीढ़ियां इसी तरह गुजरेंगी।

अनूप पत्रिका को घुटनों पर रखे फिर चिंतामग्न हो गया। सोच रहा था कि जहां करोड़ों साधारण मानवों, अतिमानवों और असाधारण मानवों ने जन्म लिया, उसी मिट्टी में सुकु नामक अर्धमानव भी है। असाधारण भाव-भंगिमाएं, क्रियाएं-प्रतिक्रियाएं, हाव-भाव और आवाजें। किंतु विभिन्न रूपों में खिलने और विकसित होने वाले जीव-रूपी पुष्पों में ऐसे एक फूल का खिलना कोई असाधारण बात नहीं है। इंद्रधनुषी रंगों में कई ऐसे मिश्रित रंग भी होंगे, जो अलग से नहीं पहचाने जा सकते। तभी तो वर्ण-समारोह पूर्ण होगा।

बरसात और बर्फ कहीं भी गिर सकती है और बिना गिरे भी रह सकती है। एक सीमा बना लेने पर उसके दोनों ओर खड़े व्यक्तियों को दुख और वेदना का अनुभव जरूर होगा, चाहे वे उसकी चाहत करें या न करें। सीमा, चाहे वह किसी के व्यक्तित्व की सीमा

हो, उसका होना स्वाभाविक है। उस सीमा के बाहर खड़े व्यक्ति पर कोई असर नहीं होगा और वह हैरानी प्रकट करते हुए कह सकता है, 'ओह! इसमें इतना दुखी होने की क्या बात है?'

जब दो व्यक्तियों के बीच की सीमा-रेखा मिट जाती है तो दो तन होने पर भी मन एक हो जाता है। फिर एक का सुख-दुख दूसरे का भी हो जाता है।

प्रेम का यही स्वरूप है। सती और अनूप के बीच की सीमा-रेखा का मिट जाना स्वाभाविक है, फिर भी सती एक नकली सीमा-रेखा खींचने की व्यर्थ चेष्टा कर रही थी।

अनूप को दृष्टिगोचर हो रहा था कि सती का सुकु से जो प्यार है, वह खास किस्म का है। सुकु का कोई व्यक्तित्व नहीं है, अत: कोई स्पष्ट सीमा भी नहीं है। इसी कारण स्वाभाविक है कि वह सबकी सीमाओं से बाहर है। अपनी सीमा-रेखा को तोड़कर और सुकु को उसमें लेकर—अपने व्यक्तित्व का विकास करके ही कोई उससे प्यार कर सकता है।

अनूप ने यह भी जान लिया था कि सुकु से स्नेह करने और उसके लिए अपने जीवन को दांव पर लगाने से सती को कोई ताकत नहीं रोक सकती।

सुकु की बुद्धि और मन है सती। सती उसके लिए सोच-विचार करती है। उसका दुख भी सती का दुख है। जैसे एक मां अपने शिशु का ध्यान रखती है, वैसा ही व्यवहार है सती का। फर्क सिर्फ इतना है कि वयस्क होने पर बच्चा अपनी सीमाओं को पहचानने लगता है। मां के व्यक्तित्व की सीमाहीनता भी तब संकुचित हो जाती है। जहां तक सुकु का संबंध है, जब तक उसकी बीमारी ठीक नहीं हो जाती, तब तक कुछ होनेवाला नहीं। ऊपर आकाश और नीचे धरती। दोनों के बीच जल-प्रवाह के साथ रुक रुककर बहनेवाली काई जैसा एक जीव!

अनूप एक बार फिर यह सोचने पर मजबूर हो गया कि अगर सुकु की देखभाल करने को कोई न हो तो उसका जीवन कैसे कटेगा? गंदगी और सफाई में क्या फर्क है, यह वह नहीं जानता। भूख की तड़प के अलावा खाद्य पदार्थों के बारे में भी उसे कुछ पता नहीं। सर्प विष से भरा है या पानी में डूबने से मृत्यु हो सकती है, इन सब बातों का भी ज्ञान उसे नहीं है। संक्षेप में, बगैर सहारे के वह इस धरती पर जी ही नहीं सकता।

ऐसी परिस्थिति में प्रकृति का लक्ष्य भी शायद यही होता होगा? सती भी न जाने क्यों, दम घुटने के बावजूद, ऐसा एक चट्टान को संभालने का प्रयास कर रही है जो पहाड़ की चोटी से घाटी में गिरकर चूर होनेवाली है।

सती को सौ फीसदी पाने की प्रबल इच्छा अनूप को अनावश्यक और धर्म-विरुद्ध बातें सोचने पर मजबूर कर रही थी। स्वार्थ से ही प्रेम उत्पन्न होता है। मगर एक बार प्रेम पैदा हो जाये तो उसमें स्वार्थ का आना उचित नहीं। अनूप ये बातें अपने मन को डांटकर समझा रहा था।

बहुत दिनों से सती के मन में एक ही डर समाया हुआ था। निराश्रित होकर उसका छोटा भाई किस तरह जियेगा? उसी के चित्र उसकी आंखों के सामने घूम रहे थे। भूख से विकल होने के बावजूद खाना भी नसीब नहीं होगा। अपना दर्द सुनाने के लिए उसे व्यक्ति और शब्द अथवा दोनों ही नहीं मिलेंगे। इस बेबसी में हर तरह के कांटों में उलझकर जख्मी

हुआ वह नंग-धड़ंग, दाढ़ी और बाल बढ़ाये आंधी और बारिश में लक्ष्यहीन भटकेगा।

सोते-जागते सती की नजरों के सामने यह चित्र हमेशा घूमता रहता था। बार बार लंबी सांसें लेती रहती थी। उसका चेहरा अपनी तरफ घुमाकर, हवा में उड़ते-उलझे उसके बालों को बहुत प्यार से संवारती सती को अनूप ध्यान से देख रहा था। यह दृश्य अनूप के मन में अंकित हो गया।

अचानक सती ने दृष्टि घुमाई और अनूप की ओर देखने लगी। लेकिन आंखें मिलते ही अनूप ने अपनी नजरें झुका लीं।

भास्कर मेनोन के मन में भी वहीं दु: स्वप्न बसा हुआ था, जो सती को परेशान किये हुए था।

ऋतुओं और रिश्तों को बदलते हुए इस पिता ने एक जमाने से देखा था। वासंती और सुमति कभी कभी पत्रों में सुकु को याद करती रहती थीं। उन्हें सुकु से प्यार तो अवश्य है, मगर उससे कहीं अधिक स्नेह और कर्तव्य निष्ठा अपने परिवार के प्रति है।

सती को अपने भविष्य की कोई चिंता या दृश्य परेशान नहीं करता। लेकिन भास्कर मेनोन के मन के सुकु की भविष्य-चिंता के साथ साथ सती के जीवन के बारे में भी अंतहीन आशंकाएं थीं। उन्हें तो बच्चों के प्रति अपना कर्त्तव्य निभाना था। कोई तो रास्ता निकालना ही पड़ेगा। मगर कौन सा? किस तरह से?

यह सब सोचते सोचते जब दम घुटने लगता तो पिताजी आंखें मूंदकर भरे गले से मन ही मन कहते, 'हे भगवान! हे नारायण!' फिर जब आंखें खोलते तो वे भरी हुई होतीं।

बड़ी आशा थी मन में कि कोई न कोई रास्ता निकल आयेगा। रातें इसी आशा को मन में प्रतिष्ठित करने की कोशिश में जागते हुए कट जातीं। मगर जैसे जैसे समय बीतता गया, उनकी देह और मन शिथिल होते गये। तमाम इलाज एक एक कर नाकाम हो गये और सारी प्रार्थनाएं निष्फल हो गयीं। पत्थर की मूर्तियां पिघलने के कोई आसार नजर नहीं आ रहे थे। यह कड़वा घूंट उन्हें पीना ही पड़ रहा था। सामने जो दिखाई दे रहा है, वह एक ऐसे किले की दीवार थी जिसमें से बाहर निकलने को कोई रास्ता नहीं था। हे भगवान! यह क्या हो रहा था? यही सवाल मन में उठ रहा था। हे भगवान! यह क्या हो रहा है? सही सवाल मन में उठ रहा था। भविष्य के सपने बड़े भयानक लग रहे थे। अंधेरे में छिपे बैठे और अपनी ही ओर घूरते एक खूंखार जानवर की आंखों जैसा भविष्य पिताजी का पीछा कर रहा था।

पिताजी सोच में डूबे थे। फिर भी, इस थकन-टूटने के बावजूद, आशा का एक अंकुर फूट आया था। बिना कुछ किये-धरे घर में बैठे इस कष्ट को देखने से तो बचाव हुआ। एक और नया तरीका आजमाकर देखने के उद्देश्य से इस यात्रा पर निकल आये तो एक असह्य निष्क्रियता से मुक्ति तो मिली। रेलगाड़ी के हिलने-डुलने, झटकों और अन्य असुविधाओं के बावजूद रात में दो-तीन घंटे वे आराम से सोये।

सुकु की सारी जिम्मेदारियां एक पिता होने के नाते उनकी ही हैं, इस बात का ज्ञान भास्कर मेनोन को भली भांति था। सुकु की बीमारी को सती का जीवन नष्ट करने की अनुमति नहीं देनी चाहिए। वह सकु की बहन बनकर इस दुनिया में पैदा हुई है, इससे

ज्यादा उसने कोई और जुर्म नहीं किया।

कुछ दिन और प्रतीक्षा कर लेते हैं। एक बार फिर सुकु की जांच कर ली जाये, यह विचार बार बार मन में उठता है। पक्का तो बता नहीं सकता कि कितने दिन और इस दुनिया में हूं, पर यह निश्चित है कि ज्यादा दिन का मेहमान नहीं हूं। इस अनिश्चित अवस्था में अंतिम सांस ली, तो ये बच्चे किनारे पर पहुंचने के बजाय कष्टों के अथाह सागर में डूब जायेंगे। यह तो नहीं जानता कि क्या करना है, पर कुछ तो करना ही होगा। अच्छा, इंतजार कर लेते हैं। काश, इस यात्रा के खत्म होने का इंतजार न करना पड़ता! शायद भगवत्कृपा से कोई अद्भुत घटना घटित हो जाये, यद्यपि संभावना कम ही है। सुकु को जरा सी बुद्धि भी मिल जाये तो बहुत है। भले ही दूसरों की सहायता लेकर, लेकिन ज्यादा परेशान किये बिना अपने दैनिक काम करने की समझदारी ही पैदा हो जाये। उस वक्त भी मेनोन ने तड़पकर भगवान से प्रार्थना की, 'हे भगवान, हे नारायण, हे भक्तवत्सल!

बर्थ पर बिछा हुआ बिछौना और तकिया अश्रुओं से भीग गया था। यह न किसी ने देखा, न ही कोई जान पाया।

न जाने किस महापाप का दंड भुगत रहा हूं? यह प्रश्न उन्होंने कई बार हाथ पर ऊपर उठाकर उस सर्वशक्तिमान और अपने अंतर्मन से पूछा। क्या किसी बेकसूर को सपने में भी अपना हाथ आगे बढ़ाते नहीं देखा गया है।

सब पूर्वजन्म के सुकृत समझकर अपने मन को शांत करने का प्रयास करते हैं, मगर शांति फिर भी नहीं मिलती। इसका कारण भी स्पष्ट हो गया था। जब तक शरीर में प्राण है तब तक अपने कर्तव्यों स मुंह मोड़ना उचित नहीं है। अपने बच्चों के प्रति फर्ज तो पूरा करना है। यथाशक्ति सब कुछ किया है, यह संतोष नहीं हो रहा था। सुकु के बारे में इस यात्रा का अंत होने पर ही कुछ कहा जा सकता है। अभी उसका जीवन शेष है। उलझकर लटका हुआ एक और जीवन है—सती का।

लेटे रहना दूभर हो गया था। बिछौने के छोर से आंखें पोंछकर मेनोन धीरे से नीचे उतर गये। उतरते समय अनूप ने उठकर उनका हाथ थाम लिया। बच्चों से विपरीत दिशा में, एक कोने पर मेनोन ने आसन जमा लिया।

रास्ते पीछे की ओर भाग रहे थे। हम भी चले जा रहे हैं, इस तसल्ली के सहारे बैठे रहे मेनोन।

अनूप ने कहा, "काप्पि (कॉफी) पीयेंगे?"

"थोड़ी देर बाद।"

यात्रा की सारी जिम्मेदारी और भार उठाने का निश्चय अनूप ने किया हुआ था। एक अभिभावक की भूमिका निभाना उसे अत्यंत प्रसन्नता प्रदान कर रहा था। भास्कर मेनोन तो अत्यधिक आश्वस्त हो उठे थे; दूसरे को राह दिखानेवाले स्वयं उन्हें आज कोई सही राह पर ले जा रहा है, इस बात का दुर्लभ आनंद भी था मेनोन को।

पिता और उसकी तीन संतान एक साथ यात्रा कर रहे हैं, यह विचार उनके मन में आ

रहा था। हवा की ठंडक दुखों और जेठ की तपन का तत्काल शमन कर रही थी।

सती और भास्कर मेनोन को लंबी यात्रा का अभ्यास नहीं था। अनूप बड़े ध्यान से उनकी निगरानी कर रहा था।

सुकु को इतने करीब से और इतनी देर तक देखने का अवसर पहले कभी अनूप को नहीं मिला था। जैसे जैसे वह सुकु को देखता जाता, उसका संदेह बढ़ता जा रहा था कि इलाज से कोई लाभ नहीं होनेवाला। सीधे आकाश की ऊंचाई को छूनेवाला एक बड़ा वृक्ष टेढ़ा, झुका-सिकुड़ा, कुबड़ा सा होकर न जाने कैसे पनप रहा था। यदि छोटा सा होता तो सहारे से बांधकर खड़ा कर सकते थे। पर अब जब वह पूरा वृक्ष बन चुका है, तो क्या करें?

उनका दिमाग अविकसित है, यह तो स्पष्ट हो चुका है। किंतु रोग कहां, और किस हद तक है और उसका उपचार क्या है—शल्यक्रिया (सर्जरी) या कुछ और—इस बात का जवाब डाक्टर ही दे सकता है।

इलाज से कोई फायदा नहीं होगा, डाक्टर अगर यह कहेगा तो क्या होगा? क्या मामाजी इस बात को सहने की हिम्मत रखते हैं?

सती के रंग-ढंग से यह लगता था कि उसे डाक्टर के फैसले का पूरा अहसास है। यानी, सुकु का ठीक होना लगभग असंभव है।

फिर भी अंतिम फैसला सुनकर उसकी प्रतिक्रिया न जाने क्या होगी? नारियल के एक वृक्ष का जो अब कभी नहीं फलेगा, किसान दुखी मन से परित्याग कर सकता है, पर सती इतने निस्संग भाव से ऐसा नहीं कर सकती।

जो भी होगा देखा जायेगा, अनूप ने मन ही मन एक निश्चय कर लियपर ही कुछ पता चलेगा।

होली के दूसरे दिन रेलगाड़ी दिल्ली पहुंची। हवा में हल्की सी ठंडक थी। परंतु आकाश में सफेद बादलों के टुकड़े तैर रहे थे और सूर्यकिरणों में गरमाहट आ चुकी थी।

अनूप के मकान में सभी आवश्यक सुविधाएं थीं। हाल ही में अनूप की मां इस घर में रहकर वापस गयी थीं। उन्होंने रसोईघर को सूब सजा रखा था।

भाषा न जानने की दिक्कत को पार कर सती ने उस घर की जिम्मेदारी इस तरह संभाल ली, मानो कई सालों तक वह उस घर में रह चुकी हो। नये माहौल में भी उसका चेहरा गंभीर ही रहा, इस बात का अनूप को बहुत दुख था। नौकरानी के साथ हाथ के इशारों से वार्तालाप चलता। पहले होनवाले छोटे छोटे मजाकों का अभाव उस वातावरण में बना ही रहा।

सुकु की ओर इंगित कर नौकरानी लक्ष्मीबाई ने जब उसे 'बूढ्ढ बाबू' कहा तो सती का चेहरा तमतमा उठा। फिर उसकी आंखें भर आईं।

न जाने उससे क्या गलती हुई है, यह सोचकर नौकरानी घबरा गयी। अनूप ने हस्तक्षेप करते हुए लक्ष्मीबाई को समझाया, 'सुकु बूढ्ढ नहीं है।'

लक्ष्मीबाई ने प्रत्युत्तर दिया, "फिर वह हाथों मुंह से यह अजीब अजीब हरकतें क्यों

करता है ?''

अनूप ने कहा, ''यह तो एक तरह की बीमारी है।''

लक्ष्मीबाई ने आंख बंदकर और हाथ जोड़कर भगवान से सच्चे मन से प्रार्थना की, ''हे भगवान, इसे जल्दी ठीक कर देना।''

उसी दिन घर की पूरी व्यवस्था करके अनूप चंडीगढ़ चला गया और डाक्टर से मिलकर सुकु को दिखाने का समय निश्चित कर वापस आ गया।

डाक्टर से मिलने की यात्रा किसी तीर्थयात्रा से कम न थी। अनूप के क्वार्टर (घर) में देवी-देवताओं के चित्रों का अभाव भास्कर मेनोन को बहुत परेशान कर रहा था। अनूप को लगा, यह तो एक गैर-जिम्मेदाराना काम हो गया। कहीं से भी तस्वीरों का इंतजाम करना है, यह सोचकर वह गाड़ी की चाबी लेकर निकला। सती एक प्रश्नसूचक दृष्टि लिये सामने आ खड़ी हुई।

अनूप ने उसे असली बात बताई। सती ने झटपट एक निर्णय लिया, ''उसकी कोई जरूरत नहीं।''

इस समय अनूप ने ध्यान किया कि सती का भगवान पर से विश्वास उठ गया। विफल प्रार्थनाओं से पैदा हुई एक उत्साहहीनता। अधिक कुछ कहे बिना वह अनूप के बगल से होती हुई जिधर से आई थी, उधर ही वापस चली गयी।

लड़खड़ाकर चलने वाले सुकु का हाथ थामे सती रोज सवेरे मंदिर जाती थी। यह बात अनूप को याद आ रही थी। प्रसाद स्वरूप चंदन का टीका सती सुकु के माथे पर लगा देती। जब वह ऐसा करने को अपना हाथ ऊपर उठाती तो सुकु यह सोचकर कि कुछ खाने को दिया जा रहा है, अपना मुंह बाये बड़ा हो जाता। यह एक नित्यक्रिया थी।

मोटरकार में यात्रा करते समय मामाजी अन्य दिनों की अपेक्षा एकदम शांत दिखाई दिये।

सुकु को देखते ही डाक्टर के मुख पर क्षण भर जो भाव-परिवर्तन हुआ, वह अनूप से छिप नहीं सका। डाक्टर साहब बहुत सहानुभूतिपूर्वक उसके करीब गये। अपरिचितों से मिलने पर जो भय सुकु को अक्सर होता था, इस वक्त नहीं हुआ।

इससे पहले जो भी चिकित्सा कराई गयी थी, उससे संबंधित नुस्खे मामाजी के पास थे। डाक्टर ने वे नुस्खे मामाजी से लिये और बहुत ध्यान से उनका अध्ययन किया। फिर सुकु का बहुत देर तक अच्छी तरह परीक्षण किया। स्नायु रोगियों के लोक में हर वक्त रहनेवाले उस डाक़्टर के चेहरे पर दया और स्नेह से भरी हल्की सी मुस्कुराहट तैर रही थी। परीक्षण के बाद कुर्सी पर बैठते समय डाक्टर साहब की मुस्कुराहट और गहरी हो गयी। आंखों में एक खास तरह की गंभीरता झलक उठी थी।

मेज के आसपास अनूप, मामाजी और सती बैठे हुए थे। सुकु ने अपने दोनों हाथ कंधे तक उठाये और फिर उन्हें नीचे लटकाकर, जैसे वह अक्सर चलता है, उसी प्रकार चलता हुआ सती के पास आकर बैठ गया।

आखिर फैसले के इंतजार में बैठे एक व्यक्ति जैसी शक्ल नहीं थी मामाजी की। उनकी आंखें बंद थीं। सती ऐसे बैठी थी, जैसे वह किसी फैसले की अपेक्षा ही नहीं रखती, जैसे वह इस संसार से किसी भी तरह की उम्मीद नहीं रखती।

एक-दूसरे का परिचय कराने की रस्म अनूप पहले ही अदा कर चुका था। डाक्टर साहब ने सब को बारी बारी से देखा। साठ साल के दुनियावी अनुभव से हासिल की गयी गहन जानकरी से सती के चेहरे पर आंखे गड़ाकर डाक्टर साहब ने कहा, "मुझे लगता है कि आपने जो सोचा है, वही ठीक है।"

मामाजी ने आंखें खोलकर (सती और डाक्टर) दोनों को ओर बारी बारी से देखा। उन्हें कुछ भी समझ नहीं आ रहा था।

डाक्टर साहब ने स्पष्ट किया, "सच्चाई का सामना हमें एक न एक दिन करना ही पड़ेगा। मेरी राय में इस बच्चे को सेहत में किसी खास परिवर्तन की संभावना नहीं है। शरीर की स्वाभाविक स्थिति में सर्जरी (शल्यक्रिया) से भी कोई फायदा नहीं होनेवाला। शल्यचिकित्सा सिर्फ पीड़ा ही पहुंचायेगी। मुझे स्पष्ट दिखाई दे रहा है कि इसे इस रोग में आवश्यकता से अधिक दवाइयां दी जा चुकी हैं। लड़का अब बड़ा हो चुका है। सहज होने वाली प्रगति की प्रतीक्ष करना अब व्यर्थ है। ये सब बातें स्पष्ट करना ठीक होगा, ऐसा मेरा विचार है।"

मामाजी की प्रतिक्रिया अनपेक्षित थी। शांत स्वर में उन्होंने कहा, "मुझे सूली पर चढ़ाने के लिए ही भगवान ने इसे पैदा किया है, क्या यही अब मुझे समझ लेना चाहिए?"

हृदय में जैसे बिजली का तार छू गया हो। सती ने एकदम मामाजी का हाथ थामकर धीरे से पुकार, "पिताजी!"

मेनोन ने अपना मुंह सती की ओर घुमाया। एक मुस्कुराहट उनके चेहरे पर खेल रही थी। उन्होंने सती का हाथ अपने हाथ में लिया और मलयालम में बोले, "कोई बात नहीं, बेटी!"

डाक्टर ने इतना और कहा, "मैं भी एक पिता हूं। मैं समझ सकता हूं आपका दुख। मगर आप लोगों को मैं गलतफहमी में रखना या इस बच्चे को आवश्यकता से अधिक दवाई देकर परेशान करना भी नहीं चाहता।"

वापस आते समय, और घर पहुंचने के बाद भी मामाजी के चेहरे पर एक अजीब सी मुस्कुराहट खेल रही थी। अनूप के साथ अगली सीट पर बैठे थे मामाजी। पिछली सीट पर सुकु को अपने हृदय से लगाये सती सारे रास्ते बैठी रही।

वापसी में कोई भी एक दूसरे से एक शब्द नहीं बोला।

केवल सुकु ताली बजाता हंसता चला जा रहा था।

छह

क्वार्टर के पोर्च पर पहुंचकर सबसे पहले अनूप मोटरकार से उतरा। दूसरी ओर का दरवाजा खोलकर मामाजी बाहर आये।

जब तक अनूप ने गाड़ी का पिछला दरवाजा खोला, तब तक मामाजी सिर झुकाये गाड़ी के सामने से होते हुए घर के अंदर घुस गये। सती ने बड़ी सावधानी से सुकु को पकड़कर गाड़ी से नीचे उतारा। फिर वह पीछे चली।

अनूप ने अगला और पिछला दरवाजा बंद किया। फिर उसने मोटरकार का बोनेट खोल दिया और अपने हाथों की धूल झाड़ते हुए घर के अंदर प्रवेश किया।

ड्राइंगरूम के कोने में बिछे सोफे पर मामाजी बैठे हुए थे। एक फीकी सी मुस्कुराहट तब भी उनके होठों पर विराजमान थी।

अनूप ने कमीज उतारकर हैंगर पर टांग दिया। फिर वाशबेसिन में हाथ-मुंह धोया। मुंह पोंछकर टर्किश तौलिया अपने कंधे पर डालकर अनूप ने फ्रिज खोला और ठंडा पानी होठों से लगाये बिना गटागट पी गया। फिर एक गिलास में ठंडा पानी भर मामाजी के सामने पहुंचा और उसे तिपाई पर रख दिया। फिर भी मामाजी चुपचाप बैठे रहे। न हां कहा, न ना कहा।

अनूप तौलिये के कोने से होंठ पोंछकर ड्राइंगरूम के दूसरे कोने पर रखी कुर्सी पर जा बैठा। फिर वह अपना जूता खोलने लगा। उतारी हुई जुराबों को जूते के अंदर घुसा दिया। फिर उंगलियों को जूते के अंदर डालकर उन्हें घसीटते हुए अंदर जाने के लिए उठा ही था कि मामाजी ने पुकारा—''अनूप!''

अनूप घूमकर खड़ा हो गया। मेनोन ने बगैर सिर उठाये या उसकी तरफ देखे सिर हिलाकर ही अपने पास आने का संकेत किया। सामने पहुंचा तो इशारे से बैठने के लिए कहा। सोफे के दूसरी ओर बैठकर अनूप ने जूते नीचे रख दिये।

घने बादलों के बीच फंसा फीका सा अर्धचंद्र अचानक ही निकले और छिप जाये और छिपने से पहले हल्का सा प्रकाश बिखेरे, ऐसे ही मामाजी की फीकी हंसी पल भर को चमकी और गायब हो गयी। सिर्फ इतना ही कहा, ''वह भी खत्म हो गयी!''

अनूप ने कोई जवाब नहीं दिया। थोड़ी देर बाद बिना सिर उठाये मामाजी पुनः कहने लगे, ''अब हमारे साथ वापस चलने की कोई जरूरत नहीं है। रेल-टिकट का

बंदोबस्त कर दो। समय बर्बाद मत करो।''

अनूप ने धीरे से कहा, ''जब यहां तक आ गये हैं तो दो-चार दिन ...''

''दो-चार दिन ... अच्छा... उससे ज्यादा अब नहीं ठहरेंगे।''

अनूप को लगा, अब उनके पास को कुछ नहीं है। इसलिए वह जूते लेकर उठने लगा। इतने में ही मामाजी मानो आप से बोले, ''सब कुछ होने के बाद भी कुछ आशा मन में बची हुई थी, पर अब........''

उनको दिलासा देने के लिए शब्द नहीं थे। जो स्वयं सारी दिलासा का केंद्र है, उसे कैसे दिलासा दी जाये? उसके लिए किया जानेवाला कोई भी श्रम सिर्फ शब्द मात्र होगा और क्या जाने, मामाजी से उसे दूर ही कर दें!

मामाजी के स्वर और भाव में कोई असह्य पीड़ा नहीं थी। वास्तविकता भी यही थी।

अनूप फिर से बैठ गया और उसकी उंगलियां जूते के फीते पर थिरकने लगीं। वह यही सोच रहा था कि कहीं उसने उन्हें दंड तो नहीं दिया? किसी मां-जाये मनुष्य को, जो अपराधी नहीं था, जीते जी ही मरणांतक फांसी पर चढ़ाने का फैसला तो नहीं दिया?

निश्चित रूप से कुछ नहीं कहा जा सकता। उपलब्ध प्रमाणों के आधार पर, भगवान को साक्षी मानकर किये कई फैसलों में से कहीं कोई एक किसी बेकसूर को फांसी के तख्ते पर तो नहीं ले गया? कुछ नहीं कहा जा सकता। मगर यह फैसला एक परिसीमित दायरे में खड़े होकर एक ईश्वरार्पित कार्य था, जिसमें अहंकार और स्वार्थमोह तो लेशमात्र भी नहीं था।

मन में अक्सर एक अर्धनग्न चित्र उभरता है। करीब नब्बे साल वृद्ध, जो अपने कांपते हाथों में अपने से भी लंबी बांस की लाठी थामे अदालत के बरामदे में चुपचाप आंसू बहाता है। यथार्थ जीवन में ऐसा कोई व्यक्ति कभी मिला हो, याद नहीं। वह क्यों रो रहा है, यह पता नहीं। वह व्यक्ति न किसी से शिकायत करता है, न किसी को कोई दोष देता है। उससे दस कदम पीछे झुका खड़ा अपनी नजरें जमीन पर गड़ये रखता है। पसलियां ऐसी थीं, मानो हाथ से बटोरी जा सकें और किसी अनिष्ट संभावना से कांप रही थीं। पके सफेद बालोंवाली दाढ़ी पर ढुलकर बहते हुए अश्रुकण सूर्य-रश्मियों के पड़ने से झिलमिला रहे थे। उभरी हुई नवोंवाले चेहरे में कीचड़ भरी आंखें थीं। उन पर मक्खियां भिनभिना रही थीं। मगर उसकी पलकें नहीं झपक रही थीं।

यह सब एक भ्रम है, ऐसा सोचकर अपने आप को सांत्वना देने की कोशिश करते थे मेनोन। काश, वह आदमी इस स्थिति से थोड़ा इधर-उधर होता, अपनी पलकें झपकाता या अपनी नजरें ही उठाकर देखता, यह विचार उनके मन में उठता रहता था।

आजकल के मृत्यु के बारे में ज्यादा सोचने लगे हैं, ऐसा मेनोन को लगा। उन्होंने अपने आप को यह सांत्वना दी कि जीवन का अंत निकट आने पर ऐसा होना

स्वाभाविक है।

भगवान के अतिरिक्त उनके पूर्वजों की आत्माएं ही, उनकी मदद के लिए थीं। पिताजी बहुत ही जिंदादिल इंसान थे। शिथिल होने के बावजूद हर्षोल्लास से भरी थी मां। मरण-वेदना को दबाकर हिम्मत से काम लेनेवाली जानु। एक एक कर वे तमाम पुरखे प्रकट होते और नजरों के सामने से ओझल हो जाते। मामाजी जो कुछ कहना चाहते हैं, दिल खोलकर कह लें। ऐसा करने से अगर उनके मन को शांति मिलती हो तो इससे अच्छी बात क्या हो सकती है?

मामाजी कह रहे थे, "मैं सोच रहा था।"

अनूप ने यह नहीं पूछा कि वह क्या सोच रहे थे।

मामाजी ने अनूप की ओर मुड़कर देखा और अपनी नजरें ड्राइंगरूम की दीवारों की ओर मोड़ लीं।

अनूप ने अपनी आय के हिसाब से अपनी कला-रुचि का परिचय देते हुए उस बैठक को सजा रखा था।

मामाजी कोई महत्वपूर्ण बात कहने जा रहे हैं, यह निश्चित हो गया था।

"मैं सोच रहा हूं कि सुकु को एक अच्छे नर्सिंग होम में भर्ती करा दिया जाये।"

अनूप ने संदेहात्मक स्वर में कहा, "क्या यह उचित होगा?"

"यही ठीक होगा!... नहीं तो कब तक इस तरह... मेरी आंखें हमेशा के लिए बंद होने पर तो ..."

"क्या सती को यह बात अच्छी लगेगी?"

अकस्मात आनेवाली छींक की तरह मामाजी के चेहरे पर हंसी आई। उस हंसी को रोकते हुए वे कहने लगे, "इस तरह किसी की पसंदगी या नापसंदगी देखने से काम नहीं चलेगा।"

"सो तो ठीक है। मगर ..."

"वो भी ठीक है। सती से बात कर लेंगे। ...... इस तरह के अस्वस्थ लोगों को रखने का कोई स्थान ढूंढ़ना पड़ेगा। जगह विश्वसनीय भी होनी चाहिए।"

"मैं पूछताछ करूंगा।"

"वार्षिक व्यय के अनुसार एक रकम बैंक में जमा कर देंगे। उससे प्राप्त होनेवाले सूद से चाहे कितने ही दिन लग जायें...।"

"चाहे कितनी भी अच्छी संस्था हो, घर जैसी सुख-सुविधा नहीं मिल सकती।"

"अरे तुम ही बताओ, वो कैसे हो सकता है? पर उसके लिए ...।"

"आप सती के बारे में कह रहे होंगे शायद?"

"हां! टूटी हुई डाली को थामकर खड़ी रहेगी तो कल वह भी कहीं ..."

सही अवसर है, ऐसा अनूप को महसूस हुआ। तमाम बातों को स्पष्ट करने का पहला और आखिरी मौका। स्नेह, कर्तव्य और इच्छाओं को एक के बाद एक पीछे

धकेलता हुआ बढ़ा तो वे सब एक साथ ही मन में उभरने लगे। कैसे दिल की बात कहूं, कैसे शुरू करूं?

"और मेरे साथ?"

अनूप ने 'मेरे' पर जोर दिया था।

एक अटल विधान की तरह दृढ़ता से मामाजी ने कहा, "तुम्हारे साथ भी नहीं, तुम उसके बड़े भाई हो, इस बात का मुझे पूरा बोध है। फिर भी मैं यही कहूंगा।"

कुछ क्षण बीत गये। दोनों चुप रहे।

स्वर विकाररहित होने के बावजूद मामाजी के मन में उस समय पीड़ा थी, यह अनूप अच्छी तरह समझ रहा था। जो लोग समुद्र से अच्छी तरह परिचित हैं, वे यह बात जानते हैं कि उसकी ऊपरी शांति के पीछे कितनी गहराई होती है।

इन विचारों की तीव्रता को सहन में अनूप को बहुत परेशानी हो रही थी। एक तरह की जलन थी उस वातावरण में। तब उसने कहा, "इन सब बातों पर आराम से सोच लेना शायद ठीक होगा।"

हल्के से 'हूं' की आवाज निकालकर मामाजी अपने दोनों हाथ मलने लगे, "दिया जलाना है तो उसे सांझ ढलने से पहले जलाना चाहिए न? बहुत देर हो चुकी है। अंधेरा होने लगा है।"

फिर वही नि:शब्दता।

थोड़ी देर के बाद, मानों अपने आप से कह रहे हों, मामाजी कहने लगे, "सती को मैं बता दूंगा।"

सती की राय लूंगा, ऐसा नहीं कहा था मामाजी ने, बल्कि सती से कह दूंगा, सती को जानकारी दे दूंगा। वह चाहे जो कुछ भी कहे, उनका फैसला अटल था।

अनूप से पहले जो किरायेदार रहते थे, उनके लगाये पौधों की फुनगियां ड्राइंगरूम की खिड़की के बगल में हिलडुल रही थीं। दूर क्षितिज की सीमा पर इतिहास की किसी हस्ती की यादगार में बने काले रंग के पुराने मकबरे की मीनार दिखाई दे रही थी।

पिछवाड़े अहाते में नीम के पेड़ों पर शाम की धूप पड़ रही थी। दीवार के बाहर मैदान में बच्चे ऊधम मचाते हुए खेल रहे थे।

किसी खुली जगह पर थोड़ी देर अकेले टहलने को अनूप का मन कर रहा था। दफ्तर से आने के बाद रोज का यही नियम था। पर आज वह चाहता था कि मानव-निर्मित-अनिर्मित समस्याओं के संगम में बहता-भटकता फिरूं।

ऐसे लगता है कि मामाजी उसके और सती के तमाम प्रश्नों का समाधान करने पर तुले हुए हैं। अगर उन्हें इस कार्य में सफलता मिल गयी तो सब धर्मसंकटों से मुक्ति पा सकेंगे। मगर क्या यह संभव हो सकेगा?

अनूप सती को अच्छी तरह से जानता था। इसलिए उसे यह असंभव लगा। अगर

सुकु को सती से दूर नहीं किया गया तो वह अपने सुखों का पूर्ण रूप से परित्याग कर देगी। मामाजी का यह नजरिया शत-प्रतिशत सही थी।

शादी करने के लिए सती तैयार हो या न हो, सुख हो या दुख, अगर मामाजी सुकु के साथ उसे नहीं रहने देने की हठ पकड़ेंगे तो शायद वह अपना रवैया बदल सकती है। इस तरह की हठ सिर्फ मामाजी ही कर सकते हैं। इस तरह का अधिकार और आज्ञा वही दे सकते हैं। अगर और कोई ऐसी जिद करता है तो उसके स्वार्थी होने की गलतफहमी पैदा सकती है।

अंदर की ओर जाने वाले दरवाजे पर एकाएक सती प्रत्यक्ष हुई। उन दोनों से उसने कहा,

''आइए।''

खाने की मेज पर सती का अभी-अभी बनाया हुआ 'उप्पुमा' और कॉफी सजी हुई थी।

अनूप ने अनुमान लगाया कि सुकु सांझ की नींद में खो गया होगा। कॉफी का एक घूंट भरकर मामाजी ने कहा, ''मैं वापसी की टिकट का बंदोबस्त करने के लिए अनूप से कह रहा था।''

सती ने एक बार 'हूं' किया। फिर अनूप से प्रश्न किया, ''क्या मीठा सही है?''

अनूप ने 'सही है,' इस ढंग से सिर हिलाया।

अपने वक्तव्य को जारी रखते हुए बड़ी ही लापरवाही के साथ मामाजी बोले, ''सुकु को एक अच्छे नर्सिंग होम में भर्ती करने का अपना निश्चय मैं अनूप को सुना रहा था।''

मेज पर दोनों हथेलियों को बिछाये और सिर झुकाये खड़ी सती का मुख एकदम विवर्ण हो गया। उसने पहले अनूप की ओर नजर उठाकर देखा। मामाजी की ओर दृष्टि भी नहीं उठायी।

अनूप आशंकित हो उठा कि कहीं सती उसे दोषी न समझ बैठे? उसे यह संदेह न हो रहा हो कि उसकी ही प्रार्थना पर पिताजी ने ऐसा फैसला किया है?

सती के रवैय से पता चल रहा था कि ऐसा निर्णय एक न एक दिन जरूर किया जायेगा। वह उस पर कभी भी अमल करने नहीं देगी, इस बात का उसने दृढ़ निश्चय कर लिया था। उसके चेहरे पर यह स्पष्ट झलक रहा था।

अपनी उंगलियों को दबाकर चटखाते हुए मामाजी ने कहा, ''और कोई रास्ता नहीं दिखाई देता।''

मामाजी के सामने रखी कुर्सी पर बैठकर दाहिने हाथ की लंबी अंगुली से सती सनमाइका पर रेखाएं बनाने लगी। कह उठी, ''पिताजी! किसलिए? क्या और कोई रास्ता नहीं है?''

अनूप इस दुविधा में पड़ा हुआ था कि वह वहीं बैठा रहे या उठकर बाहर चला

जाये। अचानक बाहर चला जाये तो सती के मन में गलतफहमी का और अधिक दृढ़ हो जाना निश्चित है। यही सोचकर वह बैठा रहा।

मामाजी अनूप के मन को ताड़ गये। बोले, "तुम्हारा भी सब कुछ सुन लेना बहुत जरूरी है।"

सती ने पिताजी की ओर देखे बगैर अपने प्रश्न को दोहराया, "किसलिए? और कोई रास्ता नहीं है, पिताजी!"

कुर्सी पर पीठ टिकाकर मामाजी ने छाती पर हाथ बांध लिये और कहा, "नहीं।"

"लेकिन मेरा ख्याल है कि हर परेशानी का कोई न कोई हल जरूर निकलता है।"

"कैसे?"

"अब तक जैसे चल रहा था वैसे ही!"

"बेटी!" मामाजी ने पुकारा। फिर आगे झुककर बंधे हाथों को मेज पर टिकाते हुए बोले, "मेरी बात क्या तुम्हें मालूम नहीं है?"

सती ने 'जानती हूं' इस तरह सिर हिलाया।

"सांझ होने वाली है क्या तुम जानती हो?"

इस बार सती ने हामी में सिर नहीं हिलाया।

तीर की तरह दिल में चुभनेवाला था अगला प्रश्न, और स्वर में बिना किसी तरह के बदलाव के मामाजी ने उसे सती की ओर दाग दिया, "क्या तुम मुझे शांति से मरने की अनुमति भी नहीं दोगी?"

अश्रुपूर्ण नेत्रों को उठाकर, सती ने पूछा, "कितनी शांति के साथ, पिताजी?"

"कम से कम तुम्हें कुछ..." मामाजी ने कहना शुरू ही किया था कि सती ने अपनी पूरी शक्ति से सिर हिलाया। उन्हें बीच में रोकते हुए बोली, "मैं तो इसी परिस्थिति में खुश हूं। इससे अधिक खुशी और किसी भी तरह मुझे नहीं मिलेगी। पिताजी, आप मुझे और कुछ करने के लिए मजबूर न करें।"

अश्रुधारा बहती ही चली जा रही थी। अनूप से यह सब न तो देखा जा रहा था, न ही सुना जा रहा था।

"मैं किसी भी बात के लिए तुम्हें मजबूर नहीं करूंगा सती, जैसी तुम्हारी मर्जी। मगर सुकु का तुम्हारे साथ रहना अब ठीक नहीं है।"

"मुझे आप इस तरह सजा क्यों दे रहे हैं?"

"यह सजा नहीं है, बेटी! तुम्हारी सुरक्षा का प्रबंध है।"

"मुझे किसी सुरक्षा की जरूरत नहीं है, पिताजी!"

मामाजी ने अपने स्वर को और भी दृढ़ कर दिया और कहा, "सुकु की जिम्मेदारी पहली और आखिरी मेरी ही है। तुम तो उसकी सहोदरी हो, मगर मैं उसका

पिता हूं। यह एक जिंदगी का सवाल है। सब पहलुओं पर खूब सोच-विचारकर लिया गया निर्णय है यह। यह जांच-पड़ताल भी हो जाने दो, उसके बाद ही तुमसे बात करूंगा, यही मैंने सोचा था। अनूप मेरे विचारों से सहमत नहीं है। मगर हर हालत में इसे अमल करना ही होगा।''

सती उठ गयी। आंखें पोंछकर तनकर खड़ी हो गयी।

''कहां गयी आपकी दया-ममता, पिताजी? आप सुकु को जहां भी भेजेंगे, वहां मेरे लिए भी एक कमरा...।''

मामाजी उठकर सती के करीब गये और उसका सिर सहलाते हुए बोले, ''बेटी...'' गला रुंध गया। बड़ी कठिनाई से भावनाओं पर किया गया नियंत्रण एकाएक ढीला पड़ने लगा। वकील और न्यायाधीश का अभिनय करने का प्रयास एकदम विफल हो चुका था।

पिताजी से लिपटकर सती फूट फूटकर रो रही थी। हकलाकर कह रही थी, ''उसे कहीं मत ले जाइए, पिताजी!...उसे...देखे बिना...मैं...मर जाऊंगी!''

यद्यपि आंखें भर आयी थीं और गला रुंध गया था, परंतु मामाजी कालकूट निगले हुए व्यक्ति की तरह अड़े रहे। उन्होंने पुनः अपनी बात आगे बढ़ाई, ''तुम अपने बारे में कुछ नहीं सोच रही हो। मगर पिता होने के नाते में सोचे बगैर नही रह सकता।''

''जब तक उसकी बीमारी ठीक नहीं होगी, मैं अपने बारे में कुछ भी सोच नहीं सकती। पिताजी, आप भी मेरे बारे में चिंता करना छोड़ दें।''

''यह असंभव है।'' मेनोन ने कठोर स्वर में कहा।

एकाएक सती की सिसकियां थम गयीं। बालों को एक साथ बांध लिया और पिताजी से दूस हटकर खड़ी हो गयी। फिर सिंहनी की तरह अनूप की ओर घूमकर बोली, ''मेरे पक्ष में क्या आपको कुछ भी नहीं कहना, अनियेट्टा?''

इस तरह के भाव का होना और सती का उसकी स्वामिनी होना—ऐसा अनूप ने सपने में भी नहीं सोचा था। अनूप को समझ में नहीं आ रहा था कि किस तरह वह सती के पक्ष में बोले।

अनूप को यह पक्का हो गया कि अब वह इस माहौल में बैठ नहीं सकेगा। इसलिए बाहर चला गया। सती की बातों से स्पष्ट हो रहा था कि उसने अपना मानसिक संतुलन खो दिया है।

अनूप ऊपरवाले कमरे में चला गया। एक सिगरेट को होंठों में दबाया और उसे जलाये बगैर बिस्तरे पर जा लेटा। उसका चेहरा पसीने से तर था।

सती और मामाजी के बीच में फिर क्या वार्तालाप हुआ, इसका उसे कुछ भी ज्ञान नहीं।

''बेटी!'' खड़े-खड़े हांफ रही सती को उसके पिता बार बार पुकार रहे थे, ''बेटी, सती!''

सती ने उन्हें स्पष्ट रूप से बताया कि जब तक सुकु के बारे में किया गया फैसला बदला नहीं जायेगा, तब तक वह खाना नहीं खायेगी।

रात को जब सती अनूप को खाना परोस रही थी, तब उसका चेहरा सामान्य था, मानो कुछ हुआ ही नहीं। मामाजी और सती ने कुछ भी नहीं खाया। मामाजी अक्सर व्रत-अनुष्ठान करते थे, इसलिए अनूप ने उनसे खोद खोदकर नहीं पूछा। सती कभी भी अनूप के साथ बैठकर खाना नहीं खाती थी। उसके खाने के बाद ही खाती थी।

अगले दिन सवेरे ही अनूप को असली बात का पता चला।

नींद से जगाकर जब वह नीचे पहुंचा, तो उसने सती और मामाजी को खाने की मेज के दोनों तरफ देखा। मामाजी बैठे हुए थे और सती खड़ी थी।

मामाजी कह रहे थे, ''तुम भी काफी पीओगी, तभी मैं पीऊंगा''

''मुझे इच्छा नहीं है।''

सीढ़ियों पर खड़े उसे इतना ही सुनाई दिया। दोनों छोटे बच्चों की तरह बहस कर रहे थे।

सती ने अनूप की ओर मुड़कर कहा, ''अनियेट्टा! पिताजी कॉफी नहीं पी रहे हैं। कल रात को भोजन भी नहीं किया था।''

''क्या इसने खाया है, यह तुम इससे पूछो।''

''मुझे खाने की इच्छा नहीं थी।''

''मुझे भी नहीं चाहिए।''

''अनियेट्टा! पिताजी की तबीयत ठीक नहीं है।''

''मुझे जो सुख मिल रहा है, वही काफी है।''

''अगर आप दोनों को खाना नहीं खाना है तो मुझे भी इसकी जरूरत नहीं है।'' अनूप ने कहा।

''बेहद लाड़-प्यार करने का फल भुगत रहा हूं मैं।'' मामाजी ने ऊंचे स्वर में कहा,

''कल जो कुछ मैंने कहा, उसके फलस्वरूप है उसकी यह भूख-हड़ताल। अगर छोटी बच्ची होती तो चित्त लिटाकर गोकर्ण (छोटा-सा गोल चम्मच जो पूजा में इस्तेमाल होता है) से मुंह में डाल देता।''

अनूप का मन चाहा कि वह कहे—'आं' करके बोलने लायक कद ही है सती का। इस हिसाब से सती एक छोटी बच्ची ही है। मगर उसने कहा इस तरह, ''किसी को हठ करने की जरूरत नहीं है। सुकु को कहीं भेजने की भी जरूरत नहीं है। फिलहाल ऐसा निर्णय ले लिया जाये तो कैसा हो?'' मामाजी चुप रहे।

अनूप ने सती से कहा, ''कॉफी पीओ।''

अनूप को आश्चर्य हो रहा था कि इतनी गंभीरता से उसने सती को कैसे

अनुशासित किया।

कुछ भी हो, तीनों ने कॉफी पी ली।

मामाजी टहलने निकले तो अनूप भी साथ हो लिया। रास्तों से अपरिचित और स्वास्थ्य ठीक न होने से अनूप ने मामाजी को अकेले जाने देना उचित नहीं समझा।

साफ-सुथरे फुटपाथ पर वे चलने लगे। थोड़ी दूर चलने के बाद मामाजी ने मुड़कर देखे बगैर कहा, ''मैं इस बात को कभी नहीं मानूंगा। मैं ऐसा होने नहीं दूंगा''

बगैर पूछे ही अनूप को कौन और क्या, सब मालूम था। इस मामले में अपने पिताजी को परेशान न करे, सती से ऐसा कहने में अनूप लाचार था। कहने से कोई फायदा नहीं होगा, बल्कि हानि होने का ही अंदेशा है। ऐसे में क्या किया जाये, यह सोच सोचकर वह काफी परेशान हुआ, मगर कोई रास्ता दिखाई नहीं दे रहा था।

दस-पंद्रह मिनट चलने के बाद अनूप ने मामाजी को जैसे किसी और से कहते सुना, ''अब तो बचाव का कोई रास्ता भी नहीं है।''

एक खास परिवर्तन मामाजी में उस दिन अनूप ने देखा। मामाजी ने सवेरे से एक बार भी भगवान का नाम अपनी जबान पर आने नहीं दिया।

एक ट्रैफिक सर्किल के पास पहुंचकर मामाजी रुक गये। अनूप ने अनुमान लगाया कि वे किसी गहरी चिंता में डूबे हुए हैं। बड़बड़ा रहे थे, ''कोई रास्ता निकालना ही पड़ेगा।''

फिर वे एक चबूतरे पर बैठ गये। अनूप मामाजी को इस विषम परिस्थिति से हर हालत में बचाने के लिए तैयार था। मगर, कैसे?

सिर के ऊपर खिंची बिजली की तार से एक मरा हुआ चमगादड़ लटक रहा था। मामाजी की निगाह का पीछा करते हुए अनूप ने भी यह दृश्य देखा। मामाजी अलपक उसी दृश्य को देखे जा रहे थ।

अचानक मेनोन वहां से उठे और बोले, ''हमें वापस चलना चाहिए। हम किस रास्ते से आये थे यहां?''

अनूप आगे आगे चलने लगा।

एक-दो बार अनूप ने पीछे मुड़कर देखा। मामाजी जैसे कुछ भी नहीं देख रहे थे। उनकी दशा ऐसी थी, जैसे वे सिर्फ अपने अंतर्मन की ओर बढ़े जा रहे हों।

घर पहुंचने तक वे फिर एक बार भी नहीं बड़बड़ाये।

सात

''अगर मेरी जगह आप होते तो क्या करते, अनियेट्टा ?'' अनूप का चाय का कप खाली होने के इंतजार में खड़ी सती ने पूछा। अनूप ने जैसे नींद की खुमारी में यह प्रश्न सुना। इस प्रश्न का उत्तर उसने पहले से ही सोच रखा था। पर उसे कहना चाहिए या नहीं, इसी उधेड़बुन में फंस गया था।

कुछ समय लगा जवाब देने में। कॉफी के प्याले से उठती भाप को एकटक देख रहा था अनूप। प्याले की हल्की गरमाहट सीधे हाथ की हथेली पर अच्छी लग रही थी। चेहरा उठाकर उसने सती की ओर एक नजर डाली और नजरों को फिर कप की ओर मोड़ लिया।

निगोड़े भादों ('कर्किड' कहते हैं मलयालम में) के बाद सड़ी-गली प्रकृति में उदित हुई पहली नरम धूप की तरह ताजा और आकर्षक लग रहा था सती का मुखड़ा। तड़के उठकर स्नान करने के लक्षण थे चेहरे पर।

घने बादल अभी नहीं छटे, इस बात का ज्ञान था अनूप को। मानो पूरब दिशा में एक छोटे से सूराख से होकर आ रही थी सूर्य की एक किरण। पर वह बहुत अमूल्य थी। दमघोटू दुख की एकरसता के कुछ टूटने की इच्छा कर रहा था वह।

जिस बात का इंतजार वह कर रही थी, वह वर्षा की तरह आयी और बर्फ की तरह पिघल गयी। यही बात सती की ताजगी का कारण है, ऐसा अनूप ने अंदाजा लगाया। मामाजी के साथ जिस तरह का व्यवहार कल सती ने किया था, ऐसा बर्ताव उसने पहले कभी किया होगा, यह सोचना भी मुश्किल है। अपने स्वभाव के विपरीत था उसका अनूप को फटकारना। लगता था कि कोई अनुचित कार्य करने पर वह मन ही मन लज्जित हो रही है। अपराधबोध से मुक्त होने के लिए गरम कॉफी लेकर तड़के ही पहुंच जाना अनूप को हैरान कर रहा था। यह सोचकर अनूप के होठों पर एक हंसी खेल गयी।

दरवाजे पर हल्की सी दस्तक सुनकर अनूप घबराकर जाग उठा। तरह तरह की चिंताओं में उलझने के कारण रात को बहुत देर से नींद आयी थी। तार पर लटके, हवा में झूलते मृत चमगादड़ के शरीर के हिस्से स्पष्ट और अस्पष्ट भयंकर रूप से उसके सपनों में आ रहे थे। उसने कुत्ते के पिल्ले के चेहरेवाला जीव अपने थके पंखों से उड़कर आते और फिर उसे बिजली की तार से टकराकर अचानक विद्युताघात का शिकार होते हुए देखा— एक तार पर एक टांग से लटककर मरने से पहले फड़फड़ाते हुए।

न जाने कहां से कौओं का एक झुंड कांव कांव करते हुए पहुंचा था और आसपास मंडराते हुए दीर्घ रुदन कर रहा था। नारियल के बाग में ऊंचाई से गिरे घोंसले में नीचे जमीन पर गिरे कौए के अंडे दिखाई दिये। उसकी ओर झुककर लहंगा पहने और रुदन करती हुई एक छोटी सी

बालिका दिखाई दी। वह सती थी !

मतिभ्रष्ट कौए उस पर आक्रमण करने जा रहे थे। एक कौए ने तेजी से नीची उड़ान भरी और अपनी चोंच से उसके सिर पर वार किया। वह जोर से चिल्लाई। उसका रुदन-स्वर सुनकर मामाजी ने समाचारपत्र पढ़ना छोड़ दिया और बरामदे से उठकर आंगन में आ गये। कौओं से बचने के लिए अपने सिर और चेहरे को बार बार ढकती, भागती हुई सती को मामाजी ने हृदय से लगा लिया।

सती को नाणियम्मा के सुपुर्द कर अखबार पर नजर डालते हुए मामाजी बुदबुदा रहे थे, 'न जाने कैसे कमजोर दिल-दिमाग की लड़की है यह!' समाचारपत्र पढ़ते पढ़ते ही कुछ सोचते हुए मेनोन ने एक दीर्घ नि:श्वास लिया। बिन मां की बच्ची है, यही सोच रहे होंगे मामाजी, ऐसा अनूप को अब लग रहा था।

वास्तव में कौए का घोंसला नीचे गिर पड़ा था। सती के सिर पर कौए का चोंच मारना भी सच था। सपने में अनूप ने टूटे हुए अंडे देखे थे। असल में कौए के नन्हें से बच्चे थे उसमें। एक मर चुका था। जीवित बच्चे को उठाकर लाते समय ही कौए ने सती के सिर पर चोंच मारी थी। सती हो या कोई और, कौए भला कैसे जान सकते हैं कि उसके इस कार्य का उद्देश्य सही है और वह कौए के बच्चे की जान बचाना चाहती है ?

सती के सिर पर चोंच मारने के बाद भी कौओं की कांव कांव गूंजती रही। तभी अचानक दरवाजे पर एक हल्की सी दस्तक सुनाई दी।

जाग उठने पर अनूप को कुछ घबराहट महसूस हुई। सवेरे कोई दस्तक देकर जगाये, उसे यह बात पसंद नहीं थी। उठकर बाहर निकलते ही एक कप कॉफी मिलनी ही चाहिए, यह था उसका हिसाब-किताब। दो-तीन दिन से घर का सारा कामकाज सती ने संभाल लिया था। सती भी दस्तक देकर कॉफी नहीं लाती है। इसलिए अनूप घबरा गया था। मामाजी को तो कुछ नहीं हुआ ? या सुकु को ? झटपट उठकर उसने किवाड़ खोले। क्या हुआ ? यह प्रश्न होठों पर अंकित था, जब दरवाजा खुला।

सती के चेहरे का भाव और हाथ में कॉफी का प्याला देखकर वह चुप रह गया। कृतज्ञता से मुस्कुराने की चेष्टा की। केशों को हाथ से संवारकर, कॉफी का कप लिया और कमरे की ओर लौट पड़ा। सती पीछे हो ली। अनूप ने कहा, "मैं उधर आ रहा था।"

"कोई बात नहीं। सुकु सो रहा है...... बात यह है, क्या यहां नजदीक कोई मंदिर नहीं है ?"

यही बात पूछने के लिए सती ने उसे तड़के जगाया होगा, ऐसा सोचते ही अनूप के चेहरे पर एक शरारत भरी मुस्कुराहट खेल गयी। सती की ओर देखते हुए बोला, "तुम्हारी भक्ति गायब हो गयी है, ऐसा मेरा ख्याल था।"

अगले ही क्षण उसे भान हुआ कि उसके बोल सती को फिर से सुकु की विवशता और अपंगता की याद दिला देंगे। इसलिए कॉफी का कप लेकर वह कुर्सी पर बैठ गया और उसने बात का रुख मोड़ दिया, "यहां निकट कोई मंदिर नहीं है। वैसे तो यहां मंदिरों की कोई कमी नहीं है।"

''जल्दी से जाकर वापस आ जायेंगे।''

''क्या सुकु को भी ले जाना है ?''

''उसके जागने से पहले जल्दी जल्दी वापस आ सकते हैं, ऐसा मैं सोच रही थी।''

''अकेली ?''

''हां।''

''तुम्हारे आने से पहले सुकु जाग उठा तो ?''

''यह जिम्मेदारी पिताजी को सौंप चुकी हूं कि जरा देर सुकु का ध्यान रखें।''

''तुम तैयार हो न ? तो ठीक है चलो, मैं तुम्हें मंदिर ले चलता हूं।''

''मगर तुम स्नान नहीं करोगे ?''

''कल शाम मैंने स्नान किया था। उसके बाद मैंने कोई महापाप तो किया नहीं है।''

मेज पर रखे सिगरेट के पैकेट को सूंघकर देखा। सती नजर उठाये बगैर बड़बड़ा रही थी, ''कल..... कल मैंने बगैर सोचे-समझे न जाने क्या क्या कह दिया।''

वह दरवाजे पर, भरे नयनों से ऐसे खड़ी थी, जैसे कोई नटखट बच्चा मां को पत्थर मारकर भाग जाता है और फिर अश्रुपूर्ण नयनों से दुविधा में दरवाजे की ओट में खड़ा हो जाता है।

सिगरेट के पैकेट को नीचे फेंककर वह बोली, ''मुझे ऐसा नहीं करना चाहिए था।''

दोबारा सती को दुख की दिशा में भटक जाने से रोकने के इरादे से अनूप कुछ वाचाल हो गया, ''जिन्हें हम अपना कहते हैं और समझते हैं, वे फिर किसलिए हैं और कब काम आयेंगे, सती ?''

सती ने घबरायी नजरों से अनूप की ओर देखा। आजादी की लड़ाई (सिपाही म्युटिनी) किस सन् में हुई थी इस प्रश्न के उत्तर में इन्हीं घबराई हुई नजरों से सती ने कई साल पहले ट्यूशन-मास्टर की ओर देखा था।

अनूप ने पुन: कहना शुरू किया, ''अपनों से ही बगैर सोचे-समझे बात कर सकते हैं, क्यों ? औरों से सोच-समझकर ही बात की जाती है। बिना सोचे बोलने में क्या बुराई है ? अच्छा, जाने दो इन बातों को। अब अचानक मंदिर जाकर किसके लिए प्रार्थना करना चाहती हो ?''

सती ने गंभीरता के साथ साफ साफ उत्तर दिया, ''अपने सब सगे-संबंधियों की सद्बुद्धि के लिए प्रार्थना करूंगी।''

''क्या अब जो बुद्धि उनमें है, पर्याप्त नहीं है ?''

सती की आंखें भर आयीं। बोली, ''यहां तक कि पिताजी भी..... ।''

अचानक ही अनूप के मुंह से निकल गया, ''सती, तुम्हारा भला हो, ऐसा सोचना क्या गलत है ?''

तब बहुत देर तक अनूप की ओर एकटक ताकते रहते के बाद एक दीर्घ नि:श्वास लेकर सती ने पूछा, ''अगर मेरी जगह तुम होते तो क्या करते, अनियेट्टा ?''

अब जो भी हो, शुरुआत हो चुकी थी। ऐसे में चुप रहने का कोई फायदा नहीं है, मन को यह समझाकर अनूप ने कहा, "समझदारी से काम लेता।"

"साफ साफ कहिए।"

"मैं अपने मन को संतुलित रखूंगा।"

"किसी से प्यार नहीं करोगे ?"

"सबसे करूंगा।"

"एक अपाहिज भाई से भी... ?"

"अपनी समझ-बूझ से जितना भी हो सकेगा, देखभाल जरूर करूंगा।"

"अगर वह ठीक नहीं हो सके तो ?"

"विश्वास कर लूंगा कि वह ठीक नहीं हो सकता।"

"फिर ?"

"जो उस संदर्भ में करना चाहिए, करूंगा।"

"क्या ?"

"जो भी करना चाहिए, वो।"

"वो क्या ?"

"व्यावहारिक बुद्धि से सोचोगी तो पता चल जायेगा।"

उसका दीन रुदन एक चीत्कार में परिवर्तित हो गया। बोली, "क्या उसे जान से मार डालोगे ?"

"ऐसा तो मैंने नहीं कहा !"

"यह सब मुंह से बोलने की क्या जरूरत है ?" सती सिसकने लगी। "मुझे सब कुछ मालूम है..... मैं सबको अच्छी तरह जानती हूं...... ।"

"यहां तो खतरे की घंटी बज रही है ! सती, तुम सही ढंग से सोचने की क्षमता खो चुकी हो। तुम्हारा मन बेहद थक चुका है। मैं सब समझ रहा हूं। खैर, कोई बात नहीं।"

सती को संभाल पाना अनूप के लिए मुश्किल हो गया था। सती अनाप-शनाप बक रही थी। भरे नयनों और भर्राये गले से बोली, "तुम लोगों को कुछ भी समझ में नहीं आयेगा..... तुम सिर्फ स्वार्थ से भरे हो..... सब कुछ हड़प लेना चाहते हो। यह सिद्ध होता नजर न आये तो कुछ भी करने से नहीं चूकोगे। मार-पीट करने से भी नहीं घबराओगे। जान लेने से भी नहीं घबराओगे...... ।"

"सती !" अनूप ने कड़े स्वर में कहा। इस डांट का भी सती पर कोई असर नहीं हुआ।

"बस, बस, अनियेट्टा ! अब मुझे कुछ भी नहीं चाहिए। मेरा सत्य तो सिर्फ सुकु है। मैं आपको कभी भी पति के रूप में...... ।"

उसको बात पूरा करने दिये बगैर चुपचाप आ खड़े हुए भास्कर मेनोन ने कहा, "बेटी ! क्या तुम मंदिर नहीं गयीं ?"

सती चौंक पड़ी। उसने मुड़कर देखा। कॉफी का कप मेज पर रखकर अनूप उठ खड़ा

हुआ। सती ने बारी बारी से अपने पिता और अनूप को देखा। दोनों ओर से बच निकलने का कोई मार्ग दिखाई न देने पर दरवाजे की ओर चली।

मामाजी ने बगल से निकलकर जाती हुई सती को रोकने का प्रयास भी नहीं किया। उसने सुकु के कमरे में घुसकर जोर से दरवाजा बंद किया। मामाजी चुपचाप उसे जाते देखते रहे।

अपने शत्रुओं से बचने के लिए किले के द्वार को जोर से बंद करने की तरह था उसका जाना।

चेहरे पर एक मुस्कुराहट लिये धीरे धीरे डग भरते हुए मामाजी अनूप के समीप आ पहुंचे। कंधे पर पड़े अंगोछे के छोर से निकलते एक धागे को खींचकर तोड़ा और कहा, "मैंने सब कुछ सुन लिया।"

जिस वाक्य को सती अधूरा छोड़ गयी थी, उसी से अनूप का दम घुटा जा रहा था। मामाजी ने धीरे से अनूप के कंधे पर हाथ रखा और बोले, "तुम्हें उसके प्रति क्षमा-भाव रखना चाहिए।"

अनूप से मुस्कुराया नहीं गया।

मेनोन ने पुनः कहना शुरू किया, "वह क्या कह रही है, खुद भी नहीं जानती। यह सब मुझे तुमसे कहने की कोई जरूरत नहीं है। फिर भी..... उसे दिल खोलकर हंसे एक अर्सा हो गया। न कुछ पढ़ती है, न गाना गाती है, न ही सुनती है। न किसी से दोस्ती करती है, न ही कहीं घर से बाहर निकलती है। पहले कम से कम मंदिर तो जाती थी, पर अब कुछ समय से यह भी छूट गया है। वास्तव में गलती मेरी ही है। पहले से ही सुकु को उससे अलग करना चाहिए था। मगर मैंने ऐसा नहीं किया। ठीक हो जायेगा, यही सोचा था। ऐसा ही तो लगेगा। होते होते मामला यहां तक पहुंच गया। सती खुद को दुखी करना चाहती है। इतना ही नहीं, दूसरों को भी दुखी करना चाहती है। कहने से कुछ फायदा नहीं है। इस दुनिया में कोई और हंसे, यह भी उसे सहन नहीं होता। उसका विचार है कि उसके अलावा कोई भी सुकु से प्यार नहीं करता। उसका पिता— मैं— भी प्यार नहीं करता। उसे यही चाह है कि सब उससे घृणा करें। खैर, अब चाहे जो भी हो, ऐसा......."

इस वाक्य को पूरा करने की जरूरत नहीं है, ऐसा महसूस करके मामाजी बोलते बोलते रुक गये।

एक मृत व्यक्ति, जिसके मरने का सबको पूरा विश्वास हो, अचानक उठकर बोल पड़े, ऐसा ही चमत्कार अनूप को मामाजी की बातों और चेष्टाओं से प्रतीत हो रहा था। मामाजी के मुखमंडल पर गहरी प्रसन्नता और जागृति विराजमान थी। वे बड़े ही निस्पृह ढंग से बातें कर रहे थे, मानो उनका किसी के साथ कोई भावनात्मक रिश्ता न हो। उनकी आवाज में न तो भर्राहट थी, न ही कोई लड़खड़ाहट।

"मेरे घर में एक पुत्र ने जन्म लिया। मगर उसमें सोचने-समझने की शक्ति नहीं है। मेरे पास अब सिर्फ तुम ही हो। मेरी खातिर तुमको थोड़े सब्र और सहनशीलता से काम लेना होगा।"

उत्तर की प्रतीक्षा किये बिना, इस दृढ़ विश्वास के साथ कि उनकी प्रार्थना जरूर स्वीकार की जायेगी, मामाजी आगे बढ़ गये। उनकी चाल से अनूप को ऐसा लगा कि उनकी उम्र पांच-

दस साल घट गयी है।

किवाड़ के पास पहुंचकर मामाजी मुड़े और जोर से कहने लगे, "सब ठीक हो जायेगा।" मेनोन की बात सुनकर अनूप को और अधिक आश्चर्य हुआ।

सिगरेट और माचिस उठाकर अनूप कमरे से बाहर निकल गया और निरुद्देश्य पैदल पथ पर चलने लगा।

घर से दस कदम आगे बढ़कर उसने सिगरेट जलायी! धुएं का स्वाद मुंह में आने से अनूप के अंदर एक ताजगी पैदा हुई। स्वतंत्र और स्वच्छ समीर ने इस उल्लास को बढ़ाने में और मदद की।

सती का अपूर्ण वाक्य अभी तक उसके मन में भंवरे की तरह घूं घूं कर रहा था। उसके दंश से जो टीस उस समय महसूस हुई थी, अब भी बनी हुई थी।

मां भी ऐसी ही थी, अनूप को एकाएक याद हो आया। अत्यधिक क्षुब्ध होकर कई बार पिताजी को इससे भी ज्यादा कड़ी बातें कहते हुए उसने मां को सुना था। मां का सारा क्रोध और आक्रोश पिताजी के पियक्कड़पन के कारण था। मां को पिताजी के स्वास्थ्य और आयु पर आने वाले संकट की बहुत चिंता थी। उनके बुरा-भला कहने पर हंसना पिताजी की आदत थी। यह देखकर मां नाराज हो जातीं। मां की नाराजगी से पिताजी का नशा और बढ़ जाता। अंततः मां फूट फूटकर रोने लगतीं। उनका रोना पिताजी को परेशान कर देता। पिताजी को गुस्सा आ जाता और वे कहते, 'जब तुम रोती हो तो तुम्हारा चेहरा देखने में अच्छा नहीं लगता।'

क्रोध आने पर सती के चेहरे पर मां जैसे हावभाव ही नजर आने लगते हैं। खासकर जब वह अनाप-शनाप बोलने लगती है।

सती और मां के व्यवहार में अनूप ने कई समानताएं ढूंढ़ निकालीं। पिताजी की मृत्यु के बाद मां ने उनकी यादों को इस तरह दुलारा, जैसे सती सुकु को दुलारती है। अनूप जोर से हंसता भी तो मां नाराज हो जातीं। एक बार बोलीं, 'अनु, यह क्या हंसी-टट्ठा लगा रखा है! तुम्हारे पिताजी को गुजरे अभी एक साल भी पूरा नहीं हुआ।' इसके उलट भी होता था— किसी वजह से अगर अनूप का चेहरा बुझा हुआ दिखाई दे तो मां बड़बड़ाने लगतीं, 'जानेवाले तो गये। अब दुखी होने से क्या फायदा?'

उनकी राय यह थी कि अगर कोई शोक मनाना चाहता है तो मनाये, पर इस कार्य में आगे रहने का परम अधिकार उन्हें ही मिलना चाहिए। अगर किसी को इस बात का दुख न हो तो उसे खुश रहने की भी इजाजत नहीं है !

सती का भी यही रवैया है। फर्क सिर्फ यह है कि सती का दुख एक जीवित व्यक्ति से संबंधित है। याद एक ऐसी छांव है, जो किसी को तंग नहीं करती। पर यहां बात ऐसी नहीं है। जिस प्रकार सती सुकु की सेवा-शुश्रूषा करती है, यही उसकी एक अलग स्थिति का स्पष्ट उदाहरण है। इस बात को अनूप ने भली भांति समझ लिया था।

सती अक्सर सुकु में कभी दर्द, कभी प्यास की कल्पना करती है। इसके अलावा खुजली और न जाने क्या क्या ढूंढ़ निकालती है। फिर उसके इलाज के तरीकों के लिए दौड़-भाग शुरू

हो जाती है। फलस्वरूप उसे आये दिन बदहजमी का शिकार होना पड़ता है। कारण, आवश्यकता से अधिक खाद्य और पेय का सेवन। रात को अक्सर सुकु को नींद नहीं आती। सांझ को वह दो-चार झपकियां ले लेता है। कभी-कभार रात को यदि तीन-चार घंटे लगातार सो जाये तो सती के लिए परेशानी का विषय हो जाता है। कहीं वह नींद से ही नहीं जागा तो क्या होगा? यह विचार आते ही वह डर जाती है और उसे जगा देती है। बेमौके जगाने पर सुकु घबराकर और दिनों की अपेक्षा अधिक चीखना-चिल्लाना शुरू करता है। यह देखकर सती भी पागल सी हो जाती है।

इतना घबराने की क्या जरूरत है, ऐसा अगर किसी ने पूछ लिया तो वही सती का शत्रु बन गया !

अनूप की दृष्टि में सुकु सती के लिए एक खिलौना, बिना प्रसव-पीड़ा का अनुभव किये मिला हुआ एक बच्चा और अकेलेपन का साथी प्रतीत होता था। एक अर्थहीन अनावश्यक रिश्ता, मानो नदी में बहता एक फूल किनारों पर लगे कांटों में उलझकर गोलाकार घूम रहा हो।

अनूप को संदेह हो रहा था कि सती उसके लिए सभी से संबंध तोड़ने के लिए तत्पर है। यही अव्यक्त प्रेरणा उसे बार बार मामाजी और अनूप से लड़ने को उकसा रही है।

अनूप सोच रहा था कि इस जीवन में तमाम रिश्ते पूर्णता की खोज करते हुए अपूर्ण बंधन हैं। किसी रिश्ते में कोई सामंजस्य न हो तो उसे बनाने की चेष्टा करनी चाहिए। अगर मेल-जोल हो जाये तो यह विजय एक गौरवपूर्ण बात होगी। और अगर हर संभव प्रयास के बाद भी तालमेल न बैठे तो अत्यंत दुखद बात होगी।

सुकु के प्रति सती का प्रेम एक हद तक पूर्ण ही कहा जा सकता है। इस रिश्ते में मेल-जोल का होना, न होना कोई अर्थ नहीं रखता। संदेह और विश्वासघात का प्रश्न ही नहीं उठता। किसी रणभेरी का सामना भी नहीं करना पड़ेगा। सुकु के मन में क्या है, इसका निर्णय तो सती करती है। अपने शरीर के किसी भी अंग से एक व्यक्ति को जो प्राकृतिक स्नेह होता है, वैसा ही स्नेह सती का सुकु के प्रति था।

सुकु को लेकर सती को बहुत सी गलतफहमियां हैं। वह सोचती है कि सुकु का विश्वास है कि उसका स्नेह केवल सती के लिए है और उसका पूरा प्यार सती पर ही न्यौछावर होगा। यह उसकी धारणा है, जिसे वह हृदय से लगाकर बैठी हुई है।

यह कथन कि हर लड़की में हमेशा एक मां रहती है, अनूप याद कर रहा था।

किसी को नये सिरे से प्यार करने की क्षमता सती खो चुकी है, ऐसा आभास होने लगा था अनूप को। सुकु से उसके संबंध में इतनी प्रगाढ़ता आने से पहले जो उसे प्रिय थे, उनसे अब वह नफरत जैसी कर रही है।

लोदी गार्डन में बने एक मकबरे के सामने वाले हरे-भरे एक लान में लेटे हुए अनूप ने आखिरी निर्णय लिया— जब तक सुकु जीवित रहेगा, सती का छुटकारा नहीं होनेवाला। इस विषय में कोई सोच-विचार करना बेकार है। कुछ समय और इंतजार कर लेते हैं— पर इससे

किसी लाभ की संभावना दिखाई तो नहीं देती।

यही सोचते सोचते अनूप को भयंकर दुख का अहसास हुआ। यह पीड़ा निश्चित रूप से कलवाले घाव की है; जो घाव की वास्ताविक पीड़ा से कहीं अधिक है। जीवन में मृत्यु जो महीनों, दिनों या किसी भी समय आने वाली है, उसका भय और मानसिक परेशानी मरणवेदना, यानी मृत्यु से भी कहीं ज्यादा होती है। यह तो प्रकृति का नियम है।

सामने बनी कब्रों को अनूप इस तरह घूर रहा था, मानो वह इन्हें आज पहली बार देख रहा हो। जो हमसे कट कटकर अलग हो गये हैं, उनकी दुख-भरी यादगार। हम जिससे प्यार करते हैं या करते थे, उन्हें हमारे मरणोपरांत दुनिया याद रखे, ऐसी हठ ठाननेवाले बेवकूफों द्वारा निर्मित इमारतें। आखिर एक प्रतीक-स्वरूप ही तो रह जाती हैं किसी के दर्द में बनी ये इमारतें।

अनूप एक फीकी हंसी हंसा, मानो अपने ऊपर व्यंग्य कस रहा हो।

सफेद बालों जैसी फफूंदी लगी, काई जमी और टूटी-फूटी ये इमारतें आज चमगादड़ों का रैनबसेरा बन चुकी थीं। अनूप ने सती नाम की लड़की से कभी प्यार किया था, उसकी याद में बना स्मारक !

उसे नहीं मालूम था कि वह किधर जा रहा है। उसके पैर उसे जिधर ले जा रहे थे, उसके जरिए वह अपने ठिकाने पर पहुंच गया।

ड्राइंगरूम या बैठक में बातचीत सुनाई दे रही थी। मामाजी और सती थे। अनूप दुविधा में था कि वह अंदर जाये या न जाये।

पराया सा बनकर बाहर खड़े रहना उसे उचित नहीं लगा। इसलिए वह भीतर चला गया। वार्तालाप जहां था, उससे आगे बढ़ते हुए मामाजी सती से कह रहे थे, ''....... किसी को कोई एतराज नहीं है। जैसा तुम चाहोगी, वैसा ही होगा। सुझाव देना मेरा कर्तव्य है, सो कहा। बस इतना ही।''

स्थायी रूप से बनी रहनेवाली उदासी पर मानो प्रसन्नता का आवरण आ पड़ा था। सती खुश नजर आ रही थी। अनूप से पूछा, ''आप को आज दफ्तर जाना है, ऐसा ही तो आप कह रहे थे न ? फिर आप कहां चले गये थे, अनियेट्टा ?''

भयंकर गर्मी में मानो ठंडी हवा का एक झोंका चेहरे को छू गया हो, ऐसा महसूस हुआ। सती के इस स्नेह-प्रदर्शन ने अनूप को दंग कर दिया। अब तो वह सती को निर्निमेष दृष्टि से एकटक निहारता रहा।

मामाजी ने कहा, ''जाकर स्नान कर लो। फिर एक साथ बैठकर खाना खा लेंगे।''

जैसे ही पानी सिर पर पड़ा, अनूप का उत्साह पुनः लौट आया। उसके सोचने का ढंग बिलकुल बदल गया।

सती इस दुनिया में सबसे ज्यादा उसी से प्रेम करती है, यह बात तो एकदम स्पष्ट है। आजीवन अपंग रहनेवाले अपने मां-जाये भाई को उस पर लादकर वह उसे परतंत्र

बनाना नहीं चाहती। उसे अपने से दूर रखने के लिए वह अपनी अंतरात्मा के विरुद्ध विकट परिश्रम भी कर रही है।

अनूप मन ही मन बड़बड़ाने लगा, 'नहीं, चाहे कितना भी ठेलो, गाड़ी हिलनेवाली नहीं है। एक बार और कोशिश करके देख लेते हैं। तभी असली बात का पता चलेगा।'

आठ

मन ही मन फैसला करने के बाद भास्कर मेनोन को नये सिरे से मनोबल बटोरने की जरूरत आ पड़ी थी ।

बरसों से यह मामला विचाराधीन था। अनुकूल और प्रतिकूल रायों का यथासंभव विश्लेषण हो चुका था ।

असह्यय मानसिक व्यथा और जागते हुए काटी गयी अनेक रातों के बाद जिस शाम वे अनूप के साथ टहलने निकले थे, यह न्यायपूर्ण फैसला ले लिया गया था ।

बहुत ही मुश्किल कार्य है, मगर उस पर अमल किये बगैर कोई गति नहीं। सुकु के और जीवित रहने की कोई जरूरत नहीं है, यही था फैसला ।

उसके और जीवित रहने से उसे या इस दुनिया को कोई फायदा नहीं होगा, बल्कि परेशानी ही बढ़ेगी ।यही था मेनोन का न्यायोचित तर्क ।

इस निर्णय की सबसे बड़ी प्रेरणा-शक्ति थी सती और उसकी भावी जिंदगी, यानी उसका भविष्य ।

सौ सौ बार ऐसे विचारों को मन के किसी कोने में धकेलकर लिया गया था यह फैसला। इसने दिल में न जाने कितनी हूक , बेचैनी और व्यथा उत्पन्न की थी ।व्यक्तिगत प्रेम के नाम पर अशक्त होकर किसी केस के फैसले को आगे बढ़ाते जाना न्यायोचित नहीं है । किसी भी न्यायाधीश को ऐसा नहीं करना चाहिए , ऐसा सोचते हुए भास्कर मेनोन बार बार अपने आपको समझाने का अथक परिश्रम कर रहे थे ।

चाहे जो भी हो किसी भी हालत में सती सुकु से अलग होने को तैयार नहीं होगी ,ऐसा विश्वास होने पर ही उसी रात इस फैसले को अंतिम रूप दे दिया गया। और कोई मार्ग ही दिखाई नहीं दे रहा था, एसी दशा हो गयी थी भास्कर मेनोन की।

वे बिलकुल नहीं सो पाये।

घड़ी एक एक घंटे और आधे आधे घंटे पर बज रही थी । यही सुनते-सुनते सवेरा हो गया ।

सुकु के जीवन की सारी कहानी चलचित्र की भांति आगे बढ़ती जा रही थी । प्रतीक्षा के अनेक खुशबूदार फूल एक एक कर मुरझाकर गिरते हुए... झांकियों की तरह गुजरती हुई यादें ।

अपनी गलतियों को पूर्णरूपेण समझे हुए एक व्यक्ति की तरह भास्कर मेनोन अपनी पिछली जिंदगी की ओर देख रहे थे।

सुकु का जन्म बहुत लंबी प्रतीक्षा और मनौतियों के फलस्वरूप हुआ था। एक-एक

करके तीन कन्याओं का जन्म हुआ तो जैसे गंवारू लोगों की भाषा में कहते हैं, कि अब लड़कियों से दिल भर गया।

सती को अन्य बहनों की अपेक्षा लाड़-प्यार भी कुछ कम ही मिला। मगर ऐसा कभी नहीं लगा कि इसे लड़का होकर पैदा होना चाहिए था। लड़के की भारी चाह के बावजूद अगर यह कन्या पैदा हुई, तो इससे किसी ने प्यार में कमी नहीं बरती। मगर कुछ फर्क जरूर महसूस हुआ था। किस हद तक, यह कहना या समझना बहुत ही मुश्किल है।

अदालत से वापस आने पर, वासंती और सुमति के लिए, जब वे छोटी बच्चियां थीं, लाड़-प्यार का समय निकाल लिया जाता था। जितना लाड़ प्यार वासंती को मिला उतना सुमति को नहीं मिला।

और जब सती की बारी आयी तो लाड़-प्यार क्रमशः कम ही नहीं हुआ, बल्कि नहीं के बराबर हो गया। यह सही है कि नौकरी में तरक्की और जिम्मेदारियां बढ़ने से समय के अभाव का रोना भी रोया जाता था। कहावत है कि समय आने पर कटहल शाखाओं पर ही नहीं, जड़ों पर भी फूलती है। लाड़ प्यार में बार बार नीरसता बच्चों के जीवन में अच्छी नहीं होती। मगर अक्सर ऐसा ही होता है।

सती के जन्म पर जानु को अत्यधिक निराशा हुई थी। उसका मत था कि अब एक लड़का ही होना चाहिए। सबको लड़के के जन्म पर बहुत खुशी होगी, यह विचार उनकी इच्छा को और प्रबल कर रहा था।

लेकिन पैदा हुई थी एक लड़की। भास्कर मेनोन ने अपने मन को यह कहकर शांत करने की कोशिश की कि यह तो जन्म लेने वाले के भाग्य का दोष है कि वह लड़की बनकर पैदा हुई। चाहे कुछ भी हो, माता पिता तो केवल इंसान ही हैं। देवता भी इस भूमि पर मनुष्य रूप में जन्म नहीं लेते, न ही माता पिता बनने का सौभाग्य उन्हें मिलता है।

मेनोन चाहते थे कि जिस प्रकार वे अपने पिता के इकलौते बेटे हैं, वैसे ही उनका भी अपना एक पुत्र हो। उन्होंने मन में तर्क किया कि ऐसी हसरत रखना गलत भी नहीं ठहराया जा सकता। अगर ऐसी बात हो तो दुनिया में प्रत्येक माता पिता इस अपराध के लिए दोषी हैं।

लड़का या लड़की पैदा होना माता पिता की इच्छा शक्ति पर निर्भर नहीं है। फिर भी यह आशा मन से नहीं जाती।

सती के जन्म के साथ ही निराशा का अंकुर भी फूट पड़ा था। इस निराशा से उत्पन्न अनास्था से सती के कोमल मन पर कहीं कोई खरोंच नहीं आयी होगी, यह निश्चयपूर्वक नहीं कहा जा सकता।

इसका प्रतिविधान ही सही, आज तो कम से कम कुछ करना जरूरी है, ऐसा भास्कर मेनोन सोच रहे थे।

छोटी सी सती को लड़कों के वस्त्र पहनाकर, उसे देखकर आनंदित होने की बेवकूफी भी उस समय की थी। इसके लिए समय निकाल लिया था, पर उसे लाड़ लड़ाने का समय नहीं

निकाल सके थे।

बेटे का न होना विधि का विधान समझकर आश्वासन देते रहे। नित्य यही प्रार्थना करते कि हे भगवान! अब जो बच्चा हो वह तो लड़का ही होना चाहिए।

लड़का और लड़की एक समान हैं, ऐसा सोचने का साहस और विवेक उनमें तब नहीं था, इसके लिए वे स्वयं दोषी थे। सच यह है कि जिस तरह का विश्वास उन दिनों समाज में प्रचलित था, वह स्वयं इस साहस के प्रतिकूल था।

अर्थी को कंधा देने, दाह-संस्कार करने और तिलोदक! श्राद्ध और पिंडदान! देने के लिए 'पुरूष संतान' ही चाहिए। ऐसा भी कहा जाता है कि लोहे का कड़ा नहीं लगाने से मूसल नहीं बनेगा। बिना सहारे के केले का पेड़ लंबा होता जाता है और उसके ढह जाने की संभावना बढ़ जाती है।

अपनी जन्मपत्री का विशद अध्ययन कराया। दोनों का चौथा बच्चा बेटा होगा, इस की पूरी संभावना है। ग्रहदशा अनुकूल है। परंतु अनिष्ट के लक्षण भी नजर आ रहे हैं। भगवत्कृपा की बहुत अधिक जरूरत पड़ेगी। मंदिर में किये जानेवाले अनुष्ठानों की एक लंबी सूची बनवाई और उसका विधिपूर्वक निर्वहण किया गया।

'यह बेटा ही है', ऐसा मानकर गर्भकाल में जानु कहती थी। यह तो वास्तव में 'वही' है!

मेनोन कहते थे, 'चाहे कुछ भी हो—लड़का या लड़की ।दोनों ही बढ़िया हैं। लेकिन मन ही मन भगवान से प्रार्थना करते, 'हे भगवान! कम से कम यह तो लड़का ही हो!'

हर समय पिता-पुत्र की सह-परंपरा आखों के सामने चलती रहे, ऐसी मन में उत्कठा थी।

जब लड़का पैदा हुआ तो विश्वास नहीं हो रहा था। आनंद की तो सीमा ही नहीं थी।

मिथुन मास यानी जून का महीना था। घनघोर वर्षा हो रही थी। आंधी भी चल रही थी। मेनोन को लग रहा था जैसे कल ही की बात हो। उस समय आनंद का पारावार नहीं था। इस तरह का आनंद न पहले हुआ था, न आगे होगा, ऐसा उनके मन ने निश्चय कर लिया था। जब मेनोन मुंसिफ के पद के लिए चुन लिये गये थे और उन्नति करते हुए हाईकोर्ट में जज बन गये थे, तब भी इतनी खुशी महसूस नहीं हुई थी।

यह खुशी आगामी भारी मानसिक व्यथा की भूमिका है, यह तब कौन जानता था? बच्चा जब दो महीने का हुआ, तब छुट्टियों में अनूप की मां उसे देखने गांव आयी। उसी दिन मन में कुछ शका उत्पन्न हुई।' भैया, मुन्ने को आपने अच्छी तरह देखा है ?' उन्होंने मेनोन से पूछा था। यह कैसा सवाल किया जा रहा है, ऐसा सोचकर उनको हंसी आ गयी थी। फिर भी पूछा था, 'ऐसे क्यों सवाल कर रही हो?'

' पहले बताइए, क्या आपने देखा या नहीं?'

'हां, देखा है।'

'आंखों में उभरते भाव की ओर क्या आपने ध्यान दिया?'

'कैसा भाव ?'

'मुझे लगता है कि कहीं कोई कमी रह गयी है।'

मेनोन को लगा था कि कैसी बेतुकी, पागलों जैसी बात कर रही है यह ! फिर भी उन्होंने बच्चे को खुली रोशनी में लाने के लिए नाणियम्मा को आज्ञा दी थी।

उन्होंने बच्चे को देखा। मन में शक हुआ।

जानु को भी शक होने लगा था।

इस उम्र के बच्चे की आंखों में जो सहज और स्वच्छंद भाव होना चाहिए, वह दिखाई नहीं दे रहा था।

बच्चे के रोने में भी एक प्रकार की अस्वाभाविकता झलक रही थी।

इसके बाद मानो चिकित्सा की बाढ़ आ गयी। खास तरीके से जन्मपत्री भी बनवाई गयी।

यह एक लाइलाज बीमारी है, ऐसा न किसी डाक्टर ने बताया न किसी वैद्य ने। सत्य बोलने के साहस के अभाव में उन्होंने ऐसा किया था, अब स्पष्ट दिखाई दे रहा है।

अक्सर लोग यही कहते, 'थोड़ी सी कसर दिखाई देती है।'

'कोई खतरा तो नहीं है ?'

'नहीं।'

'ठीक तो हो जायेगा न ?'

'देखते हैं। खैर, ये दवाइयां आप उसे खिलाइए।'

इस तरह ही सब चलता रहा था।

दांत तो अपने समय से निकल आये, मगर मुंह से बोल नहीं फूटे। कुछ अनुभवी बुजुर्गों ने कहा— कई बच्चे बहुत देर से बोलते हैं। चिंता की कोई बात नहीं।

क्या वे लोग इन सब बातों से अनभिज्ञ थे ? या सिर्फ तसल्ली दे रहे थे ?

किसी भी बात पर प्रतिक्रिया देने में असमर्थ ही रहा। समय के साथ सब कुछ ठीक हो जायेगा, अंतत: यही सोचा था।

नेक रास्ते पर चलनेवाले मेनोन को इस तरह की गतिहीनता और असहनीय दिक्कत का कभी भी सामना करना पड़ सकता है, ऐसा उनका दृढ़ विश्वास था। भगवान हमेशा उनके साथ रहेंगे, यह विश्वास भी था मेनोन को।

इस बच्चे का जन्म भी भगवत्प्रीति का अनूठा प्रमाण था। भगवान ने उनकी विनती सुन ली, यह तो निश्चित हो गया था। अगर वे इतनी करुणा दिखा सकते हैं तो इस मुसीबत से भी पार लगा सकते हैं।

ऐसा कोई मंदिर नहीं था, जिसमें मेनोन जानु और सुकु को लेकर नहीं गये। कोई पूजा-अनुष्ठान नहीं था जो उन्होंने नहीं किया।

मेनोन को याद आया कि उनकी जन्मपत्री में आनेवाले दिनों में किसी संकट की संभावना दिखाई दे रही थी।

इस दुनियावी प्रपंच में सब कार्य पहले से ही निश्चित हैं। फिर सुकु के बारे में उनका लिया हुआ निर्णय भी पूर्व-निश्चित है। वे तो मात्र एक यंत्र हैं।

जानु ने खटिया पकड़ ली तो उन्हें सब कुछ दिखाई देना बंद हो गया। सुकु की चिकित्सा यथावत चलती रही। मगर एक और भयंकर भावी आपदा के सामने कुछ समय के लिए सुकु भी विस्मृत हो गया।

लड़के की जगह लड़की हो जाने की गलती से सती लाड़ प्यार से वंचित रही। फिर सुकु की बीमारी पर सबका ध्यान केंद्रित हो गया, और प्यार की कमी और बढ़ती चली गयी। फिर से मिली सजा ने उसे सुकु के करीब जाने का मौका दिया और वह स्वाभाविक रूप से उसे अपना दोस्त मानने लगी।

जानु की मृत्यु के बाद इस प्रपंच से उनका मोह भंग होने लगा और सुकु की चिकित्सा के अलावा अन्य बच्चों के बारे में पूछताछ भी कम हो गयी। रिटायर होने के बाद दिन का अधिकांश समय मंदिरों और पूजाघरों में बिताया जाने लगा।

जानु की मृत्यु के बाद मेनोन सही अर्थ में अकेले हो गये। दोनों ने मिलकर इस जीवन का भार उठा रखा था। मगर भार उठानेवाला एक कंधा हमेशा हमेशा के लिए टूट गया।

चाहे कितनी भी कोशिश की जाये, अकेले इस जीवन का भार उठाने की क्षमता मेनोन में नहीं थी। इसलिए इस जीवन का सारा भार उन्होंने भगवान को अर्पण कर दिया। एक सहारे के रूप में उन्होंने उसे देखा। एक फीकी मुस्कान के साथ भास्कर मेनोन सोच रहे थे— भगवान को भास्कर मेनोन की जितनी जरूरत है, उससे ज्यादा उन्हें भगवान की जरूरत है।

निर्णय लेने में असहाय हो जाते तो भगवान के ऊपर छोड़ देते। पिता होने के नाते जो कार्य जिस समय करना होता, नहीं करते और सिर्फ उम्मीदों के सहारे समय बिता देते।

क्या यह बहुत बड़ी गलती है ? ऐसा भास्कर मेनोन अपने आप से पूछ रहे थे। उम्मीदों के बगैर क्या कोई जिंदा रह सकता है ? एक ऐसी शक्ति जो सब कुछ जानती है, और सब पर नियंत्रण रखती है, उस पर सब कुछ छोड़ देना क्या गलत है ?

अथवा, क्या ऐसी कोई शक्ति है, या वह मन का भ्रम है ? मनुष्य का भ्रम ? अगर ऐसी कोई शक्ति है तो उस पर अपनी इच्छाशक्ति का दबाव डालना क्या बेवकूफी नहीं है ? रिटायर्ड जज भास्कर मेनोन और उनके बच्चों के मामले में क्या उस शक्ति को कोई खास दिलचस्पी है ?

क्या वह इतना क्षुद्र है कि प्रार्थना से ही खुश हो जाता है ? घास-पात और कीड़े—मकोड़े की तरह भास्कर मेनोन और उसके बच्चे भी हैं। भगवान के लिए भेद्-भाव की क्या जरूरत ? वे इस बारे में विश्लेषण क्यों करें ?

प्रार्थना और उम्मीदों के बल – बूते पर वे अपनी दिली तसल्ली ही पा रहे थे। दोनों बच्चों का भविष्य इस समय नष्ट होता जा रहा था।

अब ऐसा होने की आज्ञा नहीं दी जा सकती। अगर इस बात की इजाजत दे दी तो उनका अंतिम फैसला उनके ही खिलाफ जायेगा। जीवन नामक गणित में जो राशि है, उस पर कर्जा चढ़ जायेगा।

हजार नियामत से पैदा हुआ था एक बेटा और अब उसके जीवन का अंत करने पर विचार किया जा रहा है और निर्णय लिया जा रहा है, यह याद आते ही भास्कर मेनोन का दिल न जाने किस तरह धड़क उठा था।

भास्कर मेनोन ने अपने आप से पूछा, 'अपने जब सामने आ जाते हैं तो पक्षपात किये बगैर फैसला देने में तुम क्यों डरते हो ?'

बुद्धि और मन हो तो एक व्यक्ति को 'वह' कहकर पुकारा जा सकता है, मगर जिसमें दोनों न हों और होने की उम्मीद भी न हो तो कोई क्या करे ?

चलो, न सही, तो भी कोई बात नहीं। काश! सती इस तरह सुकु से चिपके रहना छोड़ देती। वह अपने आप पर भी थोड़ा-बहुत ध्यान देती तो अच्छा होता।

इस तरह उन्हें छोड़ दिया जाये तो, हालांकि कोई आर्थिक कठिनाई नहीं होगी, फिर भी, गुजारा कैसे होगा ? अगर मेरी आंख बंद हो जाये तो उनका कौन है ? इन दोनों में से अगर एक की मृत्यु हो जाये तो दूसरे का कौन है ? उसकी गति क्या होगी ? अगर सुकु बच गया तो उसकी क्या स्थिति होगी, यह सोचना भी मुश्किल है। मैला-कुचैला, भूखा-प्यासा, नंग-धड़ंग, मक्खियों से भरा, सड़ा-गला, बदबू से भरा भूत-प्रेत की तरह इस भूमि पर आवारागर्दी करेगा। उसकी ओर उंगली उठाकर लोग कहेंगे, 'हाय राम! यह तो भास्कर मेनोन का बेटा है!'

'नहीं, नहीं, ऐसा नहीं हो सकता। इसकी कोई जरूरत नहीं है।'

अगर सती रह जाती है तो ? जीवन में सुख क्या है, यह जिंदगी क्या है, यह इतनी देर जीने के बाद भी न जान सकी। वह अनाथ और निराश्रित हो जायेगी। फिर न जाने क्या हो ?

नहीं, नहीं, ऐसा नहीं होना चाहिए। भविष्य इतना स्पष्ट दिखाई देने के बाद भी बिना कुछ किये मर जाने का उन्हें कोई अधिकार नहीं है। उसे जन्म मैंने दिया है, तो खत्म करने में हिचकने की भी कोई जरूरत नहीं है, ऐसा मेनोन सोच रहे थे।

नहीं, हिचकिचाना ठीक नहीं है। वे बार बार अपने मन को दृढ़ कर रहे थे। खरपतवार बहुत बड़ा हो गया है, फिर भी उसे उखाड़ फेंकने में आनाकानी क्यों ?

खूब सोच-समझकर किये गये इस निर्णय को भास्कर मेनोन ने एक बार फिर उलट-पुलटकर देखा।

खासकर यह सब सती के लिए किया जा रहा है, उसे यह पता नहीं लगना चाहिए। ऐसा हुआ तो उसकी प्रतिक्रिया बिलकुल उल्टी होगी। इतना ही नहीं, अनूप और उनको बदनामी और मुश्किलों का भी सामना करना पड़ेगा।

स्वाभाविक मृत्यु की तरह ही सब कुछ घटना चाहिए। किसी को भी कोई संदेह नहीं होना चाहिए।

यह एक कार्य अगर सफलतापूर्वक संपन्न हो जाये तो फिर वे आराम से मर सकते हैं। सुकु को मोक्ष दिलाकर, सती को अनूप के हाथों में सौंपकर अगले दिन इस नरक-वास का अंत किया जा सकता है।

अपनी जिंदगी के बारे में हल्केपन से ही मेनोन विचार कर रहे थे। वे एक अच्छे पुत्र

और अच्छे पति थे। जहां तक हो सका, नि:स्वार्थ सेवा करते रहे। यह बड़े सौभाग्य की बात थी। एक अच्छे पिता भी बनकर मर पायें, इससे ज्यादा प्रसन्नता की बात क्या हो सकती है ?

एक लंबे अर्से की जिदें, परेशानियां और मृगतृष्णा—सब समाप्त हो जायेंगी।

सती अगर मान जाती तो सुकु को किसी अच्छी संस्था में भेज सकते थे। अपने जितनी लगन से सेवा करते हैं वैसा तो नहीं हो पाता, पर प्राथमिक कार्यों में उसकी सेवा-शुश्रूषा जरूर होती। जब तक उसकी आयु है, उसे जीने दिया जा सकता था।

वह मान भी जाये तो एक बात निश्चित है। सुकु दूसरी तरफ हो तो सती इस तरफ नहीं रहेगी। शादी नहीं करेगी वह। उनके मरने के बाद सुकु को अपने पास लाकर रख लेगी।

नहीं; इस राह के बारे में बार बार सोचने से कोई फायदा नहीं। यह कार्य उनके अलावा कोई नहीं कर पायेगा।

पुण्य और पाप का सवाल ही नहीं उठता। एक बच्चे की भलाई के लिए नाम मात्र की एक संतान के जीवन का अंत करना है। किसी भी चश्मे से, यानी किसी भी नजरिये से देखें; यह पुण्य की ही बात है। पाप भी हो तो कोई बात नहीं। किसी भी देवता को ऐसा कहने का अधिकार नहीं है। बरसों से गिड़गिड़ाने के बावजूद सुकु को एक मनुष्य बनाने के लिए कोई भी देवता आगे नहीं बढ़ा।

सवाल-जवाब, शक-शुबह सब समाप्त हो चुके। कार्य संपन्न करने के लिए निश्चित किये तरीके की बारीकियों को एक बार फिर देखने के बाद अंतिम रूप दे दिया गया।

सुकु का चेहरा मात्र मन में घूमता रहा। प्रसव के बाद स्नान कराके आंखों के सामने लाये गये नवजात शिशु का मुखड़ा! संसार की रोशनी, शब्द, सर्दी के असह्यय होने से तड़पता, आंख मूंदकर, कराहकर रोता हुआ मुखड़ा!

पूरब में पौ फटते समय वही मुखड़ा मन में गोते लगाता रहा।

इसी के साथ मन स्तंभित हो गया। आंखों से आंसू छलक रहे थे। दबाये न दबनेवाली आंधियां दीर्घ नि:श्वास बनकर उठ रही थीं।

दरवाजे पर दस्तक सुनाई दी तो मेनोन सोने का नाटक करते हुए पड़े रहे। चादर के कोने से उन्होंने चुपचाप आंखें पोंछ डालीं।

दरवाजा खोलकर सती ने अंदर आकर पुकारा। नींद से जागने का नाटक किया मेनोन ने।

"क्या मैं मंदिर हो आऊं ?"

"हां, हो आओ न।"

"सुकु जाग जाये तो जरा........."

'मैं उसका ख्याल रखूंगा', यह कहने की हिम्मत मेनोन की नहीं हुई।

उन्होंने अपना मुंह घुमा लिया और सिर हिलाते हुए सिर्फ 'हूं' कहा।

नौ

बचपन से ही अनूप के मन में यह विचार जम गया था कि चाहे जितना भी पोंछ लो, नहाने के बाद थोड़ा पानी कान में जरूर रह जाता है। गुसलखाने से बाहर निकलते समय कान में सुरसुराहट का अनुभव हुआ। कंधे पर पड़े तौलिये के एक छोर को पकड़कर उसकी बत्ती बनाई और कान में डाल कर घुमा दी।

कमरे में ड्रेसिंग टेबल के सामने एक छोटे से स्टूल पर सलीके से इस्त्री किये और तहाकर रखे बनियान, जांघिया, जुराब, रूमाल इत्यादि को अनूप ने देखा।

लक्ष्मीबाई कपड़ों को कायदे से अलमारी में रख देती है, मगर इस तरह छांटकर नहीं रखती। मां भी इस तरह नहीं रखती।

दूसरी तरफ पलंग के ऊपर कमीज और पैंट हैंगर पर टंगे हुए थे। जुराब और रूमाल के रंग तकरीबन मेल खा रहे थे। आसमानी रंग की कमीज, जिस पर गेहूं की सफेद बालियों का प्रिंट बना हुआ था, कई दिनों से पहनी नहीं गयी थी। कारण, उसके दो बटन टूट गये थे। अपना शक मिटाने के लिए उसने कमीज का छोर पकड़कर देखा। बटन लगाकर उसे ठीक कर दिया गया था।

आइने में स्वयं को देखकर अनूप मुस्कुराये बिना नहीं रह सका। मन ही मन एक गीत गुनगुनाते हुए कपड़े पहने और बाल संवारकर कमरे से बाहर कदम रखा।

खाने की मेज पर न जाने क्या क्या ढककर रखा हुआ था। रसोईघर में झांककर देखा। एक कोने में बैठ लक्ष्मीबाई नाश्ता कर रही थी।

किसको ढूंढ़ा जा रहा है, यह पता चलने पर बाई ने कहा, "मेम साहब दूसरी तरफ हैं।"

उसे 'मेम साहब' बहुत अच्छी लगती थी, यह उसके चेहरे से स्पष्ट था। मां उसे खास पसंद नहीं आयी थी। इसका एकमात्र कारण यह था कि मां को उसकी सफाई में कमी नजर आती थी।

बाई का नियम यह था कि वह भोर में आती और सांझ ढलने पर वापस चली जाती। मां जब पहली बार आयी थी, उसके दूसरे दिन बाई आयी। मां इशारा करती हुई उसे गुसलखाने के सामने ले गयी। बाई ने सोचा, शायद गुसलखाने में कुछ काम है। मां उसे स्नान कराने पर तुली हुई थी। मां से जब रहा नहीं गया तो उन्होंने उसे सिर पर पानी डालने, शरीर पर साबुन लगाने और फिर पानी डालकर साफ करने को कहा। यह भी कहा था, 'रोज सवेरे नहाना चाहिए। उसके बाद ही कोई काम करना चाहिए। सफाई होनी चाहिए......... ।'

बाई दुख और नाराजगी व्यक्त करने लगी। मां जोर जोर से कह रही थी, 'रोने-धोने से कोई फायदा नहीं। नहाकर ही आया करो।'

उस दिन से बाई को मां खास अच्छी नहीं लगती थी। मगर वह नियमित रूप से स्नान करके आने लगी। यही मां की जीत हुई।

सती के स्नेह और सहानुभूति ने बाई को बहुत जल्दी वश में कर लिया था। अपने व्यक्तित्व को दूसरों पर थोपे बगैर, उनके बहुत करीबी हो जाने में सती बहुत चतुर थी। यह अनायास ही हो जाता था। उसके व्यक्तित्व में नुकीले और पैने हिस्से नहीं थे।

पैरों की आहट सुनकर सती ने कहा, "आप बैठ जाइए। मेज पर सब कुछ रखा हुआ है। मैं अभी आ रही हूं।"

मेज के सामने अनूप बैठ गया। ढके हुए खाने को खोलकर भी नहीं देखा। सती के आने की प्रतीक्षा करता रहा।

कुछ समय के बाद भी जब कोई नहीं आया तो अनूप उठ खड़ा हुआ और जिधर से आवाज़ आ रही थी, उस ओर चल दिया।

सती सुकु के दांत साफ करा रही थी। टूथपेस्ट का झाग उसके सारे मुख पर फैला हुआ था। मुंह पर लगे पेस्ट और झाग को खाना उसका रोज का कार्यक्रम था। दोनों वाशबेसिन के सामने झुककर खड़े थे। सुकु सती से ज्यादा लंबा और हृष्ट-पुष्ट था। उसके सिर को झुकाकर और दाएं हाथ में ब्रुश लेकर सती उसके दांत साफ करा रही थी।

अनूप पास ही खड़ा उसे देख रहा है, यह सती जान नहीं पाई।

सती उसको जीभ बाहर निकालने के लिए प्रेरित कर रही थी। सती उसे अपनी नकल करने को कह रही थी, "आ......आ...... जीभ निकालो........ आ...... ।"

सुकु ने अनूप को पहले देखा और उसके चेहरे पर भय छा गया। इसी भय ने सती का ध्यान अनूप की ओर आकृष्ट किया।

वह तौलिये के छोर से सुकु का मुंह पोंछ रही थी। तौलिया उसके कंधे पर पड़ा हुआ था।

"तुम सुकु को इधर ले आओ।" अनूप ने निर्देश दिया।

"नहीं, अनियेट्टा! आपको देखकर सुकु कुछ भी नहीं खायेगा। फिर आपको दफ्तर जाने में देर हो जायेगी।"

"अभी काफी समय है।"

"अनियेट्टा! आप खाना शुरू करें। वही ठीक रहेगा। मैं आकर चाय बना देती हूं।"

नाश्ता करने बैठा अनूप चिंतामग्न हो गया। बकाय और नारियल से बनायी गयी गाढ़ी चटनी, जो उसे बहुत प्रिय थी, मेज पर रखी थी।

चाय की केतली पर ढकी ऊनी टीकोजी को हटाकर चाय बनाते हुए सती ने पूछा, "न जाने ऐसा क्या सोच-विचार कर रहे हैं ? खाते-पीते भी क्या इन चिंताओं का होना आवश्यक है ?"

सती की ओर देखे बिना अनूप ने कहा, "मुझे कुछ समझ में नहीं आ रहा है।" दो और दो चार पढ़ानेवाली एक अच्छी अध्यापिका की तरह सती चाय में एक चम्मच चीनी और डालते हुए

बोली, "मेरे कोई भाई नहीं है और न आपकी कोई बहन। फिर कैसे समझ में आयेगा?"

चाय पीये बगैर ही अनूप उठ खड़ा हुआ। फिर 'चाय' कहकर याद दिलाये जाने पर ही उसने खड़े खड़े चाय पी।

मामाजी को उसने आंगन में टहलते देखा। ऐसा वे प्रायः करते नहीं थे। फिर उसने उन्हें पोर्च से कार स्टार्ट कर लाने से पहले दो बार घड़ी की ओर देखते हुए देखा।

कार के इंजन के स्टार्ट होते ही मामाजी एकदम रुक गये। उन्होंने पीछे मुड़कर देखा। फिर एकदम अपनी नजरें वापस खींचकर चहलकदमी शुरू कर दी।

कार के दूर जाने की आवाज सती ने खाने की मेज के पास खड़े खड़े ही सुन ली। जब यह पक्का हो गया कि अब उसे देखनेवाला कोई नहीं है, तो उसने अपने को छलकने दिया।

काल और स्थान के बहाव में न जाने क्या रुकावट आ गयी कि सती को रसोईघर से बाहर आयी बाई के आने का पता नहीं चला।

"मेम साहब!" बाई ने पुकारा।

सती चौंक पड़ी। उसने अपने आंसू पोंछे। उसका रोना किसी ने देख लिया है, यह सोचकर शर्मिंदा भी हुई। ऐसा लगा मानो किसी ने उसे नग्न अवस्था में देख लिया हो।

बाई सोच रही थी कि सती अपने भाई को लेकर रो रही है। बड़े ध्यान से, दिल को छूते हुए बाई सहानुभूति प्रकट कर रही थी। उसने कहा, "ऊपरवाला सब ठीक करेगा। रोओ मत। वो सब जानता है।" (यह वार्तालाप हिंदी में था।) अर्थात सब कुछ जाननेवाले भगवान सब ठीक करेंगे, इसलिए उसे रोना नहीं चाहिए।

सती को पूरी बात समझ में नहीं आयी। हाथ के इशारों से उसे लगा कि छत पर बैठे किसी के बारे में कुछ कह रही है बाई। मगर उसके स्वर और भाव-भंगिमा से प्रतीत हुआ कि भगवान के बारे में है।

एक खुश्क हंसी हंसते हुए सती ने इडली और बिना मिर्चीवाली चटनी एक प्लेट में डाली और चल दी।

तभी उसे याद आया कि पिताजी ने अब तक कुछ नहीं खाया है। सामनेवाले दरवाजे के पास जाकर आवाज लगाई, "पिताजी, आइए।"

एक बार फिर जोर से पुकारना पड़ा। शायद पिताजी ने सुना नहीं था। फिर जो जवाब आया, वह इस प्रकार था, "आज उपवास करने का इरादा है।"

इडली तोड़कर सुकु के मुंह में डालते हुए सती का दिल बहुत दुखी था, 'कुछ भी समझ में नहीं आ रहा। एक आदमी एक तरह का है, दूसरा किसी और तरह का। तीसरे का ढंग यह है।'

अपना ऐसा मन न होता तो ही अच्छा होता, सती को यह लगने लगा था। अगर समझने की शक्ति न हो तो इस मन का क्या लाभ ?

कई बार पुकारने पर भी खाना खाने न आनेवाले से ज्यादा अच्छा तो यह सुकु है, जिसे जो चाहे दे दो, मुंह खोलकर निगल जाता है और कुछ न देने पर मांगता भी नहीं!

तश्तरी की इडली खत्म होने के पहले ही सुकु 'मां, मां' कहकर पुकारने लगा। उसने लघुशंका की है, उसके इस लक्षण को सती खूब पहचानती थी। सती को मालूम था कि वह पेशाब करेगा। इसीलिए उसे उसने पलंग के किनारे पर बिठाया था। सवेरे नित्यक्रिया के बाद ही उसने सुकु के दांत साफ करवाये थे, फिर भी ऐसा होगा, इसका ज्ञान सती को था।

तश्तरी नीचे रखकर सती ने सुकु के कपड़े बदल डाले। उसकी नग्नता सती को एक छोटे बच्चे की नग्नता लगती है। शर्म या घृणा नहीं। पांच-छह बच्चों को जनने और इनका दुख-भार उठाने के बाद पेट और मन से शिथिल हो उठी एक मां जैसे भाव थे सती में।

हाथ धोकर सती ने सुकु को फिर से इडली खिलायी। पानी और हॉर्लिक्स भी पिलाया।

अपने दांत साफ किये बिना ही सती इन कामों में लग गयी थी। अब उसने सुकु का कमरा बंद करके स्नान के लिए जाने का निश्चय किया। सुकु का सबसे प्रिय और मजबूत खिलौना था ऊनी कपड़े से बना और मोतियों टंकी आंखोंवाला एक भालू। घर से आते हुए सती उसे अपने साथ लेकर आयी थी। उस भालू को सामने रख देने पर सुकु एक-डेढ़ घंटा आराम से—बिना किसी को परेशान किये— खेलता रहता था।

पर उस दिन सुकु उस भालू की ओर भी ध्यान नहीं दे रहा था। उसकी आंखों में दो तरह के विकार उभरते थे— एक खुशी और दूसरा डर। उसकी आंखों में झलकते भय ने सती को उसकी ओर आकर्षित किया। किसे देखकर सुकु इतना डर रहा है, यह जानने के लिए सती ने कमरे में चारों ओर दृष्टि घुमाई। मगर वहां कोई नहीं था।

शायद यह उसका भ्रम है, यह सोचकर सती ने सुकु का माथा सहलाया। पर इससे कोई फायदा नहीं हुआ। सती जैसे ही जाने को उद्यत हुई, वह उससे जोर से लिपट गया और 'मां.......' कहकर दयनीय स्वर में रोने लगा।

कहीं किसी चींटी, बिच्छू या कानखजूरे ने तो नहीं काटा, यह जानने के लिए उसने सुकु के सारे शरीर का निरीक्षण किया। मगर कहीं कुछ नहीं था।

सुकु को अक्सर पेट-दर्द की शिकायत रहती है। उसके लिए जो गोली दी जाती है, वो भी दे दी। मगर कोई फायदा नहीं। आखिर स्नान करने का इरादा छोड़कर सती ने उसे हृदय से लगा लिया और उसकी पीठ सहलाने लगी।

जैसे किसी भावी संकट के अहसास से भेड़-बकरियां मिमियाने लगती हैं, वैसा ही था सुकु का रुदन! फिर धीरे धीरे उसका रोना भी शांत हुआ।

तब तक करीब डेढ़ घंटा गुजर चुका था।

शांत हुए सुकु को सती ने धीरे से पलंग पर बिठाया और भालू जैसे खिलौने को सामने रख दिया। फिर वह चुपचाप कमरे से बाहर निकल गयी और बिना आवाज किये बाहर से कुंडी लगा दी।

फिर उसने झटपट स्नान किया और कपड़े बदले। एक कप कॉफी बनाकर पी। अगर आधा घंटा रसोईघर में लगा ले तो खाने का कोई जुगाड़ बन सकता है। पर पहले उसने धीरे से दरवाजा खोलकर देखा कि सुकु क्या कर रहा है।

भालू के पुतले को वह अपनी छाती से चिपकाकर लेटा हुआ था। सती को तसल्ली हुई कि वह सो रहा है और रसोईघर में चली गयी। मदद के लिए बाई थी ही, इसलिए खाना बहुत जल्दी बन गया। अनूप के पास आधुनिक चीजें थीं। ओवन, कुकर और ग्रेटर (खुरचने वाला यंत्र) आदि होने से समय बचाने में कोई मुश्किल नहीं हुई।

हाथ धोकर सती बाहर निकली। उसने अपने बाल संवारे, चेहरे को क्रीम से चमकाया और एक प्याला दूध लेकर सुकु के कमरे में गयी।

सती की पदचाप सुनते ही सुकु आनंदसूचक किलकारियां भरता था। मगर आज वह चुपचाप, बिना हिले-डुले बिस्तरे पर पडा हुआ था। भालू के पुतले को उसने कसकर अपने साथ चिपका रखा था।

पर वह सोया नहीं था। जागा हआ था। एक अकारण भय उसकी आंखों में स्पष्ट झलक रहा था।

भालू के पुतले को उससे अलग करने में सती को अत्यधिक जोर लगाना पड़ा। चीनी डाला हल्का गरम चाकलेटवाला दूध वह नियमित पीता था। मगर उसने दूध में भी आज कोई रुचि नहीं ली। सिर्फ एकटक डरी डरी नजरों से घूर रहा था।

सती ने उसे सहारा देकर उठाया और दूध पिलाने लगी। पर उसने आधा हो पीया। आधा मुंह के कोर से बहकर उसकी गोद में रखे तौलिये पर गिरा और तौलिया भीग गया।

उसे बाहर घूमने जाना बहुत पसंद था। सुविधा के लिए एक लुंगी पहना दी जाती थी। ढीली होकर गिर रही लुंगी को सती ने अच्छी तरह बांध दिया। फिर उसे हाथ पकड़कर बाहर ले जाने लगी। मगर वह वापस जाने का प्रयत्न करने लगा। हैरान होकर सती उसे जबरदस्ती खींचकर दरवाजे के बाहर ले गयी। पोर्च तक रास्ते में वह पीछे मुड़ मुड़कर देखता गया।

पोर्च पर पहुंची तो सती ने एक और अद्भुत दृश्य देखा। पिताजी आंगन में टहल रहे थे। उन्हें धूप की तेजी का भी भान नहीं था। पसीने से तर-बतर हो गये थे। सती का आना और खड़े होकर एकटक देखना उन्हें पता नहीं चला।

सती रोनी आवाज में जोर से चिल्लाई, ''पिताजी!''

आवाज सुनकर मेनोन ने टहलना बंद कर दिया और मुड़कर सती के निकट आये। बोले, ''धूप इतनी गर्म होगी, किसे पता था ?''

सती के पीछे खड़े सुकु ने एक छलांग लगाई और उससे आकर लिपट गया। पास के खंभे को अगर सती पकड़ न लेती, तो दोनों का गिरना निश्चित था।

सुकु की सती से जितनी निकटता थी, उतनी मेनोन से नहीं। फिर भी वह उनसे डरता नहीं था। मगर न जाने, आज क्यों डर रहा था।

अपने को संभालते हुए सती ने धीरे से सुकु को अपने से अलग किया। उसने देखा कि पिताजी सुकु को निर्निमेष देख रहे हैं। उनकी आंखें भर आयी थीं और सुकु उन्हें देखकर निरंतर भय से सिकुड़ा जा रहा था।

उस दिन मानो एक से बढ़कर एक अप्रत्याशित घटनाओं की झांकियां निकल रही थीं।

पिताजी ने सुकु का चेहरा अपने दोनों हाथों से ऊपर उठाया और उसे धड़ाधड़ चूमने लगे। सुकु दयनीय स्वर में रोने लगा।

सती के आश्चर्य की सीमा नहीं थी। इसका कारण था।

अपने किसी बच्चे को चूमते हुए पिताजी को उसने पहली बार देखा था।

ज्यादा प्रेम उमड़ता था तो छाती से लगाकर, सिर और पीठ पर हाथ फिराकर या गाल थपथपाकर प्यार करते थे, और वह भी कभी-कभार।

सुकु के चेहरे से हाथ हटाकर फिर पिताजी एकाएक घर के अंदर चले गये। उनके चेहरे के पसीने से सुकु का चेहरा भी नम हो गया था। रुक रुककर हांफने के कारण सुकु की छाती ऊपर-नीचे हो रही थी।

एक छोटा सा नारियल फल मिल जाता तो शायद वह खुश हो जाता। मगर यहां वह कहां मिलेगा ? जहां तक नजर जाती है, नारियल के पेड़ तक का कहीं नामोनिशान नहीं है।

सौभाग्य से, आंगन के किनारे खड़े नीम के पेड़ की छांव में काली मिट्टी में सफेद कंकड़ पड़े थे। सुकु को सती ने छांव में बिठाया और स्वयं भी उसके करीब बैठ गयी। फिर वह सफेद कंकड़ बीनने लगी। सुकु भी उसकी नकल करेगा, यह सती को मालूम था। मगर, वह बीच बीच में अपना सिर घुमाकर चारों ओर भयभीत दृष्टि से देख रहा था। उसका सिर घुमाना ऐसा लगता था, मानो चावल-दाल पीसनेवाला गोल मूसल जैसा पत्थर घूम रहा हो। (इडली-दोसा बनाने के लिए एक बड़ा गोल पत्थर होता है जिसके बीच में एक बड़ा सा गड्ढा होता है। इस गड्ढे में चावल और उड़द की दाल हाथ से घुमाते हुए एक हाथ से चावल-दाल को गड्ढे की तरफ सरकाते रहते हैं। इस तरह चावल-दाल पिसता है।)

अनूप को खाना परोसकर सुकु को खाना खिलायेगी, ऐसा सोचकर सती ने डेढ़ बजे तक उसका इंतजार किया। लेकिन अनूप नहीं आया। सुकु को अंदर ले जाकर उसने खाना खिलाना शुरू ही किया था कि पोर्च में कार के आने की आवाज सुनाई दी। आज हर काम उल्टा ही हो रहा है, यह सोचते हुए अनूप की पदचाप सुनकर सती ने जोर से कहा, "भूखे मत रहना। आज पिताजी का व्रत है।" पर अनूप के आने का पता लगते ही पिताजी नीचे आ गये। फिर दोनों खाने की मेज पर आमने-सामने जा बैठे। पिताजी ने कुछ नहीं खाया। अनूप खुद परोसकर खाने लगा।

इस बीच एक हाथ चावल से सना और दूसरे हाथ में थाली संभाले सती ने पूछा, "किसी और चीज की जरूरत तो नहीं है ?"

अनूप ने सिर हिलाकर जताया कि और कुछ नहीं चाहिए। फिर अपना सिर उठाये बगैर कहा, "तुम खाना अनी को खाना खिलाओ। मैं खुद खा लूंगा।"

सती को महसूस हुआ कि अनूप के शब्दों में नाराजगी झलक रही है। इस विचार ने सती के मन को बहुत ठेस पहुंचायी। मन ही मन उसने कहा, 'कितनी सही थी मेरी धारणा। ये सब बातें किसी को भी पसंद नहीं आयेंगी। अनियेट्टन को भी नहीं।' और उमड़ आये दीर्घ नि:श्वास को दबाकर वह सुकु के पास वापस चली गयी।

जाते जाते उसने पिताजी को अनूप से पूछते सुना, "दफ्तर की क्या खबर है ?"

"मैं छुट्टी पर था न! कई जरूरी फाइलों का ढेर लगा हुआ है।"

यह सुनकर सती को लगा कि बेकार ही उसे यह भ्रम हुआ कि अनूप उससे नाराज है। सुकु को शेष खाना खिलाते हुए भी खाने के कमरे में हो रहा वार्तालाप सती को पूरी तरह सुनाई दे रहा था।

एकाएक, बगैर किसी मतलब के, वार्तालाप से कोई भी संबंध न रखनेवाली बात पिताजी ने पूछी, "यहां श्मशान किस ओर है ?" अनियेट्टन ने हंसते हुए कहा, "अरे! इस समय यह बात पूछने की क्या जरूरत आ पड़ी ?"

मेनोन भी हंसकर बोले, "अच्छा बताओ, फिर मैं तुम से कब पूछूंगा। मरने के बाद क्या मैं तुमसे ऐसी बात पूछ सकता हूं ?"

उनकी हंसी स्वाभाविक नहीं थी— उनकी अपनी, चिरपरिचित हंसी। उसमें एक अपूर्णता सी थी, मानो एक ऐसा फूल जो दो-तीन पंखुड़ियों के बगैर खिला हो।

थोड़ी देर के बाद पिताजी ने पुनः प्रश्न किया, "यहां कहीं बिजली से मिनटों में भस्म करने का भी तो कुछ इंतजाम है न ? ऐसा मैंने सुन रखा है।"

"इलेक्ट्रिक क्रिमेटोरियम ?"

"हां, वही।"

"हां, वो तो है।"

फिर थोड़ी देर बाद मानो अपने आप से कह रहे हों, "यह भी अच्छी बात है।"

फिर पिताजी ने पूछा कि उनके क्वार्टर के पास कोई दुकान है ?

हामी भरते हुए अनूप ने उन्हें दुकान का रास्ता बता दिया। फिर उसने पूछा, "आप क्या खरीदना चाहते हैं, मामाजी ? बताइए, मैं ले आता हूं।"

"अरे, खरीदना क्या है! मैं तो यों ही पूछ रहा था।"

पिताजी दुकान के बारे में क्यों पूछताछ कर रहे हैं, यह सती शाम को ही जान सकी। अकेले टहलने निकले पिताजी सुकु के लिए चाकलेट लेकर ही वापस लौटे।

कार की पिछली सीट पर बंधी रखी फाइलें उठाकर अनूप घर में चला गया। उसके कुछ ही मिनट बाद पिताजी ने घर में प्रवेश किया। फाइलों को अपने कमरे में ले जाकर अनूप उनमें मगन हो गया। सती ने चाय बनाई और उसके कमरे में पहुंचा दी। जब वह वापस आ रही थी तो मेनोन वहां आ पहुंचे।

फिर वे सीधे सुकु के कमरे की ओर बढ़ गये और उन्होंने सुकु की ओर चाकलेट बढ़ायी। भय उसके चहरे पर तब भी नाच रहा था। पिताजी के दूसरे हाथ में कानून की एक नयी किताब थी, जो उन्होंने खरीदी थी।

चाकलेटे लेने के लिए सुकु ने अपना हाथ नहीं बढ़ाया। पिताजी ने चाकलेट के ऊपर लगे रंगीन कागज को हटाया और एक टुकड़ा उसके मुंह में डाल दिया। मुंह की ओर हाथ उठाने पर उसने अपना मुंह खोल दिया था।

साथ में गयी सती को बचा हुआ चाकलेट सौंपकर 'उसे खिला देना' कहते हुए मेनोन वहां से चले गये।

सुकु नियमित रूप से शाम को सोता था। लेकिन आज वह समय बीत जाने पर भी नहीं सोया।

कमरे के दूसरी ओर आंगन में बैठे मेनोन के पास जाकर सती ने कहा, "आज सुकु में सोने के लक्षण नहीं दिखाई दे रहे।"

कानून की किताब के पन्ने पलट रहे मेनोन ने जरा सोच-विचारकर, बिना सिर उठाये कहा, "उसे नींद की गोली दे दो।"

सती सुकु को सुलाने के लिए अक्सर नींद की जो दवाई देती थी, वह उसने दी। लोरी गाकर सुलाने की भी कोशिश की।

ऐसा लगा, मानो वह आंख बंद करने से डर रहा हो।

आखिर अस्त होते सूर्य की आखिरी किरणें डूबने पर उसकी आंखें अपने आप बंद हो गईं।

छाती तक चादर ओढ़ाकर सती कमरे से बाहर निकली और उसने धीरे से दरवाजा भेड़ दिया।

जिस दिन दवाई देकर सुकु को सुलाया जाता था, उस दिन उसे दुबारा जगाकर खाना नहीं खिलाया जाता था। जागने पर कुछ पेय दिया जाता था।

रात को वह चाहे सोया हो या जागा हो, उससे लिपटकर सोना पड़ता था। बिस्तर भिगोने पर उसे बदलना पड़ता था। रोने लगे तो कुछ खिलाना भी पड़ता था।

शांत चित्त होकर सती ने रसोईघर में प्रवेश किया। बाई को विदा करके सती ने रसोईघर का काम निबटाया। जाकर देखा तो पिताजी को पढ़ते पाया। ऊपर जाकर देखा तो अनूप फाइलों में मुंह घुसाये बैठा था।

बैठक में गयी तो पिताजी ने उसे प्रश्नसूचक दृष्टि से देखा।

सती ने कहा, "कोई बात नहीं है। मैं जरा स्नान करके आती हूं।"

स्नानकर वापस आने पर भी सती ने पिताजी को पढ़ते हुए पाया। सिर उठाकर भी उन्होंने नहीं देखा।

फिर उसने सुकु के कमरे का दरवाजा खोलकर झांका।

सती को लगा, वह गहरी नींद में सो रहा है। उसने धीरे से दरवाजा बंद कर दिया।

सती को यह पता नहीं था कि आज वह ऐसी नींद में चला गया है, जिससे फिर कभी नहीं जागेगा! चिरनिद्रा में लीन हो गया था वह...... और इस बात का ज्ञान इस समय सिर्फ उसके पिताजी को ही था।

दस

सुकु के कमरे में अंधेरा था। सती वहां चुपचाप बैठी हुई थी। करने के लिए उसके पास कोई काम नहीं था। सही वक्त पर अनियेट्टन को खाना परोसना होगा। फिर कुछ खाना भी है। थरमस में पानी डालकर और बदलनेवाली चादरें लेकर सती सुकु के कमरे में चली गयी। फिर भोर होने तक उसी कमरे में बैठे रहना उसकी रोज की दिनचर्या थी।

नीचे गिरने के डर से सती रात में सुकु को पलंग पर नहीं सुलाती थी। एक-दो बार ऐसा हुआ भी था। सुकु पलंग से नीचे गिर गया था। तब से यह एक नियम सा बन गया था। जमीन पर बिस्तर बिछाकर उस पर लिटा दिया जाता।

शाम की नींद के लिए कभी जमीन पर और कभी पलंग पर सुलाया जाता था। मगर दवाई देकर सांझ को सुलाना होता तो पहले से ही फर्श पर बिस्तर लगाकर लिटा दिया जाता था।

पलंग से नीचे गिरने लगे तो सती की पकड़ में नहीं आता था सुकु। उठाये नहीं उठता था। उस दिन भी सुकु को नीचे लिटाया हुआ था। बुनी हुई खाट पर, मद्धिम रोशनी में सती बैठी हुई थी। अपने बालों को धीरे धीरे अलसाये हाथों से सुलझा रही थी।

बत्ती जलाने से कहीं सुकु की नींद न उचट जाये, इसका भी डर था उसे।

खिड़की के पर्दे से छनकर आती फीकी चांदनी और दरवाजे की दरार से अंदर झांकती हुई बाहर की रोशनी ही कमरे में विद्यमान थी। इस रोशनी में बिछौने पर लेटा सुकु स्पष्ट दिखाई दे रहा था। पहचानने में कोई परेशानी नहीं हुई— खासकर जब आंखें मद्धिम रोशनी की आदी हो गयीं।

अनियेट्टन को अधिक परेशान किये बिना स्वदेश (केरल) जाना ही ठीक होगा, ऐसा सती ने तय कर लिया था। पिताजी को आराम से ठीक समय आने पर बता देने का निर्णय भी उसने कर लिया था।

यहां नगर-दर्शन या सैर-सपाटे के लिए तो आये नहीं थे। बीमारी की जांच-पड़ताल के लिए आये थे। वो तो हो चुका। अब और किसी निरीक्षण-परीक्षण की जरूरत नहीं है, यह भी स्पष्ट हो चुका है।

बड़ी आशाएं लेकर घर से चले भी नहीं थे। दूसरों को जितना विश्वास था, उससे भी कहीं कम सती को था। इस बात को वह स्वीकारती भी थी। अत्यधिक निराशावादी होने के कारण ऐसा नहीं था, बल्कि शायद बड़ी बड़ी आशाएं बांधने के बाद भारी निराशा से थक गयी थी वह। यह भी हो सकता है कि सुकु को बहुत करीब से जानने के कारण वह सुकु की बीमारी की गहराई को दूसरों की अपेक्षा ज्यादा अच्छी तरह समझ पाई थी। दोनों कारणों का जैसे गठबंधन हो गया था।

इस बात का हिसाब नहीं है कि मन में कितनी बड़ी आशाएं थीं। कितनी बार सपना देखा था, इसका भी कोई हिसाब नहीं था। बड़े करीने से अच्छे कपड़े पहने, चुलबुले और बातूनी, नटखट नजरों से देखने और जमीन से कुछ ऊपर उठकर चलने-फिरनेवाले, यानी थोड़ा अकड़कर चलनेवाले उसके हमउम्र लड़कों को देखकर दिल टीस उठता था।

सपने में सुकु इसी रूप में आंखों के सामने आता था। 'दीदी' कहकर सती को उसने कभी पुकारा नहीं था, मगर यह पुकार कानों में गूंजती जरूर थी। हर रात देखा गया यह सपना कल सुबह उठने पर बदला हुआ होगा, और साथ ही सुकु के चेहरे के भाव भी बदले हुए होंगे, यह सती ने कभी नहीं सोचा होगा।

दूसरे बच्चों के व्यवहार से तुलना करने के कारण सती को शुरू से ही सुकु की बीमारी की गंभीरता का अहसास हो गया था और यह फर्क दिन-प्रतिदिन बढ़ता ही गया था । इसी वजह से सती को उससे अत्यधिक स्नेह भी करना पड़ा। इस बात का संदेह भी नहीं रहा कि बेसहारे वह एक दिन भी जी नहीं सकता। सुकु सयाना हो गया था। लेकिन इतना बड़ा होने पर भी स्कूल जाना तो दूर, उसे कुछ भी मालूम नहीं था। बीमारी अगर पूर्ण रूप से ठीक भी हो जाये तो भी वह दूसरों की तरह जी नहीं सकेगा। अगर थोड़ा-बहुत ठीक हुआ, तो और भी अधिक परेशानी होगी, तटस्थ भाव से सोचते हुए सती इस बात से भी डरती थी।

आज सुकु को एक और परम सौभाग्य प्राप्त हुआ है— अज्ञानता का। वह न कुछ जानता है, न समझता है। मैं नाम का एक व्यक्ति है और उसे ऐसी एक बीमारी है। इस बीमारी से मुक्त इस संसार में उसके करोड़ों-अरबों हम-उम्र लोग घूम रहे हैं, इस बात से भी वह अनभिज्ञ है। इस जानकारी से उत्पन्न होनेवाला दुख उसे परेशान भी नहीं कर रहा। इस असहनीय अवस्था में यह अज्ञानता मानो एक वरदान सिद्ध हो रही है।

सुकु अगर थोड़ा-बहुत जान पाता तो उसके मन में जो ज्वालाएं उठतीं, उनकी दाहकता के बारे में सोचकर सती सहम जाती है।

मगर इस भय के ऊपर भी एक काल्पनिक कथापात्र का उद्भव हो रहा था—सुकु यदि औरों की तरह स्वस्थ और तंदुरूस्त होता तो आज वह कैसा होता, इसका चित्र आंखों के सामने घूमने लगता।

सुकु की सेवा-शुश्रूषा करते हुए सती के मन में यह चित्र घूमता कि वह जैसा है, उसे बनाये रखने में सती का ही हाथ है। यह विचार भी उसके दुख का कारण था।

अब भी समय है। किसी तरह पूर्वजोंवाले गांव के मकान में चले जाने में ही भलाई है। अनियेट्टन के संसार में इस मंदबुद्धि मनुष्य के लिए कोई स्थान नहीं है, और होना भी नहीं चाहिए। उनकी दुनिया इस वक्त बहुत बड़ी है और आगे भी न जाने और कितनी बड़ी होगी। बचाव का एक ही मार्ग है—अनियेट्टन से दूरी।

अगर कोई भाई ही होता तो उसकी छत्रछाया में आश्रय ले लेते। उससे दूर रहते हुए भी उसकी छत्रछाया में रहने का सुरक्षा-बोध तो होता। अनियेट्टन का मां-जाया भाई या बहन नहीं है, इसलिए छोटी बहन के बारे में कल्पना भी नहीं कर सकते।

सती अगर चाहे तो ऐसी कल्पना कर सकती है और इस कल्पना के दायरे में रहने की कोशिश भी कर रही है।

परंतु , जैसे जैसे दिन बीतते जा रहे हैं, निकटता बढ़ती ही जा रही थी। अनूप की जरूरतों को पूरा न करने की इजाजत भी मन नहीं देता। उसकी जरूरतों को पूरा करने में जो आनंद का अनुभव होता है, उसका वर्णन भी नहीं किया जा सकता।

किंतु, जिस अर्थ में सती इन तमाम बातों पर सोच-विचार कर रही है, उसे अनियेट्टन नहीं समझ पायेंगे। इसमें उन्हें लक्ष्य की पवित्रता नजर नहीं आयेगी। संभव है, उसका विपरीत अर्थ ले लें। यह ही होगा, जैसे साफ करने के लिए धोबी को दिये कपड़े में दाग लग जाये। आत्मीयता प्रकट करके सुकु उनके गले मढ़ा जा रहा है, ऐसा यदि उन्हें लगा तो फिर अपना जीवन बरबाद हो जायेगा। पत्नी बन जाने के बाद आज नहीं तो कल, अनूप के मन में यह विचार उत्पन्न होना स्वाभाविक है। सुकु के लिए खर्च किया गया समय, स्नेह और देखभाल उनके हिस्से से ही अपहृत हुआ है, ऐसा उनके मन में जरूर आयेगा। ऐसी नाराजगी की झलक अब भी उसे कई बार मिल चुकी है।

सुकु को स्थाई रूप से किसी संस्था में रख देने का विचार इतने बरसों में पिताजी के मन में पहले कभी नहीं उठा था। क्या इस विचार के पीछे अनियेट्टन का कोई हाथ नहीं है ? यह प्रश्न सती अपने आप से कई बार पूछ चुकी थी। आज भी वह इसी प्रश्न को अपने मन में दोहरा रही थी।

स्नेहपूर्ण होने पर भी पुरुषों की बुद्धि न जाने कब किस दिशा में मुड़ जाये, यह कहना बहुत कठिन है।

सुकु को कहीं और रख देने के विचार को अंकुरित होते ही उसने जड़ से उखाड़ दिया है, यह सोचकर सती ने एक दीर्घ नि:श्वास लिया। ऐसा कोई दूसरा विचार दिमाग में उभरे, उससे पहले ही यहां से भाग जाने में भलाई है।

सीढ़ियों पर किसी की पदचाप सुनकर सती उठी। आहट किये बँगैर दरवाजा खोला, कमरे से बाहर निकली और दरवाजा बंद कर दिया।

दालान में जाकर देखा तो पिताजी वहां नहीं थे।

अचानक भोजन-कक्ष आलोकित हो उठा। सती उस दिशा में चल दी। अनूप वाशबेसिन में हाथ-मुंह धो रहा था।

''क्या तुम मेरा इंतजार कर रही थीं ?''

''मैं तो सुकु के पास थी।''

''क्या वो उठा नहीं ? क्या तुमने उसे खाना खिला दिया ?''

''नींद की गोली खिलाई थी।''

''और पिताजी ?....... अच्छा, अच्छा। आज तो उनका उपवास है। मैं तो भूल ही गया था।''

तभी सती को याद आया कि पिताजी को दवा नहीं दी है। उसने सोचा कि अनियेट्टन को

खाना खिलाने के बाद पिताजी को दवा दे दूंगी।

भारी भूख लगने के कारण अनूप बहुत रुचि से खाना खा रहा था। इस दृश्य को सती बड़ी प्रसन्नता और ध्यान से देख रही थी।

''बैठो न ? अगर हम दोनों एक साथ बैठकर खाना खायें, तो कैसा हो ?''

''नहीं, आप खा लें तो फिर मैं खा लूंगी।''

जूठे हाथ धोकर अपने कमरे की ओर गया अनूप एक सिगरेट जलाता हुआ वापस भोजन-कक्ष में आ गया। उस समय सती भोजन करने की रस्म निभा रही थी!

''सती, तुम्हें खाते हुए देखना चाहता था, इसलिए वापस आ गया।''

''क्या आपका काम खत्म हो गया ?''

''हां, किसी तरह पूरा कर लिया है।''

सती ने जैसे-तैसे खाना खाया। यह दृश्य देखकर अनूप ने पूछा, ''तो तुमने खाना खाने की रस्म अदा कर ली ? तुम्हारा हर अपना काम मानो एक रस्म हो गया है।''

सती का उत्तर मात्र एक मधुर मुस्कान थी, मानो ये सब तो साधारण बातें हैं।

अनूप को याद आया, उसकी मां अक्सर सती के बारे में कहती थी— 'बेचारी लड़की! बिल्कुल आधी हो गयी है। उसकी उम्र तो घूमने-फिरने और खाने-पीने की है। पर क्या हालत बना रखी है!'

बर्तन उठाकर सती रसोईघर में चली गयी। रसोईघर में सिंकवाले नलके के खुलने और पानी के बहने की आवाज सुनाई दी।

सिगरेट का टोंटा निशाना चूके बगैर खिड़की से बाहर फेंककर अनूप ऊपर कमरे में चला गया। कभी कभी अनूप अपने भाग्य की परीक्षा लेता था। खिड़की के सींखचों से टकराकर सिगरेट का टुकड़ा वापस आ जाये तो समझो दुर्भाग्य, सीधे बाहर चला जाये तो सौभाग्य!

सिगरेट पीने को लेकर मां व्यंग्य में कहती, 'मां के प्यारे बेटे, जितना जी चाहे सिगरेट फूंक।'

दवा खाई कि नहीं, यह जानने के लिए सती जब पिताजी के कमरे में गयी तो वे उसी तरह पढ़ने में मग्न थे। पदचाप सुनकर चौंक पड़े।

कुछ घबराये हुए स्वर में बोले, ''क्यों, क्या बात है ?''

''क्या आपने दवा खा ली ?''

किताब से नजर उठाये बगैर बोले, ''हां, खा ली है।''

सती मुड़कर जाने लगी तो फिर बोले, ''जीरेवाला पानी चाहिए।''

एक गिलास पानी सती ने ले जाकर दिया। उन्होंने पी लिया।

''थोड़ा पानी और चाहिए।''

खाली गिलास लेकर वापस जाते समय सती कुछ चिंतित थी। वह सोच रही थी, 'पिताजी कहते हैं कि दवा ले ली है। मगर उन्हें तो ये भी नहीं मालूम कि दवाई कहां रखी हुई है! फिर उन्होंने कैसे खाई ? उन्हें जरूर कुछ भुलावा हुआ है, इसलिए ऐसा कह रहे हैं। सती ने अपने

सूटकेस के एक खाने में पिताजी की दवाइयां रखी हुई थीं।

दो तरह की एक-एक गोली निकाली और एक गिलास में थोड़ा पानी लेकर सती फिर पिताजी के कमरे में गयी। बोली, ''दवा!''

तब मेनोन ने वह दवा ली और खा ली।

पिताजी नियमित रूप से दवा खाते हैं। मगर आज उन्हें क्या हो गया, सती को हैरानी हो रही थी। ऐसी कौन सी किताब है जो पिताजी इतनी तन्मयता से पढ़ रहे हैं। सती ने पिताजी के दवा खाते समय झुककर पुस्तक का नाम पढ़ा। नाम था—विवादास्पद अदालती फैसले। यह एक पत्रिका थी और यह उसका नया अंक था।

रसोईघर का किवाड़ बंदकर, हाथ में थरमस फ्लास्क लेकर सती सुकु के कमरे में गयी। अंदर से उसने दरवाजा हल्के से भेड़ दिया। फिर अपने बाल इकट्ठाकर बांधे और सोने की तैयारी में जुट गयी। एक खेस सुकु के बिछौने के बगल में बिछा दिया। उस पर एक तकिया रख दिया।

सुकु का बिस्तर गीला तो नहीं है, हाथ से टटोलकर देखा। नहीं, गीला नहीं है। फिर लंबी होकर लेट गयी। बहुत ज्यादा थकावट का अनुभव हो रहा था। ऐसा प्रतीत हुआ कि कोई भिड़े दरवाजे को हल्के से खोलकर झांक रहा है। फिर खुला दरवाजा धीरे से बंद भी हो गया।

''कौन है ?'' सती ने पूछा।

बाहर पिताजी थे। बोले, ''मैं हूं।''

''क्यों, क्या हुआ ?'' ऐसा पूछते हुए सती उठने की तैयारी करने लगी।

''कुछ नहीं। ऐसे ही।'' पिताजी ने कहा और दरवाजा फिर बंद हो गया।

सुकु की एक खास गति, एक नियमित ताल-क्रम सुनाई न देने से सती को हैरानी हो रही थी। इसलिए निद्रा देवी की बांहों में फिसलते हुए भी सती एकाएक उठ बैठी। उसने बत्ती जलाई।

सुकु निश्चेष्ट, मृत पड़ा हुआ था! उसकी सूजी हुई जबान बाहर निकली हुई थी और आंखें शून्य में घूर रही थीं! छोटी नन्हीं चींटियों की एक कतार का मुंह के अंदर जाना-आना हो रहा था!

बिना रोये, चीखे या चिल्लाये मूर्तिवत् निश्चल खड़ी रह गयी सती।

अपनी पूरी इच्छा-शक्ति के बावजूद उसका एक भी अंग हिलने को तैयार नहीं हुआ। पिताजी को बुलाना चाहा, तो गला रुंध गया। आंखों के सामने जो दृश्य था, उससे परे वह लाख कोशिश करने पर भी सोच नहीं पा रही थी। तन और मन के मर्मस्थल को जैसे किसी हाथ ने दबोच लिया था।

कब तक वह इस प्रकार खड़ी रही, इसका भी ज्ञान नहीं रहा। अंततः सबसे पहले उसे उसकी आवाज ही वापस मिली, जो बहुत कमजोर थी—

''पिताजी!''

सती को ऐसा लगा जैसे यह आवाज उसके कंठ से नहीं, बल्कि कहीं दूर से आ रही है।

कानों में सांय सांय हो रही थी। पैर उखड़ते जा रहे थे।

सुन्न हुए शरीर की निष्क्रियता से वह ऐसे मुक्त हुई, जैसे ईंट की ढेरी टूटकर ढह जाती है और नीचे गिरती चली जाती है। पैरों में एक तरह की कमजोरी के सिवा सती को कुछ भी पता नहीं चल रहा था। भास्कर मेनोन और अनूप आगे-पीछे कमरे में घुसे। निद्रा देवी की गोद में जाने के लिए अनूप रोज एक पुस्तक का सहारा लेता था। यह पुस्तक लिये वह अभी बिस्तर पर लेटा ही था कि सती की रुदन भरी पुकार उसे सुनाई दी। वह तो सती की आवाज ही नहीं लग रही थी। मगर 'पिताजी' कहकर पुकारा था, इसलिए यह सती की आवाज ही हो सकती है, ऐसा अनूप ने सोचा।

लेकिन भास्कर मेनोन तो अपने कक्ष में मानो इसी आवाज को सुनने के लिए कान खड़े कर टहल रहे थे।

ड्योढ़ी पार करके मामाजी के बगल से होते हुए अनूप सामने आ गया। कटे हुए पेड़ की तरह सती जमीन पर पड़ी हुई थी। ढोल की तरह बजते हृदय से अनूप ने सती को उठाकर सीधा किया। फिर उसने उसे अपनी बांहों में उठाकर बिस्तर पर लिटा दिया।

सती के चेहरे पर उत्कंठा से झुके हुए अनूप को हिलाकर मामाजी ने सुकु की ओर इशारा किया।

उसने एक नजर उस ओर डाली और फिर कमान से छूटे तीर की तरह वह कमरे से बाहर भागा। ड्राइंगरूम में रखे फोन को उठाया और कांपती हुई उंगलियों से नम्बर डायल किया। दो-तीन बार उसे डिस्कनेक्ट कर फोन मिलाना पड़ा।

"मैं हूं अनूप। सिंह जी! भाई! जल्दी आओ। प्लीज हरी अप!"

दूसरी तरफ से आते डाक्टर सिंह के शांत स्वर को सुनकर अनूप को कुछ तसल्ली हुई, "इन ए मिनट, अनूप जी! घबराओ नहीं!"

अनूप का सारा शरीर थर थर कांप रहा था। उसने दौड़कर कमरे में प्रवेश किया तो देखा, मामाजी सुकु के निकट मूर्तिवत् बैठे हुए हैं।

जल्दी से आगे बढ़कर उसने सती की नब्ज देखी। मामाजी ने धीरे से कहा, "मैं देख रहा हूं। कोई घबराने की बात नहीं है।"

ऐसा लग रहा था जैसे उनकी आवाज कहीं दूर से आ रही है। वाशबेसिन से पानी लेकर अनूप ने सती के मुंह पर छिड़का। प्राथमिक चिकित्सा के बारे में जो कुछ सीखा था, उसे याद करके उसने सती के कसकर पहने हुए कपड़ों को ढीला किया।

जिस ओर सुकु पड़ा हुआ था ओर देखने की उसकी हिम्मत नहीं हुई। मगर अनजाने और अनचाहे आंखें कभी कभी उस ओर उठ जाती थीं।

एक चादर से मामाजी ने सुकु का चेहरा ढक दिया।

यह बात बहुत ही अविश्वसनीय थी।

डाक्टर सिंह ने अपने वचन का पालन किया। दरवाजे पर लगी काल-बेल गूंजने लगी। अनूप ने दौड़कर दरवाजा खोला। डा. सिंह और उनके पीछे पीछे चमड़े की पेटी लिये एक

गोरखे ने प्रवेश किया।

अनूप और तकरीबन उसके हमउम्र डाक्टर सिंह गहरे मित्र थे। मां या अनूप के घरेलू चिकित्सक होने के अलावा वे बिन-बुलाये घर आ पहुंचनेवाले शतरंज के खिलाड़ी भी थे। इतना प्यार और अपनापन था उनमें।

उन्होंने झुककर सुकु को देखा। फिर एकदम सीधे खड़े होकर अनूप की ओर अर्थपूर्ण नजरें घुमाईं और कहा, ''आई एम अफ्रेड.......''

सती का मुआयना करते हुए दूसरों की नजरें बचाकर डा सिंह ने अनूप को आंख मारीऔर कहा, ''सब ठीक है। नो प्रोब्लम।''

सती को किसी नर्सिंग होम में ले जाना ठीक रहेगा। यह थी डा. सिंह की राय। उन्होंने कहा, ''जब आप मृतक को यहां से हटायेंगे तो एक बार फिर सती को शाक (मानसिक आघात) लगने की संभावना है।''

सती, सुकु और मामाजी के बारे में डा. सिंह को अनूप ने पहले से ही बता रखा था। चंडीगढ़वाले मस्तिष्क रोग-शल्य चिकित्सक के बारे में डा. सिंह ने ही उन्हें बताया था और उनसे मिलने की सलाह भी दी थी। सिंह दम्पति उनसे मिलने (सती और मामाजी से) अनूप के घर भी आये थे। यह उस दिन की बात है, जिस दिन अनूप केरल से दिल्ली आया था।

डाक्टर साहब ने अनूप के कंधे पर हाथ रखा, ''चलो, सती को मेरे हस्पताल ले चलते हैं। मैं मीरा को इसकी देख-भाल करने को कहूंगा। हालांकि मैं भी डाक्टर हूं, पर मीरा मुझसे भी बेहतर है!'' अनूप की ओर देखकर डा. सिंह ने फिर आंख मारी और कहा, ''नो प्रोब्लम! इस दौरान हम मृतक को सही जगह पहुंचाने का प्रबंध करेंगे। ठीक है न ?''

आंख मारकर 'नो प्रोब्लम' बोलना डा. सिंह का तकिया कलाम था। (नो प्रोब्लम विथ ए विंक) इसी नाम से उनके दोस्त उन्हें प्यार से पुकारते भी थे।

मामाजी की ओर मुड़कर डाक्टर साहब ने कहा, ''ओ. के.।''

सुकु की लाश के पैरों के निकट सिकुड़कर बैठे मामाजी ने धीरे से सिर हिलाया।

अनूप जब सती को बांहों में उठाये आंगन में पहुंचा तो डा. सिंह गाड़ी को पीछे ला रहे थे। फिर वह कूदकर गाड़ी से उतरे और सती को पिछली सीट पर लिटाने में अनूप की मदद करने लगे।

''जंप इन।'' यह कहते ही डा. सिंह ने गाड़ी स्टार्ट कर दी थी।

इस वक्त अनूप के मन में एक संशय का उदय हुआ। बोला, ''सुनो भाई, क्या हम उस वृद्ध आदमी को अकेला छोड़ दें लाश के पास? वो दिल के मरीज हैं।''

''तुम अगर मुझ पर विश्वास करके अपनी सती को मेरे जिम्मे छोड़कर जा सकते हो तो मैं इसे मीरा के हवाले करके जल्दी वापस आ जाता हूं।''

अनूप ने सती का सिर उठाकर सीधा किया, फिर क्षण भर को दरवाजा थामे दुविधाग्रस्त खड़ा रहा।

''नो प्रोब्लम!'' डा. सिंह ने फिर आंख मारी, ''दरवाजा बंद कर दो।''

अनूप का दरवाजा बंद करना और मोटर का आगे दौड़ जाना लगभग एक ही साथ हुआ।

तभी पड़ोस में रहनेवाले फुटबाल की तरह गोल-मटोल भट्टाचार्य जी मानो कुछ आसाधारण घटित होने की गंध पाकर लुढ़कते आ पहुंचे।

जरा भी चूके होते हो गाड़ी उनके शरीर से टकराकर निकल जाती।

डा. सिंह ने मजाक करते हुए कहा था, ''हटो यार! गाड़ी में जगह नहीं है!''

भट्टाचार्य जी का आना मानो एक अनुग्रह था, भगवत्कृपा थी। अनूप को कमरे में दोबारा प्रवेश करने के लिए एक साथी मिल गया।

कमरे में पहुंचकर भट्टाचार्य जी चारों ओर नजर डालकर पीछे हाथ बांधकर अपना अभिप्राय प्रकट करने लगे—''अच्छा, वो बीमार बच्चा जो था ? एक तरह से तो अच्छा ही हुआ—उसके लिए, आप के लिए और इस संसार के लिए। भगवान इसकी आत्मा को शांति दे।'' और ऊंचे स्वर में भगवान से प्रार्थना करते हुए कमरे से बाहर आ गये। उनके साथ अनूप भी बाहर आ गया।

अपने गंजे होते जा रहे सिर के अधझड़े बालों में बार बार हाथ फेरने की पचासवर्षीय भट्टाचार्य जी को आदत थी।

ठीक बीस मिनट में डा. सिंह वापस आ गये। अनूप से बोले, ''अब तुम गाड़ी लेकर हस्पताल चले जाओ। चाहो तो मामाजी को भी ले जा सकते हो। सती के पास मीरा है। सिर्फ एक शाक है, यानी मानसिक आघात। बस और कोई बात नहीं है। यहां का सब कार्य हम—भट्टाचार्य जी और मैं संभाल लेंगे।''

आवाज सुनकर मामाजी आंगन में आकर खड़े हो गये थे। बोले, ''अनूप, तुम जाओ। मैं यहां रुकूंगा।''

यह एक आदेश ही नहीं, निर्णय भी था।

सिंह जी बोले, ''सब कागजात मैं ठीक कर लेता हूं। नारियल को तोड़ना और दिया जलाने का काम भट्टाचार्य जी करेंगे। आपके रीति-रिवाज मुझे मालूम नहीं हैं। माचिस अगर चाहिए तो मेरे पास है। मैं दे दूंगा।''

एक बार उन्होंने फिर आंख मारी और कहा, ''नो प्रोब्लम!''

भोर होने पर सती ने आंखें खोलीं। वह न जाने क्या बक-झक कर रही थी, फिर उसने उल्टी भी की।

डा. मीरा ने मुस्कुराकर आंखों ही आंखों में अनूप को बताया कि घबराने की कोई बात नहीं है।

नर्स के कान में भी कुछ कहा। नर्स जो सिरिंज लेकर आयी थी, उससे सती को इंजेक्शन लगाया।

सती की पुतलियों का उलटना धीरे धीरे बंद हो गया। शांत होने पर क्रमशः उसके श्वास का क्रम भी सामान्य हो गया।

डाक्टर ने अनूप से कहा, ''आप चाहें तो घर जा सकते हैं। सती को थोड़ी देर सोने दो। अगर जरूरत होगी तो मैं आपको बुला लूंगी।''

मानो कब्रों के बीच से निकलती हुई निर्जन वीथियों से अनूप मोटर चलाकर आगे बढ़ रहा था। कनाट प्लेस में ईस्टर्न कोर्ट डाकखाने में जाकर उसने मां को तार दिया— 'सुकु का स्वर्गवास हो गया है। किसी को साथ लेकर, पहली फ्लाइट से चली आओ। निकलने से पूर्व खबर जरूर देना।'

घर पहुंचा तो सुकु की अर्थी तैयार हो चुकी थी। नहा-धोकर, धोती बांधकर एक चिर-परिचित गृह-स्वामी की तरह सारे कार्यक्रम का नियंत्रण कर रहे थे भट्टाचार्य जी।

थोड़े चिंतित स्वर में डा. सिंह ने पूछा, ''कैसी है सती ?''

अनूप ने कार की चाबी लौटाते हुए कहा, ''ठीक है।''

''हम लोगों की तैयारी पूरी है। तुम नहाकर आ जाओ।'' डा. सिंह ने आंख मारते हुए पुन: कहा, ''नो प्रोब्लम!''

मगर प्रश्नों की ही एक शुरुआत है आंखों में काटी हुई यह रात, इससे न अनूप परिचित था, न उसका डाक्टर दोस्त ही।

ग्यारह

क्रिमेटोरियम से वापस आते आते दिन के नौ बज चुके थे। फाटक पर उतरकर विदा लेते समय भट्टाचार्य जी ने उन्हें निमंत्रण दिया, ''नहा-धोकर मेरे घर आ जाइए। नाश्ता वहीं कर लेंगे।''

गोरखे ने कहा, ''दूधवाला आया था। चला गया। सारा समाचार सुनकर बाई भी वापस चली गयीं। थोड़ी देर में आने को कह गयी है। दूध लेकर रख दिया है।''

पानी में कंकड़ गिरने से जैसे तरंगें उठती हैं और धीरे धीरे शांत हो जाती हैं, उसी तरह धीरे धीरे जीवन की शांति वापस आ रही थी।

मोटरकार से उतरकर मामाजी ने ड्राइंगरूम में आकर न जाने किससे कहा, ''तो ये किस्सा भी खत्म हो गया''

रात भर जागने की थकान या कमजोरी उनमें नजर नहीं आ रही थी।

क्या जवाब दे, क्या करे, इस ऊहापोह में फंसे अनूप से थोड़ी देर बाद मामाजी ने पूछा, ''अब तो कोई परेशानी नहीं है न। कोई समस्या भी नहीं, क्यों ?''

सती की मन: सामान्य जितनी जल्दी स्थिति हो और जितनी अधिक, उतना ही अच्छा है। पर क्या ऐसा हो सकेगा, यह आशंका अनूप के मन में बार बार उठ रही थी।

''सती स्वस्थ हो जाये तो......।''

''हां, तब तक.......।''

सुकु के जाने के बाद पहली ही बार उसके मुंह से यह दीर्घ नि:श्वास निकला था।

हाथ मलते हुए बेचैनी से ड्राइंगरूम में इधर-उधर टहलते हुए मामाजी बार बार बड़बड़ा रहे थे—''हां, तब तक....... तब तक.......।''

अनूप ने नर्सिंग होम का नंबर घुमाया। एक नर्स ने रिसीवर उठाया।

सती तब भी सो रही थी। 'उसके जागने पर खबर करना', उस नर्स से यह प्रार्थना करके अनूप ने फोन रख दिया। नींद से पलकें भारी हो रही थीं। बाहर की धूप आंखों में सूई की नोंक के समान चुभ रही थी।

अब जरा स्नान करना होगा।

यद्यपि क्रियाकर्म की सारी व्यवस्था भट्टाचार्य जी ने की थी, मगर अंतिम संस्कार मामाजी ने ही किया था।

रात भर मामाजी व्यस्त रहे। कुछ न कुछ करते ही रहे। क्षण भर के लिए भी आराम नहीं किया। अनूप ने उन्हें बताया, ''सती अभी जागी नहीं है।''

''जाग जायेगी।'' यह था मेनोन का जवाब।

बेटे की मृत देह के साथ उनका व्यवहार ऐसा था, जैसे किसी बड़े-बूढ़े के मृत शरीर

के साथ किया जाता है। उतनी ही इज्जत, उतना ही मान दिया मामाजी ने सुकु की मृत देह को। बच्चे या भांजे द्वारा किये जाने वाले सब अनुष्ठान मामाजी ने खुद किये।

ड्राइंगरूम छोड़कर घर में प्रवेश करने में अनूप को अकारण भय लग रहा था। उसे लग रहा था कि अपने हाथ ऊपर उठाये, फिर उन्हें ढीला छोड़कर हांफते हुए सुकु अपनी आंखों को गोल गोल मटकाता हुआ उसके सामने खड़ा होगा!

यह सब बेकार की बातें हैं, आखिर अपने मन को धीरज बंधाकर अनूप ने घर में प्रवेश किया।

गुसलखाने का दरवाजा अंदर से बंद करके अनूप ने कपड़े उतारे और शावर को खोल दिया। सिर से नीचे गिरते हुए ठंडे पानी को उसने मुंह में भरने दिया। अनूप सोच रहा था कि सुकु का देहांत किसी के लिए भी हानिकर सिद्ध नहीं हुआ। उसके लिए भी नहीं। मगर यह सब इतनी जल्दी हो जायेगा, ऐसा उसने सपने में भी नहीं सोचा था।

सुकु की वजह से सती इतना कष्ट उठा रही थी और अनूप से दूर रहने की भरसक कोशिश भी कर रही थी। यह सोचकर सुकु के प्रति उसके मन में जो कड़वाहट आयी थी, उसके लिए अनूप का हृदय पश्चाताप से भर उठा। किसी को परेशान करना या किसी को किसी से अलग करना उसका लक्ष्य नहीं था। एक मां को निरंतर परेशान करनेवाले छोटे से बच्चे की तरह सुकु सती से व्यवहार करता था। देखने में वह चाहे जैसा प्रतीत होता हो, वास्तव में छोटा सा बालक ही था। आंखों का तारा बनकर पैदा हुआ था, पर किस्मत ऐसी रही कि सबकी आंखों में किरकिराहट पैदा करता रहा। पर अब वह किसी को भी तंग नहीं करेगा।

मन के किसी कोने में एक हूक सी उठती हुई अनूप को महसूस हो रही थी।

यह सब यहां हुआ, एक तरह से अच्छा ही हुआ। गांव में होता तो सती की चिकित्सा इतनी अच्छी तरह से नहीं हो सकती थी।

'इस तरह स्वयं को ढाढ़ंस बंधाने की कोशिश मत करो'— उसे लगा कि मन में उठती हुई एक आवाज है, जो उसे चेतावनी दे रही है।

तो कहीं सती के पास रहने की उसकी चाह ही तो मामाजी और सुकु को दिल्ली लाने के पीछे नहीं थी ? इतनी चिकित्सा के बाद एक मस्तिष्क रोग-विशेषज्ञ के देखने भर से सुकु तंदुरुस्त हो जायेगा, क्या ऐसा विश्वास उसके मन में था ? अनूप का मन ऐसे घबरा रहा था, जैसे कोई बच्चा मां के हाथ का बना पूड़ा लालच और चाहत से चोरी चोरी मुंह में डाल ले और फिर पकड़े जाने पर घबरा जाये।

चाहे जो कुछ भी हो, किसी को परेशान करने का इरादा अनूप के मन में कभी नहीं रहा। यही विचार उसे बचाव के मार्ग पर ले जा रहा था और आश्वासन भी दे रहा था।

सती उसे पसंद है, इस बात को अनूप ने कभी छिपाने की कोशिश नहीं की। उसकी निकटता के लिए मन तड़पा भी बहुत, यह भी सच है। मगर सदा सही रास्ते पर चलकर ही प्रेम पाने के बारे में सोचा उसने।

फिर भी अनूप को पूरी तरह बच निकलने का कोई मार्ग दिखाई नहीं दे रहा था। सुकु अगर

नहीं होता तो क्या ऐसा कोई साहचर्य बन सकता था, यह विचार क्या पिछले दो-तीन दिनों में कई बार अनूप के मन में नहीं उठा ?

जैसे सपेरे की नोंकदार छड़ी के चुभने पर सांप छटपटा उठता है, उसी तरह अनूप की अंतरात्मा भी छटपटा रही थी! 'सत्यानाश हो!' अनूप बड़बड़ाया। सुकु से जुदा होने के लिए सती कदाचित तैयार नहीं है, इस बात के साफ होने के बाद ही अनूप के मन में इस चिंता का उदय हुआ था। सती के प्रति उसका जो प्रेम था, वही इसका एकमात्र कारण था। अगर अनूप की जगह कोई और होता तो ऐसी इच्छा रखने के सांकल्पिक अपराध में अदालती कठघरे में पेश होने को बाध्य हो जाता।

अगर उसके मन में यह विचार होता कि सुकु उसका ही छोटा भाई है, तो क्या ऐसी बातों का उद्‌भव होता ?

ऐसा कभी नहीं होता, यह बात अनूप को माननी ही पड़ी। सती के प्रति उसका स्नेह अपूर्ण है, यह भी उसे मानना पड़ा। ऐसा न होता तो सती का अनुज उसका भी अनुज है, यह बात उसके दिमाग में आनी चाहिए थी।

यद्यपि इन सब बातों में सत्य का अंश जरूर है, मगर इसकी चिंता करने की कोई जरूरत नहीं है। अनूप अपने विचारों की धारा को मोड़ रहा था। क्या सुकु की सती जैसी ही दो और मांजाई बहनें नहीं हैं— वासंती और सुमति ? मगर उनकी सती जैसी मनोदशा क्यों नहीं हुई ? तो उसका, जिसका वह सहोदर नहीं था, ऐसा मनोभाव होना क्या जरूरी है ?

सती का मन आवश्यकता से अधिक कोमल है, इसी वजह से यह सब हुआ। मन का इतना अधिक कोमल होना भी खराब है।

पर यदि इतनी भी नर्मी न हो तो 'अपनापन' नाम के शब्द की नींव क्या होगी ? मन ने यह प्रश्न किया तो अनूप घबरा गया। जो अपने स्वार्थ को पूरी तरह भुलाकर और पीछे धकेलकर प्यार न कर सके, उसका प्रेम क्या वास्तविक है ? प्रेम का मापदंड क्या यही नहीं है ? संसार में मां का प्रेम ही ऐसा नि:स्वार्थ होता है। मां के इस रूप को अनूप ने मन ही मन प्रणाम किया।

इस के साथ ही उसके मन में दौड़कर सती के पास पहुंचने की असीम उत्कंठा जागृत हो गई।

जल्दी जल्दी अनूप कमरे से बाहर निकला। जो दृश्य उसने देखा, उससे अनूप को अत्यधिक हैरानी हुई। मामाजी सारे घर में झाड़ू-पोंछा लगा रहे थे! ज्यादातर काम खत्म हो चुका था।

''यह सब किसलिए, मामाजी ?''

जवाब देने से पूर्व मामाजी ने एक बार फिर पोंछे को बाल्टी में डुबोया और बाहर निकालकर अच्छी तरह निचोड़ा।

''सब साफ-सुथरा रहने देने के लिए ऐसा कर रहा हूं।''

''मगर बाई तो आयेगी।''

''कुछ करने की इच्छा हुई तो यही काम नजर आया।''

'' यह सब करने की कोई जरूरत नहीं थी।.... स्नान नहीं करेंगे ?''

''बस, अभी नहाकर आता हूं।'' मामाजी का स्वेद-बिंदुओं से परिपूर्ण मुखमंडल और उस पर छाई प्रसन्नता ने अनूप की हैरानी को और गहरा कर दिया।

अपने वस्त्रों को बदलते समय भी यह चित्र अनूप के मन में घूम रहा था। यह बात उसको हजम नहीं हो रही थी। एक ऐसा व्यक्ति, जिसने शायद ही अपने जीवन-काल में झाड़ू और पोंछे का दर्शन किया हो, वह घिसट घिसटकर जमीन पोंछ रहा है! पूरे घर में उन्होंने पोंछा लगा दिया था।

कोई दिमागी उलझन है, ऐसा भी कोई लक्षण नजर नहीं आ रहा था। अपने हृदय का स्नेह ही नहीं, संतोष भी वे किसी के सामने प्रकट नहीं करते थे। सुकु के मरने पर एक आंसू तक नहीं बहाया, आंखें नम तक नहीं हुईं। लेकिन हृदय को एक गहरा आघात जरूर पहुंचा होगा। मामाजी का ज्यादा ध्यान रखना होगा।

स्नान कर, कपड़े बदलकर बाहर निकले मामाजी अत्यधिक प्रसन्नचित नजर आ रहे थे।

भट्टाचार्य जी के घर पर उनका इंतजार हो रहा था।दोसा के अलावा मिठाइयां, अंडा, मछली और फल सजाकर रखे हुए थे। भट्टाचार्य जी की अद्भुत तोंद के पीछे सिर्फ एक रहस्य है— दफ्तर में लोग अक्सर मजाक करते थे— खाना-पीना। हमेशा कुछ न कुछ खाने की आदत थी उन्हें।

खाना तेल-घी से भरा है या मीठा-फीका है, इस सब की परवाह किये बिना मामाजी आज ठूंस ठूंसकर खा रहे थे।यह ठीक है कि कल वे उपवास से थे, मगर खाने के बारे में मामाजी बड़े संयमी थे।उनका कहना था कि तंदुरुस्ती के लिए खाने-पीने के प्रति जागरूकता बहुत जरूरी है।

फिर भी आज मामाजी उस तरह खा रहे थे, जैसे एक बच्चा बुखार उतरने पर नहा-धोकर आये और खाने के लोभ में चबाना भी भूल जाये, यानी उठा उठाकर निगलने लगे। ऊपर से भट्टाचार्य जी का प्रोत्साहन और आग्रह भी साथ था।

नजरों ही नजरों में अनूप मामाजी को खाने से बरज रहा था, मगर उन्होंने उसकी परवाह ही नहीं की। उस पर मुंह में खाना भरकर ऊंची आवाज में बोल भी रहे थे।

हंसने में भी उन्होंने कोई कंजूसी नहीं की।

उनके बनाये हुए व्यंजन बहुत स्वादिष्ट लग रहे हैं, शुरू शुरू में तो श्रीमती भट्टाचार्य के चेहरे पर प्रसन्नता लहरा रही थी, मगर थोड़ी देर बाद उन्हें मामाजी के व्यवहार में अस्वाभाविकता नजर आने लगी। अनूप से नजरें मिलते ही उनके चेहरे पर दुख और सहानुभूति झलक उठी।

लेकिन भट्टाचार्य जी को सही बात का ज्ञान नहीं हुआ है, ऐसा उनके रंग-ढंग से प्रतीत हो रहा था। अत्यधिक खाने और हंसनेवाले लोग उनको बहुत प्रिय थे।

खाने की मेज देखते ही मामाजी ने हंसकर कहा था, ''वाह! क्या दावत दी गयी है!'' श्रीमती भट्टाचार्य ने विनीत होकर कहा था, ''ऐसी तो कोई बात नहीं है।''

मामाजी से जोर ने ठहाका लगाया था, ''हे भगवान! इतनी चीजें जो सामने दिखाई दे रही हैं, क्या ये कम हैं ? बहुत कष्ट उठाया होगा आपने।''

भट्टाचार्य जी ने कहा था, ''अरे इसमें क्या कष्ट उठाना। यह तो यंत्रयुग है। रसोईघर तो आजकल एक छोटी-सी यंत्रशाला होती है। पुराने जमाने की तरह थोड़े ही है।''

शिष्टाचार को एक तरफ रखकर मामाजी ने लालची की तरह खाना आरंभ किया था। खाने से भरे मुंह से अस्पष्ट और अक्षर शुद्धि के बगैर बोल रहे थे, ''यंत्रों की बात कहें तो बड़ा अद्भुत लगता है। बिजली को ही देखिए। मनुष्य को मारने और भस्म कर देने में कितनी सार्थक! एक क्षण, केवल क्षण मात्र में......''

भोजन करने के बाद हाथ-मुंह धोकर मामाजी ड्राइंग रूम में बैठ गये। सती रोज जो दवाई खिलाती थी, उसके बारे में भी उनको याद आता नजर नहीं आ रहा था।

मेनोन का पूछने का ढंग निराला था, ''बढ़िया खाना खाने के बाद अच्छी तरह धूम्रपान करना अच्छी बात है न ?''

कभी-कभार धूम्रपान करने की आदत पहले थी मामाजी को। मगर हृदयरोग से पीड़ित होने के बाद उसका परित्याग कर दिया था।

अब नियंत्रण होना बहुत जरूरी है, यह समझकर अनूप ने आंखों ही आंखों से भट्टाचार्य जी को इंकार के लिए इशारा किया।

पहले तो भट्टाचार्य जी कुछ घबराये, पर जल्दी ही उन्हें बात समझ में आ गयी। भट्टाचार्य जी को उनके विभाग के कुछ मनचले 'स्विच दबाने पर कुछ देर बाद जलने वाली ट्यूबलाईट' कहकर छेड़ते थे।

मामाजी उत्सुकतापूर्वक बोलते रहे, ''सिगरेट पीने से कैंसर हो जाता है, ऐसा सुना है ? कैंसर होने से कुछ अपने पास जमा ही होता है, खर्च तो नहीं होता!''

उनकी हंसी भी आवश्यकता से कुछ अधिक ऊंची थी। जोर से हंसनेवाले भट्टाचार्य जी भी उसमें शामिल नहीं हुए। हंसने की प्रतिक्रिया मेनोन को स्पष्ट दिखाई दे रही थी, मगर उन्हें अपने व्यवहार में किसी बेतुकेपन का आभास नहीं हुआ।

''सिगरेट.......'' ऐसा कहना आरंभ करके वे तनिक रुक गये। फिर इधर-उधर ढूंढ़ने का हल्का सा नाटक करने लगे। इसमें उन्हें सफलता भी मिली।

अब इस नाटक को जारी रखना अनुचित समझकर अनूप ने बात का रुख मोड़ दिया, ''भट्टाचार्य जी, बहुत बहुत धन्यवाद! हमें तुरंत हस्पताल पहुंचना है। सती जाग गयी होगी।''

भट्टाचार्य जी को लगा कि जान बच गयी, इसलिए अनूप की बात उन्होंने झटपट मान ली, ''तो फिर देर करना ठीक नहीं है।''

'सती' शब्द का उच्चारण होते ही मामाजी भी उठ खड़े हुए, ''मैं तो भूल ही गया था। हमें जल्दी चलना चाहिए।''

अनूप ने देखा कि श्रीमती भट्टाचार्य उसे और मामाजी को बारी बारी से देख रही हैं। भट्टाचार्य जी को बलपूर्वक रोकते हुए उनके कान में कुछ कहने लगीं।

''ठीकाश्चे!'' यह जवाब तो रहस्यमय था। फिर उन्होंने घोषणा की, ''हम भी हस्पताल चल रहे हैं।''

कार में बैठने के बाद भी मामाजी के वार्तालाप और हंसी का दौर चलता ही रहा। मानो उन्हें बिना हिले-डुले चुपचाप बैठने में भयंकर कष्ट हो रहा हो। मेनोन अगली सीट पर अनूप के बगल में बैठे थे और पिछली सीट पर थे भट्टाचार्य दम्पति।

''यह दिल्ली शहर....... कितना सुंदर है!'' मामाजी कह रहे थे, ''कितनी राज-परंपराएं! कितने राजमहल, कितनी लड़ाइयां और खून-खराबा.....! वो सामने क्या दिखाई दे रहा है?''

और फिर एक अनौचित्यपूर्ण हंसी!

कनखियों से बार बार मामाजी की ओर देख रहे अनूप को ऐसा प्रतीत हो रहा था, जैसे किसी अंग्रेजी फिल्म के हास्य कलाकार का 'फास्ट मोशन' अभिनय चल रहा हो! जांघ या पीठ में गोली लगने पर मरण-पराक्रम दिखाता हुआ अभिनेता। देखते हुए हंसी आयी थी। मगर फिर वह यह सोचने लगा कि मामाजी की स्थिति की ओर डाक्टर का ध्यान आकृष्ट करना चाहिए या नहीं?

'नींद की गोली खिलाकर इन्हें थोड़ी देर सुला दिया जाये तो शायद.......

विनोद-यात्रा के लिए निकले एक छोटे बच्चे की तरह मामाजी ने फिर पूछा, ''ये क्या है ?''

भट्टाचार्य जी ने अपने आप को एक गाइड की पदवी दे दी थी। कहा, ''जंतर-मंतर।''

''जंतर-मंतर.......जंतर-मंतर..... किसकी कब्र है ?''

''यह एक पुरानी निरीक्षणशाला है।''

''किसका निरीक्षण करते हैं ?''

''नक्षत्र-निरीक्षण।''

''उतरकर देख लें क्या ?....... नहीं, रहने दो। सती को भी साथ लेकर आयेंगे, तब देख लेंगे। उसको बहुत पसंद आयेगा।......... एक बात और कहना चाहता हूं, मिस्टर भट्टाचार्य! सती का विवाह जल्दी ही होने वाला है। आप दोनों को उसमें जरूर आना है। कोई भी बहाना नहीं चलेगा!''

''जरूर आयेंगे,'' भट्टाचार्य जी ने कहा, ''हम जरूर आयेंगे।''

श्रीमती भट्टाचार्य का चेहरा ड्राइविंग मिरर में अनूप को साफ दिखाई दे रहा था। पड़ोसी होने के बावजूद अनूप के लिए वे दीदी की तरह थीं। मां से उन्हें सब बातों की जानकारी मिल चुकी थी।

उनकी आंखों की नमी अनूप से छिप नहीं सकी।

सामने कुछ दूरी पर नर्सिंग होम की हरे रंग की खिड़कियां नजर आ रही थीं। इस चौमंजिले ऊंचे विराट भवन को, जिसकी दीवारें सफेद रंग की और खिड़कियां नीले शीशे जड़े हरे फ्रेमवाली थीं, डाक्टर मोहन सिंह के पिता डाक्टर रामकिशोर सिंह ने बनवाया था। डाक्टर रामकिशोर सिंह इस शहर के नामी डाक्टर थे।

भवन के चारों ओर लगाये गये हरे-भरे नीम के पेड़ शीतलता और शांति प्रदान कर रहे थे।

'डाक्टर सिंह का नर्सिंग होम' का बड़ा बोर्ड पार करके गाड़ी पोर्च में जाकर रुक गयी।

सबसे पहले गाड़ी से कूदकर उतरे भास्कर मेनोन। उनके पीछे भट्टाचार्य जी और उनकी पत्नी। थोड़ी दूर पार्क में गाड़ी खड़ी करके अनूप भी आ गया। अनूप के आने तक मामाजी काउंटर पर पहुंच गये थे।

रिसेप्शनिस्ट कह रही थी, "ट्वेंटी सेवन, थर्ड फ्लोर। थ्री हंड्रेड एंड ट्वेंटी सेवन। प्लीज़ मीट दी नर्स आन ड्यूटी फर्स्ट।"

अपनी ओर आते हुए अनूप को, रिसेप्शनिस्ट की बात मामाजी ने इस तरह दोहराकर सुनाई, मानो कोई बड़ा आविष्कार कर लिया हो।

लिफ्ट से उतर कर 327 नंबर कमरे के सामने पहुंचकर अनूप ने दरवाजे पर लटके बोर्ड पर लिखा देखा, 'पेशेंट रेस्टिंग। प्लीज डोंट डिस्टर्ब।'

"पहले डाक्टर से मिल लेते हैं।" अनूप मुड़ गया। पर अपनी धुन में आगे निकलने के बाद अनूप को अचानक ध्यान आया कि मामाजी सती के कमरे के सामने खड़े हैं। पीछे मुड़कर उसने पुकारा, "आ जाइए।"

"क्या सती इस कमरे में नहीं है ?"

"है। मगर सो रही है।"

"ये कैसी निद्रा है ? नहीं, ऐसा नहीं हो सकता। हमें उससे इसी वक्त मिलना होगा!"

अपने हाव-भाव बदलकर वे पागलों की तरह बोल रहे थे!

डाक्टर मोहन सिंह के एकदम टपक पड़ने से अनूप बहुत आश्वस्त हुआ।

मगर इस आश्वासन की आयु इतनी लंबी नहीं थी, अर्थात यह अधिक देर नहीं ठहर सकी।

बारह

''घबराने की कोई बात नहीं।'' डाक्टर सिंह ने कहा, ''हमें कुछ और सब्र करना होगा।''

''क्यों, क्या बात है ? जो कुछ भी हो साफ साफ कहो।'' मेनोन उतावले हो उठे थे। सभी डाक्टर सिंह के कमरे में जमा थे।

भारी पेपरवेट को एक हाथ से दूसरे हाथ में लेते हुए डाक्टर साहब ने मुस्कुराते हुए कहा, ''बताने लायक कोई खास बात नहीं है।'' फिर बात को स्पष्ट करते हुए वे आगे बढ़े, ''आठ बजे सती चेत गयी थी। नर्स ने जैसे ही आकर खबर दी, मैंने जाकर उसे देखा। उसकी आंखों से ऐसा प्रतीत हुआ मानो उसका दिमाग सुन्न हो गया है। न तो वह किसी सवाल का जवाब देती है, न ही कोई सवाल करती है।''

इन हालात में अक्सर सब कुछ इसके विपरीत भी हो सकता है। जागने पर मरीज अनाप-शनाप बकने लगता है और जोर जोर से रोने लगता है। कुछ समय के लिए उसे इस हालत में रहने की अनुमति हम देते हैं। खाने-पीने के लिए भी उसे थोड़ा-बहुत देते हैं। कभी-कभी मरीज कुछ नहीं खाता। ऐसे में वह खाये या न खाये, उसे नींद की दवा दे दी जाती है। यों एकाध बार अगर वो रो पड़े, तो मानसिक आघात कुछ कम हो जाता है। रोगी को यदि घटना की वास्तविकता का ज्ञान हो जाये तो सारा झंझट दूर हो जायेगा और मन को शांति मिल जायेगी। मगर सती के मामले में कुछ अधिक कठिनाई नजर आ रही है। चेहरे पर हैरानी के लक्षण मात्र नजर आते हैं। रोने का कोई आसार नजर नहीं आता। नींद की दवाई इसे फिर दूं या नहीं, यही मैं सोच रहा हूं। मेरे विचार से अगर एक बार डा. पुरोहित से सलाह-मशविरा कर लिया जाये तो अच्छा होगा। फिर मैंने सोचा कि एक बार तुमसे भी बात कर लूं तो ठीक रहेगा। संभव है कि एक बार तुम लोगों को देखने से आंसुओं का बांध टूट पड़े। एक बार शुरुआत हो जाये तो सब ठीक हो जायेगा। मगर यह शुरुआत ही एक प्रश्न है। यह तो दवाओं से संभव नहीं है।''

मनोविज्ञान में दक्ष डा. पुरोहित से अनूप परिचित नहीं था। उनकी प्रसिद्धि के कारण उनका नाम अवश्य सुना था।

''क्या करना है, इसके बारे में निर्णय आप ही ले लें तो अच्छा हो, सिंह जी!'' अनूप ने कहा।

चाहे शतरंज का खेल हो या चिकित्सा का क्षेत्र, डा. सिंह बड़ी चतुराई से अंपने मोहरे चलना जानते थे। पिछले अनुभवों से अनूप को इस बात का भली भांति ज्ञान हो चुका था। खूब सोच-समझकर वे एक मोहरा आगे बढ़ाते और कहते, 'नो, प्रोब्लम!'

बीमारी के मामले में भी उनका यही तरीका था। विरले ही वो मात खानेवाली बात

करते थे।

कांच के पेपरवेट की ओर एकटक देखते हुए डाक्टर सिंह ने कहा, ''मैं तुम लोगों में से किसी एक के आने की प्रतीक्षा में बैठा था। हम एक परीक्षण करके देख लेते हैं। पहले मिस्टर भट्टाचार्य और उनकी पत्नी कमरे में जायेंगे। देखते हैं कि इनको पहचानती है या नहीं ?''

''मैं........'' ऐसा कहकर मामाजी उठने ही वाले थे कि डा. सिंह ने उन्हें हाथ उठाकर रोक लिया, ''आप उनके पीछे जरूर जायेंगे, मगर दो मिनट बाद। पिता को देखकर उसके आंसुओं का बांध जरूर टूट पड़ेगा, यह मेरा अंदाजा है।''

अनूप की ओर देखकर डाक्टर ने कहा, ''आखिर में हम लोग चलेंगे।''

बाएं पैर से सिंह जी ने बैल पैडल दबाया। बाहर कहीं एक घंटी बजी। संगीतात्मक घंटी का स्वर।

अगले क्षण एक नर्स कमरे में आ गयी, ''यस, डाक्टर ?''

''इन्हें 27 में ले जाओ।''

भट्टाचार्य जी और उनकी पत्नी नर्स के साथ चले गये। डॉ. सिंह ने अपनी कलाई पर बंधी घड़ी की ओर देखा।

''कभी कभी ऐसा भी होता है। जब हमें अपनी सहनशीलता की दहलीज पार करके भी कष्ट सहना पड़ता है तो हम ही अनजाने में अपने सामने एक पर्दा डाल देते हैं।''

इंतजार की असह्यता का निवारण सिंह जी के शांत स्वर में दिये गये कथन और विशदीकरण से लगभग पूरा ही हो गया और आरामदायक बन गया।

उन्होंने पुन: कहना शुरू किया, ''यह पर्दा कभी भी शाश्वत नहीं है। मगर इस पर्दे के पीछे से रोगी को खींचकर निकाला नहीं जा सकता। हमें उसे बाहर आने के लिए प्रेरित करना होगा।''

घड़ी पर नजर डालकर डा. सिंह ने फिर से बैल पैडल दबाया। नर्स का फिर से आगमन हुआ।

''इनको भी 27 में ले जाओ। तुम इनके साथ रहना। मैं अभी आ रहा हूं।''

मामाजी उछल पड़े और उठ गये। वे आगे आगे चलने लगे।

डा. सिंह ने कहा, ''ऐसा लगता है कि जिस तरीके से इन्हें इस घटना को लेना चाहिए था, वैसा नहीं ले रहे हैं।''

मामाजी में घटित हो रहे परिवर्तन को अनूप ने संक्षेप में डाक्टर साहब को बताया।

एक बार जोर से 'हूं' की आवाज निकालकर डा. सिंह सहानुभूतिपूर्वक मुस्कुराये, ''उन्हें आराम की जरूरत है। मैं उनके लिए कोई पेय ले आता हूं।''

बैल पैडल पर फिर दबाव पड़ा। एक दूसरी नर्स के आने तक डा. सिंह ने लैटर-पैड पर कुछ लिख दिया था। उसे नर्स की ओर बढ़ाते हुए कहा, ''मेक इट वेरी स्वीट। इट इज फार ए चाइल्ड आफ अबाउट सिक्स्टी फाईव!''

''यस डाक्टर!''

डा. सिंह उठे, ''कम आन। लेट्स गो।''

सती दरवाजे की ओर पैर करके लेटी हुई थी। पलंग के सिरहाने के पास ड्यूटी नर्स खड़ी थी। एक ओर भट्टाचार्य दंपति विराजमान थे। दूसरी तरफ मामाजी बार बार जोर से पुकार रहे थे, ''सती....... बेटी........ सती....... मैं हूं........ मैं.......... ।''

मामाजी को अपने साथ कमरे में ले जानेवाली नर्स कुछ परेशान थी। उसे समझ में नहीं आ रहा था कि मामाजी को किस तरह नियंत्रण में रखा जाये।

डा. सिंह के पीछे अनूप ने भी कमरे में प्रवेश किया। डाक्टर सीधे सती के पास पहुंचे और झुककर उन्होंने पलकों को उठाया और पुतलियां देखीं। पूछा, ''सती, हाउ आर यू ?''

अनूप को देखते ही सती में भाव-परिवर्तन हुआ। आंखें फैल गयी। श्वास की गति में तेज़ी आ गयी। हैरानी की जगह पर आंखों में भय की छाया नजर आने लगी। वह एक तीव्र विकार था। भय से मानो वह सिकुड़ रही थी और कहीं छिप जाने का प्रयत्न कर रही थी।

अनूप कुछ समझे बगैर उसके करीब चला जा रहा था।

अनूप के एकदम पास पहुंचते ही सती के कंठ से भय की पराकाष्ठा पर पहुंचा हुआ एक दीन रुदन-स्वर फूट पड़ा और इसके साथ ही वह पुन: बेहोश हो गयी।

डाक्टर सिंह ने फौरन सती की कलाई पकड़कर नब्ज देखी। फिर उन्होंने नर्स को कुछ निर्देश दिया। मामाजी को अपनी उंगलियों को हवा में घुमाकर कुछ टटोलते और हकलाकर बोलते हुए अनूप ने देखा।

अनूप यह सब एक स्वप्न की तरह देख रहा था। डा. सिंह का हाथ जब उसके कंधे पर पड़ा तब कहीं जाकर वह सचेत हुआ। ''चलो, हम सब बाहर चलते हैं।'' मामाजी का बलपूर्वक हाथ खींचते हुए डा. सिंह उन्हें कमरे से बाहर ले आये।

एक हाथ में शर्बत का गिलास लिये एक नर्स बाहर उनका इंतजार कर रही थी। डाक्टर ने नर्स से गिलास ले लिया और मामाजी के होठों से लगाकर कहा, ''इसे पी लीजिए। प्यास बुझ जायेगी।'' उनका स्वर एकदम शांत था।

मामाजी ने गटागट शर्बत पी लिया।

खाली गिलास नर्स की ओर बढ़ाते हुए डाक्टर सिंह ने धीमे स्वर में कहा, ''फाइंड ए बैड फार हिम एंड लेट मी नो व्हेयर ही इज एंड हाउ।''

मामाजी से डाक्टर ने जोर से कहा, ''जाकर सो जाइए। घबराने की कोई बात नहीं है। हम सब कुछ ठीक कर देंगे।''

एक अंधे की तरह नर्स का हाथ पकड़कर इधर-उधर ढूंढ़ते-ढांढ़ते मामाजी चले जा रहे थे।

दोपहर का समय हो चला था। भट्टाचार्य दंपति डाक्टर साहब से विदा लेकर चल पड़े। कमरे में डाक्टर और अनूप रह गये। चिंतामग्न डाक्टर सिंह उंगलियों से मेज पर ताल देते हुए बोले, ''दैट मींस पुरोहित!''

अनूप तब भी हतप्रभ सा बैठा था।

इंटरकाम का बटन दबाते हुए डा. सिंह ने कहा, ''गेट मी डाक्टर पुरोहित।''

फोन काल का इंतजार करते हुए डा. सिंह मानो अपने आप से कह रहे थे,''डेलीकेट गर्ल, इंडीड।''

अनूप ने पूछा, ''क्या कहा आपने ?''

''नो, नथिंग।''

डाक्टर पुरोहित ने तीन बजे तक आने का वादा किया। डा. सिंह ने फिर घड़ी की तरफ देखा और उठ खड़े हुए। बोले, ''हम एक साथ लंच करेंगे।''

जीवित शव की तरह अनूप डा. सिंह के साथ चला गया। रिसेप्शन पर डा. सिंह ने पूछा,

''मेरी पत्नी कहां हैं ?''

''घर चली गयीं।''

''कब ?''

''घंटा भर पहले।''

डा. सिंह ने अनूप के कंधे पर हाथ रखा, ''सी ? अच्छा लंच मिलेगा ? नो प्रोब्लम!''

डा. सिंह और उनकी पत्नी ने पूरी, आवभगत की, इसके बावजूद अनूप से कुछ खाया नहीं गया।

उनकी जिद पर एक गिलास लस्सी जरूर पी। डा. सिंह ने पूछा, ''आप कुछ भी नहीं खा रहे हैं। हां, एक बात बताइए, आपको क्या खा रहा है ?''

सती का भयभीत चेहरा और उसका वह रुदन अनूप के मन में स्पष्ट दिखाई दे रहा था।

डा. सिंह से सब बातों का पता चलते ही मीरा बहन ने कहा, ''पुरोहित सब कुछ ठीक कर देंगे।''

उन्होंने हस्पताल वापस लौटने पर मामाजी को सोते ही पाया।

डा. सिंह ने अनूप से पूछा, ''तुम रात को सोये तो नहीं होगे ? थोड़ा सो लो तो कैसा रहे ?''

डा. सिंह ने अपने कमरे के साथ लगे आराम-कक्ष में अनूप को लिटाया और दो गोलियां खाने को दीं। फिर कहा, ''पुरोहित के आने पर मैं तुम्हें जगा लूंगा।''

अनूप को अच्छी तरह मालूम था कि डा. सिंह उसे नहीं जगायेंगे। अत: उनकी बात सुनकर वह मंद मंद मुस्कुराने लगा।

डाक्टर सिंह भी मुस्कुराये, ''इन गोलियों को खाने के साथ ही तुम मेरे मरीज बन गये हो! तुमसे झूठा वादा करने का अधिकार इस नाते मुझे मिल गया है।''

निद्रा देवी का अनुग्रह जरूर प्राप्त होगा, इस प्रतीक्षा में अनूप काफी देर आंखें बंद करके लेखा रहा।

कुछ ही घंटों में उसने जो कुछ अनुभव किया था, आंखों के सामने उसकी एक झांकी सी निकलती उसने देखी।

लेकिन सती का भयभीत चेहरा स्थाई रूप से मन में टिका रहा।

नींद कब आयी, यह उसे याद नहीं। पर नींद खुलने पर एक बात मन में स्पष्ट थी—सुकु की हत्या उसने की है, ऐसा सती को विश्वास हो गया है।

डा. सिंह के कमरे में डा. पुरोहित बैठे हुए थे। पैनी नजर, गले तक पहुंची हुई लंबी दाढ़ी और खिचड़ी बालों वाले पैंतालीस-वर्षीय पुरुष। उनकी वेशभूषा में लापरवाही स्पष्ट नजर आ रही थी।

परिचय कराने पर ही उनके बारे में पता चला।

बैठने के लिए इशारा करते हुए डा. सिंह ने पूछा, ''सो गये थे क्या ?''

''जी हां।''

''मैंने तुम्हें कौन सी गोली दी थी, क्या तुम जानते हो ?''

अनूप ने हाथ फैलाकर दिखाया, मानो कौन जाने!

''विटामिन टैबलेट!'' डा. सिंह ने ठहाका मारा।

यह वार्तालाप डा. पुरोहित ध्यान से सुन रहे थे। धंसी हुई आंखों के चारों ओर की झुर्रियों की संख्या और गहराई बढ़ती ही जा रही थी। वे मुस्कुरा रहे थे।

''कई खबरें तुम्हारे इंतजार में रुकी हुई हैं।'' डा. सिंह ने कहा, ''पहली खबर यह है कि मां रात की एयर बस से आ रही हैं।''

तभी अनूप को याद आया कि उसने मां को तार दिया था। घर के पते पर आये तार को भट्टाचार्य जी ने ले लिया था और हस्पताल में खबर भिजवा दी थी।

''और ?'' अनूप ने उतावलेपन के साथ पूछा।

''युअर अंकिल.........''

''मामाजी को क्या हो गया ?''

''कुछ नहीं। वे अभी तक सो रहे हैं।''

''आपने उन्हें शर्बत तो नहीं दिया था!''

''नहीं।''

''और सती ?''

''डा. पुरोहित का मत है कि सती के विषय में बातचीत करना अनिवार्य है।''

''वे मुझसे कुछ जानकारी लेना चाहते हैं। यही है न इसका मतलब ?''

डा. सिंह हंसने लगे, ''मरीज के पास ज्यादा बुद्धि हो तो यही खतरा रहता है।''

डा. पुरोहित सीधे मतलब की बात पर पहुंचे, ''शादी के बारे में कभी सती से बातचीत की है आपने ?''

''जी हां।''

''उसकी प्रतिक्रिया क्या थी ?''

''इस परिस्थिति में.......''

''असंभव है, यही न ?''

''जी हां।''

"वह रोगी बालक क्या तुम्हे पसंद था ?"

"उसके प्रति नापसंदगी की कोई बात नहीं थी।"

"क्या कोई ऐसी स्थिति तो नहीं आयी, जिससे सती के मन में यह संदेह हुआ हो कि तुम सुकु को उससे अलग करने के चेष्टा कर रहे हो ?"

सभी जरूरी बातें, तो पिछले चार-पांच दिनों में हुई थीं, बिना किसी कोताही के, अनूप ने बयान कीं।

डा. पुरोहित 'हूं' करते सुनते रहे। बीच बीच में एकाध प्रश्न भी पूछ लेते थे।

सब कुछ कहने के बाद अनूप को लगा, मानो एक बहुत बड़ा बोझ उतर गया है।

कमरे में जो नि:शब्दता छाई हुई थी, वह अंदर बजती हुई कालबेल की आवाज से भंग हो गयी। साथ ही मामाजी कुछ परेशानी के साथ कमरे में दाखिल हुए। आंखों में नींद की दवा का असर अब भी बना हुआ था।

डा. सिंह ने परिचय कराया, "डा. पुरोहित, ये हैं मिस्टर मेनोन।" उन्होंने दाहिना हाथ आगे बढ़ाया। एक क्षण के लिए मामाजी किंकर्तव्यविमूढ़ं से खड़े रहे और फिर उन्होंने आगे बढ़ा हुआ हाथ पकड़ लिया।

डा. सिंह ने मामाजी से कहा, "बैठिए।"

लेकिन डा. पुरोहित ने कहा, "अब किसी चर्चा की कोई आवश्यकता मुझे दिखाई नहीं देती। सती की समस्या क्या है, यह मैं जहां तक समझ पाया हूं , बताता हूं।"

मामाजी ने कांपते हाथों से कुर्सी की पीठ पर हाथ रखा और उसे पकड़कर बैठ गये। मगर वो आराम से बैठ नहीं पाये, पंहलू बदलते ही रहे।

डा. पुरोहित डा. सिंह की ओर मुखातिब होकर बात कर रहे थे—

"सती को अनूप से अत्यधिक प्रेम था...."

अनूप का ध्यान इस बात पर गया कि उन्होंने कहा है— प्यार था, न कि प्यार है। बीच में रोकटोक किये बगैर उसने चुपचाप इंतजार किया।

अनूप ने देखा कि मामाजी गोदी में रखे अपने हाथों की उंगलियों को एक-दूसरे में फंसाये चटका रहे थे, आवाज ऐसी, जैसे नदी किनारे पड़ी तड़पती हुई 'परल' नाम की मछली छटपटाये।

डाक्टर पुरोहित ने कहना प्रारंभ किया, "सुकु और अनूप के प्रति सती के मन में जो प्रेम था, उसमें एक अंतर्द्वंद्व छिड़ा हुआ था। अगर सती से सुकु के अलगाव का प्रश्न नहीं होता तो ही सब्री—सुकु से अलग— अपने या दूसरों के लिए हो सकती थी। अपने आप तो वह अलग होना नहीं चाहती थी। अलगाव के लिए दूसरे लोग कोशिश कर रहे हैं, यह धारणा उसके मन में बन चुकी थी, और अलग करने की जरूरत सिर्फ अनूप को है।"

एक बार गला साफ करकेअपनी हथेली पर दूसरे हाथ की तर्जनी को आगे-पीछे फिराते डा. पुरोहित पुनः बोले, "मुझे मालूम है कि सती सुकु से कभी भी अलग होने के लिए तैयार नहीं थी। यह बात उसने दृढ़ता से कही भी होगी और अपने व्यवहार से स्पष्ट भी किया होगा। कल हुई मौत ने सुकु को सती से सदा के लिए अलग कर दिया है। इस मौत का आघात उसके लिए बहुत गहरा

है। जब किसी स्नेही जन की मृत्यु होती है और वह भी इस तरह आकस्मिक, तो लगता है मानो अपने व्यक्तित्व का एक भाग ही नष्ट हो गया हो। जितना गहरा संबंध होता है, उतना ही बड़ा नुकसान दिखाई देता है। सुकु की मौत एक दिन अचानक ही हो जायेगी, यह तो किसी ने भी नहीं सोचा था।

''इस तरह की बीमारी में ऐसी मृत्यु अस्वाभाविक नहीं है। यह प्रकृति-प्रदत्त खरपतवार निकलना जैसा ही है। यह प्रकृति का निर्णय है। परंतु सती की नजरों अथवा मन में औरों, या स्पष्ट शब्दों में कहूं तो, अनूप के लिए यह सुविधाकारी मौत है। अनूप का सुकु को यहां ले आने के लिए आगे आना और यहां उसकी मृत्यु— इस सब गलतफहमियों को जन्म देने में सहायक है। सती के मन में बैठ गया है कि अनूप ने निर्दयतापूर्वक सुकु की हत्या की है। सती के विश्वास को यह एक भारी धक्का है। अगर किसी पराये व्यक्ति के बारे में ऐसी गलतफहमी होती तो कोई झंझट नहीं था। लेकिन अब हालात ऐसे हैं कि अनूप के प्रति सती का जो स्नेह था, वह भय में परिवर्तित हो गया है। सोच-समझकर हुआ रूपांतरण नहीं है ये, बल्कि सब उलट-पुलट हो गया है। सती की इस गलतफहमी को बातचीत करके निकालना होगा। खैर, उसे दो-चार दिन और यहां रहने दीजिए। मैं कोशिश करके देखता हूं। मुझे विश्वास है कि सब ठीक हो जायेगा, मगर जल्दबाजी में कुछ हो पाना मुश्किल है।''

''मैं उसे समझाऊंगा,'' मामाजी ने बारी बारी सबके चेहरे की ओर देखते हुए कहा, ''मेरे कहने से उसे विश्वास हो जायेगा।''

''मिस्टर मेनोन!'' डॉ. सिंह ने कहा, ''सती अभी सोच-विचार करने योग्य नहीं है। चाहे आप उसके पिता हैं, पर वह पहचान नहीं पायेगी। अत: उसकी मानसिक चिकित्सा के लिए डाक्टर की मंत्रणा ही ठीक रहेगी।''

''तो,'' मामाजी ने दुखी होकर कहा, ''मेरे लायक कोई काम नहीं है क्या ?''

डा. सिंह ने एक उपाय सुझाया, ''आप एक काम कीजिए। आप सती के पास रहिए। आपका रहना मात्र ही उसके मानसिक स्वास्थ्य को वापस लाने में सहायक होगा।''

मामाजी के पीठ पीछे डा. सिंह ने अनूप को आंख मारी।

एक कार्य करने को तो है, यह सोचकर मामाजी के दिल को कुछ सुकून अवश्य मिला। मगर डा. पुरोहित की बातों से उनका चेहरा काला पड़ गया था।

''तो फिर मैं सती के पास जाता हूं।'' ऐसा कहते हुए मामाजी अविलंब उठे और इस प्रकार निकले मानो जान बचाकर भाग रहे हों।

अनूप ने डा. पुरोहित से पूछा, ''डाक्टर साहब, कितनी उम्मीद की जा सकती है ?''

''पहले स्वभाव-परीक्षण के बाद ही कुछ कहा जा सकता है,'' डा. पुरोहित कह रहे थे, ''पर आज ऐसा करना उचित नहीं होगा। कल से कोशिश करूंगा।''

विदा लेते हुए डा. पुरोहित ने डा. सिंह से कहा, ''अच्छी तरह सोने दो— बात समझ में आ गयी न।''

डा. सिंह ने आंख मारी, ''नो प्रोब्लम!''

अनूप के धन्यवाद करने पर डा. पुरोहित बोले, ''मैंने प्रोफेशनल ढंग से कुछ नहीं किया है। सामान्य बुद्धि से कुछ सोंचा-विचारा अवश्य है। मेरा अनुमान है कि अनूप, तुम मुझसे पहले इस निष्कर्ष पर अवश्य पहुंचे होगे। क्या यह ठीक है ?''

इस अनुभवसंपन्न डाक्टर के प्रति अनूप के मन में आदर बढ़ता ही जा रहा था। इनके हाथों में सती बिलकुल सुरक्षित है, यह विश्वास और दृढ़ हो गया।

सती को जगाये बगैर उस पर एक नजर डालकर और डा. सिंह से विदा लेकर अनूप जब बाहर निकला तो साढ़े सात बज चुके थे।

'टी हाऊस' के सामने मोटरगाड़ी को रोककर उसने एक कप चाय पी। पार्लियामेंट स्ट्रीट की तरफ मुड़ने पर आनेवाले पेट्रोल पंप से गाड़ी में पेट्रोल डलवाया। फिर हवाई अड्डे की तरफ प्रस्थान किया।

सती का भयभीत और सिकुड़ा हुआ चेहरा तब भी उसकी नजरों के सामने मंडरा रहा था।

तेरह

''युअर अटेंशन प्लीज....!''

एयरपोर्ट के लाउंज में जहां मिलने और बिछुड़ने वालों की एक दुनिया थी, वहां अकेला सिकुड़ा, झुका बैठा था अनूप। उसने अपनी घड़ी की ओर देखा। एनाउंस्मेंट को ध्यान से सुना और सहज भाव से आगमन-द्वार की ओर बढ़ा।

हटाने पर भी न हटाया जाने वाला एक बोझ उसके मन पर आ पड़ा था। मांजी आ पहुंचें, तो शायद बचाव का कोई रास्ता निकल आये।

अपनी तंग राह पर चलनेवाले उसके मन की बात नहीं समझ पायेंगे, नहीं जान सकेंगे। अम्मा सबसे ज्यादा बात की तह तक पहुंच सकेंगी। चुपचाप, बिना बोले मां के पास बैठने से मन को शांति अवश्य मिलेगी।

पिताजी की मृत्यु के बाद रेलगाड़ी से गांव जाते समय मां के पास चुपचाप बैठना कितना आरामदायक था। सरककर अनूप के पास आ बैठी मां के हृदयोच्छ्वास की गर्मी अंतर्मन को पिघला दे रही थी। इससे अनूप को भी आश्वासन मिल रहा था।

आगमन-द्वार पर बड़ी भीड़ लगी हुई थी। स्वागत करने के लिए आये लोगों के आर्द्र नयनों के बीच ऐसे भी लोग थे, जो औपचारिकतावश परेशान से खड़े थे।

अम्मा अकेली आयेंगी, ऐसा तो कभी सोचा ही नहीं था। धोती में लिपटी मां को अनूप ने दूर से ही पहचान लिया। कोई और परिचित चेहरा नजर नहीं आया।

गेट तक पहुंचने से पहले ही मां की आंखें इधर-उधर खोजबीन कर रही थीं। चेहरे पर दुख और घबराहट के चिह्न नजर आ रहे थे।

अनूप ने हाथ उठाकर इशारा किया—'मां!'

एकाएक मां के चेहरे से दुख और घबराहट दूर भाग गये। काई से भरे तालाब में जैसे एक मछली काई के थोड़े भी हट जाने पर स्वच्छ जल को देखकर आनंदित हो उठती है, वही मां का हाल था। अनूप के पास आकर मां के चेहरे की घबराहट जरूर कुछ कम हुई, लेकिन दुख और आशंका कुछ और गहरी हो गयी।

अनूप ने मुस्कुराने की चेष्टा की। लेकिन सच पूछिए तो हृदय से उठती हुई सहज मुस्कुराहट होठों तक पहुंचे बगैर, आंखों में चमके बिना ही रास्ते में कहीं खो गयी।

अनूप को अभी भी मां के किसी सहयात्री की खोज में गेट की ओर नजरें घुमाते देखकर मां ने कहा, ''चलो, चलें।''

''क्या आपके साथ कोई नहीं आया?''

''नहीं। दुबई जानेवाले पड़ोसी पालापंखु के बाबा ने मद्रास में हवाई जहाज पर बिठा दिया था।''

''आप को डर नहीं लगा?''

''अब अम्मा को क्या डर लगेगा? किससे डरना है? हवाई जहाज में चाय-नाश्ता कराने के लिए दो एयर होस्टेस थीं ही। बहुत ही होशियार।''

और उन्होंने आगे चलना आरंभ कर दिया।

''कोई बक्सा भी है क्या?''

''मैंने यह सब लेने के लिए समय नष्ट नहीं किया।''

दोनों कार में बैठ गये। कार आगे बढ़ रही थी। चौड़ी सड़क पर पहुंचने तक मां ने कोई सवाल नहीं किया। अनूप भी चुप रहा। मां ने शुरुआत की, ''सब कुछ खत्म हो गया, है न?''

''हां, हो गया।''

''बड़े भैया कहां हैं?''

''बताता हूं।''

''और सती? अचानक सुकु को क्या हो गया था? क्या नये डाक्टर ने कोई ऐसी-वैसी दवाई दी थी?''

रोशनी के एक जुलूस में जैसे कड़ी बनकर आगे-पीछे होती हुई धीमी और तेज रफ्तार से चल रही थी उसकी कार। इसी बीच मानो अपने आप से बात कर रहा हो, अनूप ने जो कुछ भी उसे मालूम था, मां को सुना दिया।

इस बीच मां ने कुछ भी नहीं पूछा। शुरू शुरू में 'हूं-हां' भी किया, फिर वह भी बंद कर दिया। कई बार अनूप को लगा, शायद मां सो गयी है। मनोवैज्ञनिक की राय सुनाने पर भी जब उन्होंने बहुत देर तक मौन धारण किये रखा, तब भी यह संदेह बना रहा।

''अब सीधे हस्पताल की ओर जा रहे हो न?''

''नहा-धोकर कुछ खा-पी लेतीं तो ठीक रहता।''

''क्या तुमने कुछ खाया-पीया?''

''दोपहर को खाना खाया था।''

''तुमने स्नान किया?''

''अंतिम संस्कार के बाद स्नान किया था।''

''हम पहले हस्पताल चलेंगे।'' अनूप ने हामी भरी।

''सुकु सती और स्वयं अपने लिए भी एक बोझ ही था।'' एक लंबी सांस लेते हुए न जाने मां किससे कह रही थी। अनूप ने फिर से हामी भरी।

''फिर भी.....'' ऐसा कहना शुरू करके मां, ''इतनी जल्दी.....'' कहते हुए बीच

में ही चुप हो गयी।

कुछ किलोमीटर की दूरी निःशब्द तय करने के बाद मां ने अपना गला साफ करते हुए कहा, ''अनु! मैं एक बात पूछना चाहती हूं?''

इस तरह भूमिका बांधना मां के लिए असाधारण सी बात थी। सिग्नल-संचालित ट्रैफिक के प्रवाह से हटकर अनूप ने सड़क के किनारे गाड़ी को रोक दिया।

'गाड़ी क्यों रोकी है,' मां ने जैसे प्रश्नसूचक मुद्रा में पूछा।

अनूप ने एक ओर झुककर सीट पर हाथ टिकाया और हथेली से सिर थामकर मां का सामना किया, ''आप क्या पूछना चाहती हैं, मैं अच्छी तरह जानता हूं!''

मां की नजरें अनूप के चेहरे के चारों ओर मंडरा रही थीं।

''सती के संदेह में सच्चाई है या नहीं, यही तुम सोच रही हो न?''

अनूप के कंधे पर झुककर मां रोने लगी, ''मेरे लाडले बेटे.....!''

''नहीं मां.....!'' अनूप को अपने आप से नफरत होने लगी थी, ''मां, यह सब सोचकर तुम दुखी मत होना।''

''भगवान ने लाज रख ली।'' मां का स्वर अभी रुआंसा था, ''चढ़ती जवानी में कोई गलत काम करने की तो नहीं सूझी.....''

कंधे पर झुककर रोती हुई मां को उठाने की चेष्टा किये बगैर अनूप ने कार स्टार्ट की। थोड़ी सीधी, मगर उससे लगकर बैठी हुई मां ने अपनी आंखें पोंछीं। फिर परेशान होकर कहा, ''न जाने कब क्या होगा?''

''वह तो देखने पर ही पता चलेगा।''

''यह कैसा दंड मिल रहा है, भगवान! .....क्या आप ये सब जान नहीं रहे हैं, देख नहीं रहे हैं?'' मां बड़बड़ा रही थी।

रास्ते भर मां ऐसे ही बड़बड़ाती रही।

अनूप और मां ने हस्पताल पहुंचकर जब कमरे का दरवाजा खोला तो सती को होश आ चुका था। मगर छत की ओर जैसे किसी बिंदु की ओर एकटक नजरें गड़ाये हुई थी सती।

पलंग के एक ओर, दरवाजे की तरफ पीठ करके बैठे थे मामाजी। वे किसी यांत्रिक गुड्डे की तरह इशारा करते हुए जोर जोर से दोहरा रहे थे, ''बेटी, अनूप ने कोई गलती नहीं की है। सुनो बेटी.....!''

लेकिन ये शब्द सती के कानों तक नहीं पहुंच रहे थे। वह तो शब्दों और यादों से परे कहीं दूर जा चुकी थी!

कमरे में कोई नर्स भी दिखाई नहीं दी।

इस दृश्य ने अनूप और उसकी मां को कुछ देर के लिए स्तब्ध कर दिया। सुबह की घटनाओं की याद ने अनूप के पैर सुन्न कर दिये थे। लेकिन मां को भाई के असाधारण व्यवहार और हाव-भाव ने जड़वत कर दिया। किवाड़ का खुलना और

उनका अंदर आना मेनोन बिलकुल नहीं जान सके।

जो होगा, देखा जायेगा—यह सोचकर अनूप आगे बढ़ा, और उसने पुकारा, ''सती!''

इस स्वर ने सती के अंदर जैसे कहीं कुछ हलचल पैदा की। उसकी नजर एक आरी की तरह अनूप की ओर घूमी।

आंखों में फिर भय का संचार हुआ, सांस तेजी से चलने लगी और जिस तरह एक स्प्रिंग सिकुड़ जाता है, उसी तरह उसका शरीर सिकुड़ने लगा।

चार-पांच कदम आगे बढ़ाकर अनूप ठिठककर रुक गया। एकाएक मां आगे बढ़ीं, ''बेटी, सती!'' उन्होंने पुकारा।

सौभाग्य से अचानक उठी इस पुकार ने सती की नज़रों को अनूप से हटने के लिए बाध्य किया। सती को स्वयं से लिपटाने का प्रयत्न करती हुई मां को उसने अपने बंधन में जकड़ लिया और फूट फूटकर रोने लगी।

न जाने क्या हुआ, मामाजी भी एक बच्चे की तरह फूट फूटकर रोने लगे। उनकी रुलाई मानो एक संक्रामक बीमारी की तरह सहज ही फैलाने लगी थी।

मामाजी को हाथ पकड़कर अनूप ने कुर्सी पर बिठाया और कमरे से निकलकर लगभग दौड़ते हुए भरी आंखों और होंठों पर मुस्कान लिये मीरा बहन के सामने पहुंचा, ''डाक्टर, सती जोर जोर से रो रही है!''

डॉक्टर मीरा तुरंत उठकर चल पड़ी, ''कैसे गया हुआ?''

''अम्मा आ गयी हैं!''

''वेरी गुड!''

कमरे के अंदर घुसकर डा. मीरा जल्दी ही किवाड़ भेड़कर बाहर आ गयीं, ''चलने दो। रोना-धोना जारी रहने दो यह। मेरा ख्याल है कि सती ठीक हो गयी है। तुम्हें बहुत-बहुत बधाई!''

आंखें पोंछकर हंस रहे अनूप की ओर देखकर डा. मीरा मुस्कुरा रही है ''हे भगवान! आपका प्यार कितना महान है। भगवान अवश्य आप दोनों पर कृपा-दृष्टि रखेंगे और अपना आशीर्वाद देंगे।''

अनूप की खुशी बंटाने के लिए डा. मीरा साथ थीं, यह भी एक अच्छी बात थी। वरना अनूप किसी दीवार पर अपनी मुट्ठी को जोर जोर से मार देता।

वापस उस कमरे में जाने, किसी तरह का बीच-बचाव करने या सती की नजरों के सामने पड़ने की अनूप के मन में कोई इच्छा नहीं हुई।

फोन द्वारा डा. सिंह को सारी खबरें दे दी गयीं।

''बहुत अच्छा हुआ।'' यह था डा. सिंह का प्रत्युत्तर, उन्होंने कहा, ''एक काम करो। डा. पुरोहित को भी फोन पर यह खबर दे दो। उनकी तरफ से अवश्य कोई निर्देश मिलेगा।''

डा. पुरोहित ने कहा, ''मोरबिडिटी में प्राथमिक और प्रधान आश्वासन अवश्य मिल गया है। मगर फिक्सेशन दूर नहीं हुआ होगा। जो भी हो, फिलहाल आप (अनूप) सती के सम्मुख न जायें तो ही ठीक होगा। कुछ भार हल्का जरूर हुआ है। अगर कोई खास बात हो तो मुझे उसकी सूचना अवश्य देना। मैं अपना कार्यक्रम शुरू करूंगा।''

ये बातें भी खत्म हो गयीं।

बहुत देर तक बाहर बैठकर इंतजार करने का साहस नहीं हो रहा था अनूप को। रात के बारह बज चुके थे।

उसने धीरे से किवाड़ खोलकर देखा।

रो रोकर सती थक गयी थी और शिथिल होकर सो चुकी थी। मामाजी किसी प्रगाढ़ चिंता में डूबे कुर्सी पर निश्चेष्ट बैठे हुए थे।

अनूप ने बगैर कोई आहट किये धीरे धीरे कदम बढ़ाया और कमरे में प्रवेश किया।

सती माँ से लिपटकर सो रही थी। अनूप ने मां को धीरे से पुकारा। मां भी धीमे से बोली, ''तुम जाकर सो जाओ। मामाजी को भी साथ ले जाओ। कल सवेरे आ जाना।''

सती के फीके और निष्कलंक चेहरे पर और एक बार नजर डालकर अनूप बिल्ली की तरह दबे पांव मामाजी के पास गया और उन्हें धीरे से छुआ। वे चौंककर जाग उठे। अनूप ने अपने होठों पर उंगली रखकर चुप रहने का इशारा किया, ''श्-श्-श्!''

मामाजी ने भी मानो अनूप का अनुकरण कर रहे होठों पर उंगली रखकर आवाज निकाली, ''श्-श्!''

लुक-छिपकर भागनेवाले किसी चोर की तरह आगे मेनोन और पीछे अनूप दबे पांव कमरे से बाहर निकल आये।

कार चलाते हुए मन को कुछ शांति मिली। इससे दूसरी बातों पर भी ध्यान केंद्रित हुआ। नाश्ते के अलावा मामाजी ने कुछ भी नहीं खाया था।

अनूप ने कहा, ''मामाजी, चलिए। कुछ खा-पी लें तो कैसा रहे?''

मामाजी ने कोई जवाब नहीं दिया।

एक रेस्तरां के सामने गाड़ी रोक दी। अनूप के पीछे मामाजी भी गाड़ी से उतर गये।

रेस्तरां में मेज के सामने बैठे हुए मेनोन अत्यधिक चिंतामग्न दिखाई दिये और चपाती और सब्जी सामने आने पर यंत्रवत खाने लगे।

घर पहुंचते ही फोन बज उठा। फोन पर भट्टाचार्य जी थे।

"कैसी है?"

"हालत काफी सुधरी है।"

"क्या तुम्हारी मां आ गयीं।"

"हां, वे सती के साथ हैं।"

"और मामाजी?"

"अभी तक कुछ ठीक नहीं लगते।"

"रात का खाना नहीं खाओगे?"

"धन्यवाद! हमने खा लिया।"

इस बीच मामाजी ऊपर के कमरे में चले गये थे। अनूप ने जाकर देखा तो उसके आफिस-रूम की कुर्सी पर बैठे वे कुछ सोच-विचार कर रहे थे। अनूप ने उन्हें परेशान नहीं किया।

स्नान करके उसने अपना नाईट गाऊन पहना और हाथ में एक पुस्तक लेने पर कुछ आश्वस्त हुआ।

प्यास लगने पर उसने फ्रिज खोला। पिछले दिन सुकु को खिलाने के लिए तैयार किया गया भात वैसा ही रखा हुआ था। इसके साथ ही यादें उस पर इस प्रकार हमलावर हो उठीं, मानो भिड़ों का झुंड टूट पड़ा हो। वह भी ऐसे कि एक को दूसरे से अलगाकर पहचानने में कठिनाई हो रही थी। वे रूप बदल बदलकर लौट आती थीं।

भरी हुई पानी की बोतल को उठाये बगैर ही फ्रिज बंद करके अनूप लौट आया।

मन में विचार आया कि हस्पताल को फोन किया जाये या नहीं। अधिक सोच-विचार करने पर उसने यह इरादा छोड़ दिया। सीढ़ियों से ऊपर चढ़कर एक बार फिर आफिस-रूप में झांककर देखा—मामाजी ध्यानपूर्वक कुछ लिख रहे थे।

बरसों पहले वे इसी तरह बैठकर अदालत जाने से पहले की तैयारी करते थे। चेहरे पर इसी तरह की गंभीरता होती थी।

गंभीरता ही मामाजी की मुखमुद्रा की विशेषता थी। इसके अभाव में उनका चेहरा अच्छा नहीं लगता था। जिस घड़ी सुकु की मृत्यु हुई, उसके बाद ही मामाजी की गंभीरता नष्ट हो गयी। उसका वापस आ जाना अनूप को आश्वस्त कर रहा था। पटरी से उतरी हुई रेलगाड़ी फिर पटरी पर आ गयी थी।

दोपहर को सोने की वजह से शायद नींद नहीं आ रही थी। दिन में सोने की आदत नहीं थी। नौकरी करनेवालों को दिन में सोने का समय ही नहीं मिलता है। पढ़ने के लिए अनूप ने जो किताब उठाई थी, न तो उसने उसे निद्रा देवी की गोद में पहुंचाया, न ही मन में उठती चिंताओं को रोकने में सहायता की। उसने पुस्तक को छाती पर उल्टा कर रख दिया। मन में घिसटकर आते विचारों को आने की पूर्ण स्वतंत्रता दे दी।

सबसे पहले मां का डर और आशंका से भरा सवाल याद आया। चाहे कितने ही सयाने हो जायें बच्चे, कभी न कभी अविवेकपूर्ण कार्य करेंगे ही, ऐसा माताएं मानती हैं। यह सोचकर अनूप को हंसी आ गयी। फिर ख्याल आया कि इसका एक दूसरा पहलू भी हो सकता है। ऐसा कौन है जो अविवेकपूर्ण कार्य नहीं करता? जब तक अविवेकपूर्ण कार्य न करे, तभी तक एक विवेकी इंसान विवेकी बना रहता है।

अगर मां के मन में (उसके बारे में) संदेह हो सकता है तो सती को जो उसके प्रति संदेह हुआ, इसमें हैरानी की क्या बात है? उसका मन इसी तरह सोचते हुए उड़ान भरने लगा। यह एक पूर्ण सत्य है कि संदेह हमेशा पहले संदेहकर्ता का ही नाश करता है।

इस संदेह का कोई निवारण भी नहीं है। उन्हें गलतफहमी हुई है, इस बात को अनूप अच्छी तरह जानता है। मगर यह एक गलतफहमी है, इसे साबित कैसे किया जाये? अनूप को स्पष्ट दिखाई दे रहा था कि परिस्थितियां गलतफहमी के अनुकूल और उसके प्रतिकूल जा रही थीं। या यह भी कहा जा सकता है कि परिस्थितियों से ही गलतफहमी का जन्म हो रहा था।

अनूप को लगा कि गलतफहमी का शिकार होना स्त्रियों के मन की विशेषता है। पुरुषों की अपेक्षा स्त्रियां गलतफहमी का जल्दी शिकार हो जाती हैं।

नारी-मुक्ति आंदोलनकारियों के सामने यह सब कहना ठीक नहीं है, मगर क्या यह बात एक हद तक सच नहीं है? ऐसा अपने आप से पूछते हुए अनूप मन ही मन मुस्कुराया।

पिताजी के बारे में भी मां के मन में एक गलतफहमी थी, यह बात अनूप याद कर रहा था। तीन साल तक उनके मन में यह गलतफहमी बनी रही। मां को लगता था कि पिताजी का किसी और औरत से संबंध है। अन्योक्ति में मां कहती, 'मुझे सब मालूम है। एक बार की बजाय दो बार दाढ़ी बनाकर चेहरे को चमका लिया जाये, एक सुंदर कमीज पहनकर, सज-धजकर बाहर निकला जाये, नियमित रूप से घर आने की बजाय जरा देर से आया जाये...., अन्यथा इत्र लगाये किसी व्यक्ति के इतने करीब बैठा जाये कि अपने कपड़ों में सुगंध आने लगे तो कितना अच्छा हो!' ऐसी बातें मां के मुंह से अक्सर निकलती थीं।

इस पर पिताजी का स्पष्ट, निश्चित और फटाक से जवाब होता था, 'तुम्हें 'चुक्क' (कुछ) भी नहीं पता।' ('चुक्क' मलयालम में सोंठ को भी कहते हैं।)

''यहां सोंठ या काली-मिर्च की बात नहीं हो रही है!''

''तो शायद लौंग और इलायची की बात हो रही होगी?''

''बस, बस! अब यह खेल बंद करो।''

''अगर तुम रेफरी हो तो सीटी क्यों नहीं बजातीं?''

अगले दिन फिर यही सिलसिला चलता।

बात बेहद छोटी सी थी। पिताजी के नजदीकी एक अफसर की लड़की के लिए रिश्ता आया। उस लड़की का फोटो अनौपचारिक रूप से लड़के को दिखाने की जिम्मेदारी पिताजी को सौंपी गयी। फोटो पिताजी के पर्स में मां ने देख लिया। उसी दिन से गड़बड़ शुरू हो गयी। दो-तीन साल बाद ही उस लड़की का विवाह संपन्न हुआ। उस विवाह में मां भी पिताजी के साथ सम्मिलित हुईं। तब कहीं जाकर वह गलतफहमी दूर हुई।

वह फोटो किसकी है और कैसे उनके पास पहुंची, मां और पिताजी के बीच हुई उन सब बातों को अनूप ने बिस्तर पर चुपचाप नींद का बहाना कर लेटे हुए सुना था। अनूप उस समय छोटा था। मां का जवाब था, 'हां, हां! रहने दो अपनी चालाकी। मैं सब जान चुकी हूं।'

कई साल बाद वह सब याद करके मां बहुत रोई थीं। पिताजी ने इस बात पर मां की खूब हंसी उड़ाई थी।

और मां का जवाब? 'अगर तुम यह सोचते हो तो यही सही। मगर मैं नहीं सोचती कि ऐसा मजाक ठीक है। होशियारी दिखाने की जरूरत नहीं है।'

अनूप खुलकर हंस रहा था, 'बचाव का कोई रास्ता भी नहीं है।' 'सती, मैंने कुछ नहीं किया, मेरा विश्वास करो।' उससे ऐसा कहने से भी कोई फायदा नहीं है। बल्कि नुकसान भी हो सकता है। अगर यह बात कोई अन्य व्यक्ति जाकर कहे, तभी फायदा है। जैसे एक पुराना वाकया है, जिसमें कुछ विद्वानों ने एक नंबूदिरीपाद ब्राह्मण की बकरी को कुत्ता बनाकर पेश कर दिया था, इस प्रकार कार्य सिद्ध होना चाहिए। डा. पुरोहित का ऐसा ही इरादा होगा। अनूप ने मन ही मन उनकी कार्यसिद्धि के लिए भगवान से प्रार्थना की।

मट्ठे (नमकीन लस्सी) की खटास की तरह रोज रोज अदल-बदलकर भी आजीवन बनी रहनेवाली इस गलतफहमी से बच पाना असंभव है।

रोशनी के फैलने से जैसे अंधकार दूर हो जाता है, उसी प्रकार अगर गलतफहमी भी दूर हो जाये तो बेहतर है। मां की गलतफहमी उस लड़की के विवाह के साथ ही दूर हो गयी थी।

सती की गलतफहमी लेकिन इस तरह दूर नहीं हो सकती और यदि वह स्वयं कह दे कि कोई गलतफहमी नहीं है तो भी उसकी सचाई पर भरोसा नहीं किया जा सकता। यह जरूरी नहीं है कि उसकी गलतफहमी दूर हो गयी हो। यों भी कोई गलतफहमी किसी अहित के चलते वर्षों बाद भी सिर उठा सकती है, जैसे कोई विषैला सर्प, जिसकी जान उसकी पूंछ में हो, कुचले जाने पर फिर से फन उठा लेता है।

अनूप को स्पष्ट दिखाई दे रहा था कि एक ऐसी परिस्थिति बन गयी है, जिसमें

उनका एक साथ जीवन बिताना दूभर हो जायेगा।

मगर इसके बावजूद दिल में आशा का एक फूल खिले बिना न रह सका। सती पूर्णरूप से अगर पागल भी हो जाये तो भो उसकी देखभाल करना अनूप की जिम्मेदारी है।

हर हालत में सती केवल उसी की है..... चाहे वह जिये या मरे, या पागल ही क्यों न हो जाये। यह फैसला कर लेने पर वह आश्वस्त हो गया और उसने आंखें मूंद लीं। फिर वह बहुत देर से उठा।

उठने पर जो दृश्य उसकी नजरों के सामने दिखाई दिया, वह कोई दुःस्वप्न तो नहीं, यह विश्वास करने के लिए उसे काफी कोशिश करनी पड़ी। मामाजी बिलकुल निर्वस्त्र होकर सारे घर में चहलकदमी कर रहे थे। बिलकुल धीमी आवाज में, हिसाब-किताब करते हुए बड़बड़ाते चले जा रहे थे। बीच बीच में उंगलियों से मुद्राएं भी बना रहे थे।

बिस्तर से उठने के लिए काफी साहस जुटाना पड़ा।

चौदह

मामाजी के करीब जाकर अनूप ने जोर से पुकारा, ''मामाजी!'' मगर उनकी चाल या धीमे-धीमे बड़बड़ाने में कोई फर्क नहीं पड़ा। उनके और नजदीक जाकर अनूप ने बहुत जोर से पुकारा। दोनों कंधों को पकड़कर जोर से हिलाया।

मगर वे इस सबसे बिलकुल अनजान बने रहे। मन ही मन जो कुछ कह रहे थे, उसके अनुसार दोनों हाथों से इशारा कर रहे थे। होठों का हिलना भी जारी रहा। कभी एक कमरे से दूसरे में जाते, कभी तीसरे में.....

कुछ देर तक अनूप पुकारता रहा। मगर कोई प्रतिक्रिया नहीं हुई। अनूप को लगा कि भगवान की कृपा है जो इस हालत में वे दरवाजा खोलकर बाहर नहीं निकले।

फोन पर डा. सिंह को इस स्थिति से अवगत कराया तो वे भी दंग रह गये, ''अनूप जी, आप जो कह रहे हैं, क्या वह सही है?''

'आप आकर देख लीजिए। आपको सब पता चल जाचयेगा।' अनूप की इच्छा हुई कि वह ऐसा कहे, मगर कहा नहीं। सिर्फ इतना ही कहा, ''जी, हां।''

''तोड़-फोड़ तो नहीं कर रहे हैं?''

''नहीं।''

''क्या उन्हें कपड़े पहनाकर नर्सिंग होम में ला सकते हो?''

''कोशिश करके देखता हूं।''

''अगर ऐसा करने का साहस न हो तो मैं उधर आ जाता हूं।''

''डरता हूं कि कहीं चलती गाड़ी का दरवाजा तो नहीं खोलेंगे।''

''यह बात भी ठीक है। तुम ठहरो, मैं अभी आता हूं।''

फोन का चोंगा नीचे रखकर अनूप भोजन-कक्ष में गया। मामाजी तब तक वहां पहुंच गये थे। कमरे में जाते समय अनूप ने एक तौलिया अपने साथ रख लिया था। उसे मामाजी की ओर बढ़ाते हुए बोला, ''इसे बांध लीजिए।''

अनूप को आशा नहीं थी कि वे तौलिया बांध लेंगे और वही हुआ। मामाजी ने तौलिया नहीं बांधा।

अनूप ने पीछे से जाकर उनकी कमर के इर्दगिर्द तौलिया लपेट दिया। मगर उनके होठों का हिलना, बड़बड़ाना और हाथ का इशारा जारी रहा। उनमें किसी महत्वपूर्ण बात को जल्दी जल्दी कह डालने की व्याकुलता और तड़प नजर आ रही थी। थूक निगलने का प्रयास करने के लिए समय न देने और बड़बड़ाहट जारी रखने से, होठों के कारों पर घना झाग इकट्ठा हो गया था। चेहरे पर ऐसा भाव था मानो उनके सामने

कोई उपस्थित हो। जैसे मामाजी को उसे सब बातों से अवगत कराने की जल्दी हो। अनूप ने टूथब्रश पर पेस्ट लगाकर उनके दाहिने हाथ में पकड़ाया, मगर वे टूथब्रश पकड़कर भी वही इशारे दोहराते रहे।

अनूप उन्हें वाशबेसिन के पास ले गया और उनसे ब्रश लेकर उनके दांत साफ कर दिये।

जुबान साफ करना बहुत ही कठिन कार्य था। उस की हलचल बंद हो और वह बाहर निकल आये, तभी उसे साफ किया जा सकता था। किसी तरह से वह ऐसा करने में भी सफल हो गया। लेकिन बड़बड़ाने और इशारे करने का सिलसिला नहीं रुका। यहां तक कि नहलाते और कपड़े पहनाते वक्त भी वह बंद नहीं हुआ।

ऐसा लग रहा था मानो समुद्री लहरों में जोर से आलोड़न हो रहा हो या पीपल के पत्ते तेज हवा में कंपकंपाते हुए नाच रहे हों। मानो वे किसी के रोके रुक नहीं पा रहे हों।

एक कप दूध पिलाने में भी जबरदस्ती करनी पड़ी। खड़े खड़े सिर को पकड़कर पीछे घुमाया और मुंह में दूध डालने पर वे उसे गटक गये।

कुछ मिनटों में अनूप ने अपनी दिनचर्या समाप्त की। गुसलखाने से बाहर निकला तो मामाजी को ड्राइंगरूम में पाया। उनकी हालत में कोई परिवर्तन नहीं था।

मगर बाग में खड़े भट्टाचार्य जी पसीने में नहाये हुए थे। कालबेल बजाने आये भट्टाचार्य जी ने मामाजी को देख लिया होगा। उनके इशारों से यह प्रतीत हो रहा था, जैसे मामाजी उनसे कुछ कहना चाहते हों। खिड़की के कांच से साफ दिखाई दे रहा था कि मामाजी के कंठ से कोई आवाज निकल रही थी।

खिड़की के दूसरी ओर से भट्टाचार्य जी भी कुछ इशारे कर रहे थे।

अनूप ने दौड़कर दरवाजा खोला, "आइए।"

दरवाजे से अंदर प्रवेश करते हुए भट्टाचार्य जी से अनूप ने कान में कहा, "इनकी तबीयत कुछ ठीक नहीं है।"

भट्टाचार्य जी की आंखें हैरत से फैल गयीं। मामाजी का बुदबुदाना और इशारे का सिलसिला चलता ही रहा।

"क्या हो गया?"

"जब से मेरी नींद खुली तब से इन्हें इसी हालत में देखा है। आप बैठिए। मैं कपड़े पहनकर आता हूं। सिंह जी भी पहुंचनेवाले हैं।"

कपड़े पहनकर अनूप जब बैठक में पहुंचा तो मामाजी वहां से उठकर खाने के कमरे की ओर जा रहे थे। भट्टाचार्य जी उन्हें सिर घुमा घुमाकर और भयभीत नजरों से देख रहे थे।

"यह घर बड़ा अशुभ है!" भट्टाचार्य जी बगैर किसी संशय के कह रहे थे,

"यहां भूत-प्रेत का वास हो रहा है।"

बगैर किसी घबराहट के कमरे में प्रवेश करते हुए डा. सिंह ने भट्टाचार्य जी की ओर इशारा करते हुए पूछा, "इन्हीं की तबीयत ठीक नहीं है, ऐसा तुम कह रहे थे!"

"भगवान ही बचाए!" भयभीत से भट्टाचार्य जी ने कहा।

अनूप की ओर आंख मारकर डा. सिंह ने पूछा, "मेनोन साहब किधर हैं?"

मि. मेनोन को देखते ही डा. सिंह ने उनका अभिवादन किया, "हेलो!"

कोई फायदा नहीं हुआ। सिर से पैर तक उनका निरीक्षण करने के पश्चात डा. सिंह ने कहा, "यह तो एक ऐसी बीमारी है जिसके बारे में शक की कोई गुंजाइश नहीं है। फिर भी इनको डा. पुरोहित को सौंप देने में ही भलाई है। अनूप, मैं तुम्हें कैसे सांत्वना दूं, मुझे समझ नहीं आ रहा।"

अनूप बड़बड़ा रहा था, "आप चाहें तो भी प्रयत्न कर लें, कुछ ठीक होनेवाला नहीं, ऐसा लग रहा है!"

"आप बिलकुल ठीक कह रहे हैं!"

डा. सिंह गांड़ी चला रहे थे। उनकी गाड़ी में सब हस्पताल के लिए रवाना हुए। अनूप और मामाजी पिछली सीट पर बैठ गये। अनूप मामाजी की हरकतों पर नजर रखे हुए था।

कोई गड़बड़ी नहीं हुई। उनका ध्यान केवल बड़बड़ाने और इशारों पर ही केंद्रित था।

मामाजी को एक कमरे में बिठाने के बाद अनूप 327 में गया। उस समय कमरे में केवल मां थी।

"सती कहां गयी?"

"उसे जांच के लिए ले गये हैं।"

छानबीन करने पर मालूम हुआ कि डा. पुरोहित उसे अपने कंसल्टेशन रूम में ले गये थे।

मां ने और अधिक विवरण दिया, "सती पैदल गयी है। लोगों को थोड़ा-बहुत पहचानने लगी है। न जाने क्या क्या कह रही थी।" फिर तसल्ली देते हुए बोलीं, "कोई बात नहीं। ठीक हो जायेगी।"

फिर मां ने पूछताछ की, "बड़े भैया नहीं आये क्या?"

अनूप को समझ में नहीं आ रहा था कि वह सब बातों को किस तरह पेश करे। परेशान सा बोला, "मामाजी की तबीयत ठीक नहीं है।"

"क्या हुआ?"

"कोई खास नहीं।"

''तुम मुझसे कुछ छिपा रहे हो? जो कुछ भी है मुझे बताओ।''

''ऐसा लगता है कि उनके दिमाग में कुछ नुक्स है।''

''हे भगवान, धोखा मत देना!'' मां ने अपने दिल को थामते हुए कहा, ''फिर उनका क्या किया?''

''उन्हें यहां एक कमरे में दाखिल कर दिया है।''

''कहां?'' मां आगे बढ़ गयीं। दरवाजा पार करते ही अनूप ने उनका रास्ता छोड़ दिया। मामाजी का कमरा बाहर से बंद किया हुआ था। बंद चिटकनी को मां ने बड़े ध्यान से देखा और बोलीं, ''क्या इतनी बुरी हालत है उनकी?''

अनूप ने दरवाजा खोला।

दरवाजे की ओर पीठ करके खिड़की से बाहर देख रहे थे मामाजी। अचानक देखने पर ऐसा प्रतीत होता था कि वे किसी को कोई गोपनीय बात बता रहे हों।

मां ने अवरुद्ध कंठ से पुकारा, ''भैया!''

उन्होंने पीछे मुड़कर भी नहीं देखा।

जब अनूप को लगा कि मां कमरे के अंदर जाने में घबरा रही हैं, तो उसने कमरे में प्रवेश किया। मां पीछे हो लीं।

मामाजी का हाथ पकड़कर अनूप ने उन्हें मां के सामने कर दिया।

मां सकपका गयीं, मानो किसी शैतान से सामना हुआ हो। उनके कंठ तक आकर एक चीख घुटकर रह गयी और बाहर भी नहीं निकल पायी।

दौड़कर मां मामाजी से लिपटकर फूट फूटकर रोने लगी। मगर मामाजी तो अपने आप में ही मस्त थे। उनका बड़बड़ाना और इशारे करना बराबर जारी था।

अनूप ने अपना मुंह फेर लिया।

इंजेक्शन सिरिंज लेकर दो नर्सें कमरे में आयीं। उनमें से एक ने बहुत सहानुभुति से मां को अलग किया। फिर मामाजी का हाथ पकड़ लिया और दूसरी नर्स ने उन्हें इंजेक्शन लगाया।

सुई लगाते समय उनके चेहरे पर तीव्र पीड़ा की एक झलक दिखाई दी। यही बाहरी दुनिया की छेड़छाड़ के फलस्वरूप उनमें विकारभेद का लक्षण था। मगर उस समय भी उनका पुराना कार्यक्रम निर्विघ्न दोहराया जा रहा था।

''अगर इन्हें नींद आने लगे तो पलंग पर लिटा देना।'' नर्स की कही यह बात अनूप ने मां को समझा दी। फिर कहा, ''सती को कुछ मत बताना।''

मां ने अपनी आंखें पोंछीं। 'कभी न कभी तो बताना ही पड़ेगा। हे जगदंबिके! महामाये! तुम्हारा ही आसरा है!'

थोड़ी देर में मामाजी की आंखें बंद होने लगीं और शरीर शिथिल पड़ने लगा। यह देखते ही अनूप ने मामाजी को हाथ पकड़कर पलंग तक पहुंचाया। फिर उन्हें धीरे से पलंग पर लिटा दिया।

मां के कंधे पर हाथ रखकर बाहर आने का इशारा किया। कमरे से बाहर निकलकर उन्होंने धीरे से दरवाजा बंद किया और ड्यूटी नर्स को बताया, ''वो सो गये हैं।''

जड़वत खड़ी मां को अनूप ने फिर से इशारा किया, ''चलो, मां!''

मां नर्स से पूछ रही थी, ''क्या इनकी बीमारी ठीक हो जायेगी?'' नर्स मुस्कुराई।

अनूप ने मुड़कर कहा, ''मां, चलो। मैं आपको सब बताता हूं।''

अनूप मां को हस्पताल से बाहर ले गया। मां ने पूछा, ''कहां जा रहे हो?''

''हम जल्दी वापस आ जायेंगे, मां! आपने नहाया-धोयानहीं है न! घर होकर आ जायेंगे।''

''यह तो ठहरकर भी हो सकता है।''

''स्नान तो हो जाने दो, मां! .....सती को आने में देर लगेगी और मामाजी को जागने में भी समय लगेगा। हम जल्दी वापस आ जायेंगे।''

दांत साफ करते समय भी मां प्रार्थना कर रही थी, 'कृष्णा! .....गुरुवायूरप्पा! .....आप मुझे डूबने से बचा लीजिए। धोखा मत देना।'

कुछ कपड़े और छुटपुट सामान लेकर वे वापस हस्पताल पहुंच गये। अनूप मां को सती के कमरे में ले गया। द्वार की ओट से अनूप ने देखा कि सती कमरे में उपस्थित थी। मां का चेहरा देखकर सती का मुखमंडल कुछ खिल उठा था।

अनूप यह जानने के लिए उत्सुक था कि डा. पुरोहित को कहां तक सफलता मिली है।

मामाजी के कमरे के बाहर एक तख्ती लटकी हुई थी, जिस पर लिखा था—'रोगी सो रहा है।''

अनूप डा. सिंह के कमरे में घुस गया। वहां डा. पुरोहित के अलावा और कोई नहीं था।

''शुभ दिन!'' कहते हुए डा. पुरोहित ने अनूप का अभिवादन किया।

डा. पुरोहित ने कहना आरंभ किया, ''डा. सिंह ने मिस्टर मेनोन के बारे में बतलाया है। उनके जागने का इंतजार करते हैं। कभी कभी नींद से जागने पर सब कुछ ठीक हो जाता है।'' फिर कुछ सोच-विचारकर कहा, ''और कभी कभी तो..... ।''

अनूप ने प्रश्नसूचक दृष्टि से डाक्टर की ओर देखा।

''उनकी उम्र हमारे अनुकूल नहीं है। पर जितना हो सकेगा, कोशिश जरूर करेंगे।''

''सती का क्या हाल है?''

''जिस बात का मुझे डर था वही हुआ। उस लड़के की मृत्यु से लगा मानसिक

आघात लगभग खत्म हो गया है। यह स्वाभाविक है। लेकिन सती की यह धारणा बन गयी है कि सुकु की हत्या तुमने की है।''

अनूप का मन और चेहरा बुझ सा गया। डाक्टर पुरोहित की नजरों से यह छुप नहीं सका। मगर उन्होंने गणित सिखानेवाले एक अध्यापक की निस्संगता से कहा, ''देखो, यह धारणा अगर उसके अवचेतन में है तो इसे आसानी से दूर किया जा सकता है। लेकिन मुझे लगता है, यह गलतफहमी उसके सचेतन मन में ही है। सुकु को आप कोई नुकसान जरूर पहुंचायेंगे, यह बात सती के मन में उसके मरने से पहले ही बैठ चुकी थी। और इसका प्रभाव अत्यंत प्रबल था। इसी वजह से आघात पहुंचते ही आपके प्रति जो प्रेम था, वह उसके भय का कारण बन गया। तुम बुरा न मानो तो मैं तुम्हें साफ साफ बता देना चाहता हूं।''

''आप कहिए।''

''प्रत्याघात की प्रतिक्रिया में आपके प्रति जो भय है, वह घृणा में परिवर्तित हो जायेगा। असल में घृणा ही उसके प्रेम का स्वरूप है, यह बात हमें अच्छी तरह समझ लेनी चाहिए। आपसे असीम प्रेम था उसे। अब घृणा भी असीम हो रहेगी।''

''ठीक है,'' अनूप ने कहा, ''मैं सब कुछ समझ रहा हूं!''

''आपके बारे में सोचकर मुझे अत्यंत खेद है। मगर उससे क्या फायदा? मैं तो केवल एक मनोवैज्ञानिक हूं। इस परिस्थिति में मैं और कुछ कर भी नहीं सकता।''

''सती के स्वास्थ्य को कोई नुकसान तो नहीं हुआ?''

''नहीं। ऐसी तो कोई बात नहीं है।'' फिर दोनों ने चुप्पी साध ली।

थोड़ी देर बाद डा. सिंह ने कमरे में प्रवेश किया। उन्होंने उन दोनों को चुपचाप बैठे देखा।

''मैंने डा. पुरोहित से बात की है, अनूप! स्त्रियां जब गलतफहमी का शिकार हो जायें तो दो ही दवाइयां उपलब्ध हैं—सब्र और समय। दोनों में कोई मिठास नहीं!''

''स्त्रियों के बारे में आप लोग क्या कह रहे हैं?'' कमरे में अचानक आती हुई मीरा बहन ने प्रश्न किया।

डा. सिंह ने सबकी तरफ देखकर आंख मारी और कहा, ''स्त्रियों की गलतफहमी में चाहे जितनी कड़वाहट हो, अगर वह दूर हो जाये तो वह क्षण कितना सुंदर होगा, यही मैं अनूप जी को समझा रहा था।''

''लगता है, सती के बारे में सोच-विचार हो रहा है।''

एक बार फिर आंख झपकते हुए डा. सिंह ने कहा, ''यहां तो सवाल सती का नहीं, अनूप का है!''

''पुरुषों को तो ऐसा ही लगता है।''

''तो यह सिर्फ बकवास है?'' डा. सिंह मानो वाद-विवाद पर उतारू हो गये थे!

''इसकी व्याख्या करना जरूरी है।''

''हर महीने पत्नी के हाथ पर थोड़ी सी रकम रख देनेवाला पति क्या सोचता है? मीरा बहन ने पूछा, ''यही न कि परिवार का पालन-पोषण मैं करता हूं। क्या यही सच है? अच्छा यह बात जाने दो। भयंकर प्रसव-पीड़ा का अनुभव करके संतान को जन्म देनेवाली तो पत्नी ही होती है। अधिक कष्ट किसे होता है? एक पति के विचार मैं भी तो सुनूं।''

''सुनो,अनूप जी!'' डा. सिंह ने कहा, ''तैरना सीखना हो तो किनारे जा बैठने का सुख पानी में जाने पर तो नहीं मिलेगा। वहां तो भीगे और चिपके हुए वस्त्रों में अस्त-व्यस्त नजर आओगे। इसलिए प्रेम करते रहने में ही सुख है।''

''अगर बाढ़ आ जाये तो?'' मीरा बहन अपने गाल में बने गड्ढे को दर्शाते हुए मंद मंद मुस्कुरा रही थी। इस समय वह बहुत सुंदर लग रही थी।

डा. सिंह ने कहा, ''तो छत पर बैठना पड़ेगा। इसके अलावा चारा ही क्या है?''

''अविवाहित होने के बावजूद आपकी क्या राय है, डा. पुरोहित!'' डा. मीरा ने मजाक करते हुए पूछा।

डा. पुरोहित ने अपनी दाढ़ी खुजलाई, ''यह मेरा विषय नहीं है।''

''आपने तो मुझे मेरी पत्नी से कहने के लिए एक बढ़िया कहावत सुनाई है। इसलिए मैं तो आपको अपना गुरु मानता हूं।'' डा. सिंह ने डा. पुरोहित से हाथ मिलाया।

''मैं सती से बात करती हूं।'' डा. मीरा ने अनूप से कहा, ''मैं आपके दुख की जानकारी उसे अवश्य दुंगी।''

डा. पुरोहित ने मुस्कुराते हुए कहा, ''इससे सती के मन में जलन भी पैदा होगी। समय के साथ एक प्रश्न हल होने की बजाय संभव है, अनूप जी के लिए एक और प्रश्न खड़ा हो जाये!''

इसका मतलब समझने में डा. मीरा को क्षण भर लगा। समझ में आने पर पहले उनका चेहरा तमतमाया और फिर विवर्ण हो गया।

अनूप ने कहा, ''वैसे भी इस समय दो प्रश्न तो खड़े ही हुए हैं। जब मामाजी के बारे में सती को पता चलेगा तो क्या होगा?''

''फिलहाल आप उन्हें कुछ मत बताइए,'' डा. पुरोहित ने कहा, ''वे थोड़ा और सामान्य हो जायें तो बता देना। हो सकता है, तब तक इन बुजुर्गवार का स्वास्थ्य ठीक हो जाये और कुछ कहने की नौबत ही न आये।''

यह चर्चा वहीं समाप्त करके अनूप कमरे से बाहर निकल आया। उसने सती के कमरे में झांककर देखा। दरवाजा आधा खुला हुआ था। सती पलंग पर बैठकर रोते हुए मां से बड़े क्षीण स्वर में बात कर रही थी।

अनूप की शक्ल दिखते ही वार्तालाप बंद हो गया। मां की आंखों ने सती की दृष्टि का पीछा किया। दरवाजा खोलकर अनूप कमरे में गया। सती के मुखमंडल पर छा रहे भय को अनूप ने स्पष्ट देखा। साथ ही साथ घृणा को भी उभरते देखा।

डा. पुरोहित के शब्द अनूप के कानों में गूंज रहे थे।

अनजान सा बनते हुए अनूप ने पूछा, ''क्या हाल-चाल है?''

अन्योक्ति में सती ने धीरे से कहा, ''परमानंद!'' इस शब्द की चोट ऐसी थी, मानो किसी ने कोई खंजर भोंक दिया हो या किसी कूड़ेदान में जोर से कूड़ा ऊपर आ गिरा हो; इतनी घृणा और नाराजगी उसके स्वर और हाव-भाव में थी।

अनूप भिनभिनाया, ''वही तो चाहिए।''

कुछ भी जलाकर भस्म करनेवाली एक नजर सती ने अनूप को प्रदान की। दांत पीसकर कहे गये शब्द भी अनूप के कान में पड़े—''दुष्ट.....!''

मां ने सती का हाथ थाम लिया, ''बेटी!'' फिर पीछे मुड़कर अनूप को डांटते हुए कहा, ''अनु, तुम जाओ!''

''क्यों जाऊं, मां?'' अनूप जोर से बोला, ''जो मुंह में आता है, अंट-शंट बक रही है। यह सब सुनने के लिए मैंने गलती क्या की है?''

बड़ी मुश्किल से सती पलंग से उतरी और तन कर खड़ी हो गयी। बोली, ''मैं बताती हूं।''

मां ने सती का मुंह ढांप दिया, ''अनु!''

अनूप बाहर चला गया।

सती की सिसकियां उसका पीछा कर रही थीं।

सती की तबीयत ठीक नहीं है, यह बात याद आते ही अनूप का गुस्सा ठंडा हो गया।

बरामदे के चार चक्कर लगाकर शांत मन से अनूप ने मामाजी का दरवाजा खोलकर अंदर झांका। हाथ-पैर हिलते देखकर वह उनके करीब पहुंच गया। उनके होंठ भी धीरे धीरे हिल रहे थे, जो नींद से जागने के लक्षण थे।

एकाएक उनके होंठ जोर जोर से हिलने लगे और हाथ घुमाना भी बढ़ गया। फिर आंखें खोलकर झटके से उठे। वही पुराना रंग-ढंग!

कमरे से बाहर निकलकर अनूप ने दरवाजा बाहर से बंद कर दिया और डा. पुरोहित को खबर देने चला गया।

डा. पुरोहित ने आकर मामाजी का मुआयना किया। डा. सिंह उनके साथ थे। डा. पुरोहित के चेहरे से कुछ भी पता लगाना मुश्किल था। मगर डा. सिंह के चेहरे पर निराशा बड़े बड़े अक्षरों में लिखी हुई थी।

''कल,'' डा. पुरोहित ने कहा, ''मैं खुद जाकर सती को सारी खबर दूंगा।''

पंद्रह

''सती, मानसिक संतुलन खोकर उल्टा-सीधा बकनेवाले पिताजी का ख्याल करो तुम...!'' तीसरी मंजिल टैरेस से नीचे कूदकर आत्महत्या की कोशिश करती सती का पीछा करती मां जोर जोर से चिल्ला रही थी।

''जो हालत है, उसमें सती से सच्चाई बतानी ही पड़ी।'' मां ने अनूप को स्पष्टीकरण दिया।

''मां, तुमने उसे क्यों बताया?'' इस प्रश्न के उत्तर में मां ने रात में हुई घटना अनूप को सुनाई—

''सांझ से ही सती के चेहरे पर किसी दृढ़ निश्चय पर पहुंचने के लिक्षण दिखाई दे रहे थे। खाना भी नहीं खाया, बहुत जिद करने पर भी नहाने या कपड़े बदलने की परवाह नहीं की। दवाई भी नहीं खाई। कभी अपने आप से और कभी दूसरों से किये जा रहे गिले-शिकवे और सिसकियां भरने का सिलसिला भी एकाएक बंद हो गया।''

तभी से मां को कुछ शक हो गया। पलंग पर वह लेट तो गयी मगर सो नहीं पा रही, यह भी स्पष्ट हो गया। बीच बीच में इसे लंबी सांसें लेते, और हांफते हुए मां ने देखा।

मां रोज साईड-रूम में सोती थी, मगर उस दिन उन्होंने अपना बिस्तर सती के पलंग के करीब बिछाया और वहीं लेट गयीं।

वे किसी आशंका में जाग रही थीं। एक बार जब सती चुपचाप उठी तो मां ने पूछा, ''कहां जा रही हो?''

सती कुछ सकपका गयी और गुसलखाने की ओर चल दी। वापस आकर वह फिर से बिस्तर पर लेट गयी।

थोड़ी देर बाद मां की आंखें झपक गयीं। तभी अचानक वे चौंककर उठ बैठीं। पलंग की ओर देखा, तो सती वहां नहीं थी। बाहर जाने का दरवाजा भी खुला हुआ था।

मां घबराकर बाहर आयीं और बरामदे में जाकर चारों ओर देखने लगीं। ऐसा प्रतीत हुआ कि बरामदे के कोनेवाली सीढ़ियों से कोई ऊपर चढ़ रहा है।

खासकर रात में उन्हें कुछ कम ही नजर आता था। मगर वह सती ही होगी, यह सोचकर मां ने दौड़ लगाई।

कहीं वह कूदकर आत्महत्या न कर ले, यह भय मां के मन में पहली बार उदित हुआ। उन्होंने इतनी जोर से आवाज लगाई कि बाकी लोग भी जाग उठे।

छत पर सती ऐसे चल रही थी, मानो कोई निद्रावस्था में चला जा रहा हो। मां को ऐसा लग रहा था कि वह बहुत तेज भाग रही हैं, पर सती तक पहुंच नहीं पा रहीं। मानो जड़वत हो गयी हों।

छत की बगल में एक मुंडेर थी, इसलिए भी गिरने से बच गयी सती। उससे टकराकर रुक गयी थी वह।

अभी मां को उस तक पहुंचने के लिए दस-बारह कदम और आगे बढ़ना था। तभी उसे उसके पिताजी की नयी बीमारी के बारे में बताना पड़ा। नतीजा अच्छा ही निकला। सती मुड़कर खड़ी हो गयी। मां दौड़कर उसके पास पहुंचीं। इतनी देर में और लोग भी वहां पहुंच गये।

मां ने पिताजी के बारे में विस्तापूर्वक बताया। सब कुछ समझने के बावजूद उसके मुखमंडल पर कोई खास परिवर्तन नहीं दिखाई दिया।

उसका पहला प्रश्न था, ''पिताजी कहां हैं?''

मां उसे पिताजी के कमरे में ले गयीं। किवाड़ बाहर से बंद है, यह सती ने गौर किया। उसने दरवाजा खुद खोला।

पिताजी जागृत अवस्था में थे। वे पलंग पर बैठे चुपचाप इशारे कर रहे थे और बड़बड़ा रहे थे। सती ने उनकी बांह पकड़कर झकझोरा, और जोर से पुकारा, ''पिताजी, पिताजी!''

लगता था, वह फिर से बेहोश हो जायेगी। मगर ऐसा कुछ नहीं हुआ। परेशान सी सती थोड़ी देर पिताजी को देखती रही। फिर उसने उनका चेहरा पकड़कर बलपूर्वक अपनी ओर घुमाया।

मगर इससे भी कोई फायदा नहीं हुआ। हां, सती को मानो नया साहस मिल गया। वह पिताजी का हाथ थामकर पलंग के एक किनारे बैठ गयी।

इस बीच मां की चीख सुनकर आयी तीन-चार नर्सों ने जाकर डाक्टर को खबर दी और उन्हें बुलाकर कमरे में ले आये।

डाक्टर के पीछे पीछे दो नर्सों ने भी कमरे में प्रवेश किया।

डाक्टर ने सती का हाथ पकड़ा। सती ने डाक्टर का हाथ झटक दिया। डाक्टर ने उसे अपने साथ चलने के लिए जिद की। मगर वह 'नहीं, नहीं' कहती रही।

डाक्टर ने नर्सों को आज्ञा दी तो वे बलपूर्वक सती को पकड़कर कमरे से बाहर ले आयीं।

सती को उसके कमरे में ले जाकर पलंग पर लिटा दिया गया। जबरदस्ती सुई भी लगा दी गयी। सती के निद्रा में डूबने तक नर्सें वहीं रहीं।

अब तक वह निद्रा देवी की गोद में झूल रही थी। जागी नहीं थी।

अनूप ने सती के कमरे का दरवाजा धीरे से खोला और अंदर झांककर देखा।

मां सती के पलंग के नीचे अपना बिस्तर बिछाये सो रही थी। सती भी बिस्तर पर मौज से सोई हुई थी।

अनूप ने मां को हिलाकर जगाया। जागने पर वे झटपट उठ बैठीं और सती के पलंग की ओर देखने लगीं। फिर अपनी छाती पर हाथ रखकर दीर्घ नि:श्वास लेते हुए बोलीं, ''भगवान ने हमारी लाज रख ली।''

अनूप को कुछ भी समझ नहीं आ रहा था। मां ने इशारे से अनूप को समझाया कि वह शोर न करे। फिर उसका हाथ पकड़कर बाहर ले गयीं और किवाड़ धीरे से बंद कर दिया।

कमरे के बाहर दीवार का सहारा लेकर उन्होंने अनूप को सारा हाल सुनाया।

रात्रि में जब अनूप घर की ओर लौटा तो मामाजी को सुई लगाकर सुला दिया गया था। मां ने कहा कि सती बिलकुल ठीक-ठाक है।

घर पहुंचने पर भट्टाचार्य जी ने उसे अपने घर बुलाया। वहीं अनूप ने खाना भी खाया। दुनियादारी और मनुष्य की हालत पर चिंतन हुआ।

रात बहुत बीत चुकी थी। जब अनूप चलने लगा तो भट्टाचार्य जी ने कहा, ''तुम यहीं सो जाओ। वहां भी तो कोई नहीं है।''

उसके घर में भूत-प्रेत का वास है, ऐसा भट्टाचार्य जी कह तो नहीं रहे थे, मगर सोच जरूर रहे हैं, यह अनूप को उनका चेहरा देखते ही प्रतीत हुआ। वे सोच रहे थे कि अनूप का वहां अकेले रहना ठीक नहीं है।

भट्टाचार्य जी ने कहा, ''अगर तुम्हें नींद नहीं आ रही हो तो थोड़ी देर हम शतरंज खेलते हैं।''

अनूप को सचमुच नींद नहीं आ रही थी। उसने इस सुझाव का स्वागत किया। फिर तो काल्पनिक युद्धों का यह खेल भोर होने तक चलता ही रहा।

नहाते हुए एकाएक अनूप को आत्मज्ञान हुआ। उसे यह लग रहा था कि यह संसार शतरंज का मैदान है और मनुष्य इस शतरंज के मोहरे हैं। इस तरह के ख्याल उसके मन में साधारण परिस्थिति में कभी नहीं उभर सकते थे।

अनूप को सब एक मजाक सा प्रतीत हो रहा था। उसे लगा कि शतरंज के तीन तरह के खिलाड़ी होते हैं। एक सोचता है, मैं ऐसी चाल न चलकर किसी और तरीके से खेल सकता हूं। दूसरा खेल में हारने के बाद नयी चालें सोचने लगता है। तीसरा कई दिनों, हफ्तों और महीनों के बाद नयी चालें ढूंढ़ता है।

''अब तुम क्या करोगे?'' भट्टाचार्य जी ने प्रश्न किया।

''करना क्या है? मैं हार मानता हूं। और मैं कर भी क्या सकता हूं?''

''मैं खेल की बात नहीं कर रहा हूं। वो तो पहले से ही निर्धारित हो चुका है।''

''कुछ सोचना पड़ेगा।''

''अधिक सोचने से कुछ फायदा नहीं होनेवाला। जो विचार मन में कौंधे, उसके अनुसार चलने में ही भलाई है।''

अनूप मुस्कुराया। फिर कुछ देर के लिए लेट गया।

दिन चढ़ने से पहले अनूप उठा और भट्टाचार्य जी से कुछ कहे बगैर अपने घर चला गया। नित्यकर्मों से निवृत्त होकर हस्पताल की ओर चल पड़ा। इस वक्त तक भट्टाचार्य जी के उठने का कोई लक्षण नजर नहीं आ रहा था।

डा. सिंह और डा. पुरोहित ने एक साथ हस्पताल में प्रवेश किया। उस समय भी अनूप और मां कमरे के बाहर खड़े थे। मां जी बार बार किवाड़ धीरे से खोलकर अंदर झांकतीं और फिर बंद कर देतीं।

वे पूछ रही थीं, ''कब तक कोई पहरेदारी करेगा? कोई भी बेवकूफी करने के लिए तो एक क्षण ही काफी है। अब तुम ही बताओ, मैं क्या करूं?''

अनूप को पता था, यह कोई समस्या नहीं है। फिर भी वह बोला, ''डाक्टर को आने दो।''

फिर काफी देर तक दोनों मौन खड़े रहे। तब तक दोनों डाक्टर आ पहुंचे।

''मां, तुम अंदर चलो। मैं डाक्टरों को सारी कहानी सुनाता हूं।'' अनूप बोला।

मां कमरे में चली गयी। अनूप के करीब पहुंचकर डा. सिंह ने पूछा, ''कोई खास बात है?''

''नहीं है, यह भी तो नहीं कह सकता।'' अनूप ने कहा।

सारा वार्तालाप डा. सिंह के कमरे मं पहुंचने के बाद ही आरंभ हुआ। घटनाओं का विवरण मिलते ही डा. पुरोहित ने भौंहें सिकोड़ीं और कहा, ''मुझे पहले से ही इस बात का अनुमान लगा लेना चाहिए था।''

'आपने इस बात पर क्यों ध्यान नहीं दिया?'—यह प्रश्न किसी ने नहीं पूछा।

डा. पुरोहित फिर बोलने लगे, ''एक मनुष्य के लिए इससे अधिक विडंबना और क्या होगी कि जिससे वह सर्वाधिक प्रेम करता हो, उससे अत्यधिक घृणा करने की नौबत आ जाये! ऐसी परिस्थिति में आत्महत्या के बारे में सोचना स्वाभाविक है।''

''परंतु.....'' डा. सिंह ने हस्तक्षेप करते हुए कहा, ''पुरोहित जी! हरा सिग्नल तो दिखाई दे रहा है, फिर आप ब्रेक क्यों लगा रहे हैं? आगे बढ़िए।''

''आत्महत्या एक तरह का प्रतिशोध है। अपने स्नेही जन से बदला लेने की भावना। अक्सर यह किसी व्यक्ति विशेष के प्रति होती है। कभी कभी समाज से भी हो सकती है। अपने आप से किया गया एक विरोध-प्रदर्शन भी हो सकता है। असीम वेदना ही मृत्यु का कारण बनती है। छोटे-मोटे दुख या डर से कोई आत्महत्या नहीं करता। सती के मन में अनूप के प्रति जो प्रेम है, उसका दमन करने के सारे प्रयास विफल हो रहे हैं और वह फिर से सिर उठाने लगा है, यह तो स्पष्ट है। इसके अभाव

में यह प्रतिशोध की भावना नहीं उभर सकती।...कल किसी समय तुम दोनों में कोई झगड़ा तो नहीं हुआ?''

''थोड़ी-सी कहा-सुनी हो गयी थी।''

''नहीं होनी चाहिए थी। खैर, जो हो गया, सो हो गया। कोई बात नहीं।''

फिर यहां छाई हुई निस्तब्धता को तोड़ते हुए डा. पुरोहित ने कहा, ''मरकर अपने आप को प्रेमी की नजरों में और अधिक ऊंचा उठाने की इच्छा अनजाने ही कई बार हमारे मन में बनी रहती है। दूसरे को दिखानेवाला स्नेहाभाव जानबूझकर नहीं है, अपितु किसी विवशतावश है, यह बात समझने की चेष्टा भी उन्हें आत्महत्या करने पर उकसाती है।''

''यह क्षुद्र जीवन इतना संकीर्ण हो जायेगा, मैंने सपने में भी नहीं सोचा था।''

डा. सिंह ने एक फीकी सी हंसी के साथ कहा, ''अनूप जी, अब भी खुशी की संभावना है, पुरोहित जी की बातों से यह साफ मालूम हो रहा है। मुझे कुछ आश्वासन तो जरूर मिला है।''

इस बात को यहीं खत्म करते हुए डा. सिंह ने बात पलटते हुए कहा, ''अब आप बताइए, इस बुजुर्गवार के लिए क्या किया जा सकता है?''

''वयोवृद्ध होने के कारण उन्हें शाक नहीं दिया जा सकता। कोई दवाई देकर....? मैं जाकर एक बार उन्हें देख आता हूं।'' कहते हुए डा. पुरोहित उठकर खड़े हो गये।

डा. सिंह ने कहा, ''सती को अब यहां रहने की कोई जरूरत नहीं है। मगर बुजुर्गवार को घर में रखना मुश्किल होगा। उन्हें यहीं रहने दिया जाये।''

''अब क्या किया जाये?'' इस मामले में अनूप बुदबुदाते हुए कह रहा था, ''मां के जरिए सती से पुछवा लेना चाहिए।''

''मेरा भी यही ख्याल है। सती के मन की बात जानने पर ही मैं आगे कोई कदम उठा सकूंगा।''

''मगर सती अभी....।''

''नहीं, ऐसा कुछ नहीं होगा। बिछुड़ गये भाई की जगह पर अब पिता प्रतिष्ठित हो गये हैं। यह एक ऐसा मजबूत आधार है जिसमें सती का जीवित रहना अनिवार्य है। ऐसा उसे महसूस होने लगा है। मि. मेनोन की हालत कष्टदायी अवश्य है, मगर सती के लिए फिलहाल बचाव का यह एक महत्वपूर्ण रास्ता है!''

सारी बातें मां से जान लेने के बाद सती की प्रतिक्रिया व्यक्त और दृढ़ थी, ''पिताजी को तुरंत गांव ले चलना चाहिए।''

मां ने समझाया कि उन्हें इस तरह के किसी हस्पताल में रखकर इलाज कराना ही ठीक होगा।

''अब इलाज की क्या जरूरत है?'' यह था सती का जवाब।

सती की इच्छानुसार चलना ही ठीक होगा, यह थी डाक्टर सिंह की राय।

सती 327 नंबर कमरा छोड़कर पिताजी के कमरे में आ गयी। मां से सती ने कहा, ''आप घर जाइए। मैं पिताजी की देखभाल करूंगी।''

दुविधा में पड़ी मां से सती ने दृढ़ता से कहा, ''घबराने की कोई बात नहीं है। पिताजी के चले जाने के बाद ही मैं मरूंगी।''

इस वाक्य को बार बार दोहराते हुए मां मोटरकार में बैठी घर पहुंचने तक आंसू बहाती रही।

शाम तक वापसी की तैयारी पूरी हो गयी। गर्मी की छुट्टियों की भीड़-भाड़ अभी शुरू नहीं हुई थी। अगले दिन की टिकट भी मिल गयी। तय यह हुआ कि सती और मामाजी को हस्पताल से सीधे रेलवे स्टेशन ले जाया जायेगा।

हवाई जहाज में जाने का सुझाव मां ने ही रद्द किया था। जल्दी तो अवश्य पहुंचेंगे, मगर परेशानी बहुत होगी। यह थी मां की मंशा। कहा, ''यह तो उड़नखटोले का खेल है। अगर बड़े भैया को वहां कुछ हुआ तो क्या करेंगे?''

अनूप को उनकी बात ठीक लगी।

उस दिन रात को बहुत देर से सब हस्पताल से निकले। बाहर निकलने से पहले डा. सिंह और मीरा बहन ने सती से की गयी मुलाकात की एक टेप अनूप को सुनाई।

मीरा बहन ने आखिरी बार सती से खुलकर बात करने की कोशिश की थी। मगर पूरे टेप में केवल मीरा बहन के प्रश्न सुनाई दिये। प्रश्नों के अंतराल में दीर्घ अर्थपूर्ण मौन अवश्य बना हुआ था—

'सती जी, आपके पिताजी के लिए हम ज्यादा कुछ नहीं कर सके, इसका हमें दुख है।'

'धन्यवाद।'

'कल आप वापस जा रही हैं। फिर कब इस तरफ आने का इरादा है?'

मौन।

'कुछ यह-वह सोचकर मैं प्रश्न नहीं कर रही हूं। क्या आपको ऐसा लगता है कि मैं किसी का पक्ष लेकर सवाल कर रही हूं?'

'नहीं तो।'

'मैं भी एक औरत हूं। गले में कंठी बांधने से कुछ नहीं होनेवाला। आपकी परेशानी मैं समझ रही हूं। मगर स्त्री पत्नी या मां न बने तो पूर्णता कहां है?'

मौन।

'मरने से क्या फायदा? कितनी बड़ी बेवकूफी करने जा रही थीं आप? अपने गांव जाकर.....'

बात पूरी करने दिये बगैर उसने निषेध से सिर हिलाया।

'गांव में मदद के लिए कौन है?'

'किसलिए?'

'पिताजी की सेवा-शुश्रूषा के लिए?'

'उसके लिए मैं जो हूं!'

'मदद के लिए कोई और भी हो तो क्या ज्यादा आराम नहीं मिलेगा?'

''नहीं।'

'पिताजी तो अब भी कई साल जीवित रह सकते हैं। थोड़ी सी मानसिक अस्वस्थता से दैहिक स्वास्थ्य का कुछ बिगड़नेवाला नहीं। बल्कि उल्टा भी हो सकता है। जब मनोव्यथा बहुत बढ़ जायें तो ऐसे हालात पैदा होते हैं। इतने बरस क्या आप अकेले जीवन बिताने का निश्चय कर चुकी हैं?'

'जी हां।'

'भावुकता में ही ऐसे ख्याल मन में उठते हैं। ऐसी कठिन परिस्थिति में अगर मैं होती तो मुझे भी ऐसा ही लगता। मगर आगे चलकर क्या आपको पछताना नहीं पड़ेगा? अपनी गलती का अहसास होने पर क्या आपको दुख नहीं होगा?'

'नहीं।'

'बचपन में मैं भी बड़ी हठीली थी। सोचती थी कि जिस खरगोश को मैंने पकड़ा है, उसके सिर पर सींग जरूर होने चाहिए। मगर आज ऐसा नहीं है। एक पति है, एक बच्चा है। पति ऐसा है, जो न स्नेह प्रकट करता है न ही उसके पास समय है। मगर हृदय से बहुत चाहता है। बच्चा सर्वांगपूर्ण है और निरोग भी। इससे बढ़कर और क्या चाहिए? और भी कुछ है, यह मालूम नहीं। क्या तुम मुझसे सहमत हो?'

कोई उत्तर नहीं।

टेपरेकार्डर बंद कर मीरा बहन ने डा. सिंह से कहा, ''स्नेही पति के बारे में यहां जो कहा गया है, इस पर विश्वास करना कोई जरूरी नहीं है!''

पत्नी की शरारत-भरी मुस्कुराहट देखकर डा. सिंह ने आंख मारी, ''नो प्रोब्लम!''

डा. मीरा ने टेपरेकार्डर फिर से चालू कर दिया—

'सती! आपका मन बदलने के लिए मैं ऐसा नहीं कह रही हूं। उसकी मुझे जरूरत भी नहीं है। अनूप जी को आपसे अत्यधिक प्रेम है, यह मैं भली भांति जानती हूं। क्या यह गलत है?'

मौन।

'इतना अधिक प्रेम करनेवाले एक व्यक्ति को, अगर मैं आपकी जगह होती तो दुख नहीं पहुंचाती। यह बड़े दुख की बात है, सती! यों आपको जो ठीक लगे, वही कीजिए। हो सकता है, फिर कभी हमारी मुलाकात न हो। मगर मुझे यह तसल्ली तो

रहेगी ही कि मैंने अपने मन की बात आप तक पहुंचा दी। एक बेकसूर व्यक्ति को.... ?'

प्रत्युत्तर में एक विकृत घुटी हुई हंसी सुनाई दी। उसमें जो स्पष्ट ध्वनि थी, वह कह रही थी, 'आपको क्या मालूम है?'

टेपरेकार्डर बंद करते हुए मीरा बहन ने कहा, "भविष्य में ऐसा भयंकर दुख किसी भी स्त्री के जीवन में कभी न आये।" इस वाक्य में डाक्टर मीरा अपने हृदय के तीव्र दुख को प्रकट कर रही थीं।

यह तो साफ लग रहा था कि भाषा समझ में न आने की वजह से सती ने मौन धारण नहीं किया है। सती की पढ़ाई अंग्रजी मीडियम से हुई थी, अतः अंग्रेजी उसे अच्छी तरह आती थी।

रात को खाना परोसते समय मां अनूप के करीब खड़ी रहीं। एकाएक उन्होंने कहा, "मैं सती के पास ही रहूंगी।"

"क्या तुम सुमति से यह कहलवाना चाहती हो कि पहले छोटे भाई को मार डाला। अब सती को काबू में करके उसकी सम्पत्ति हड़पने के लिए मां को सती के पास भेज दिया है?" अनूप के स्वर में आवश्यकता से अधिक कठोरता थी।

"अगर कोई कुछ कहता है तो कहने दो। इसके लिए हम क्या कर सकते हैं?"

"जो कुछ मिल चुका उससे क्या तुम्हारा जी नहीं भरा! और क्या चाहती हो तुम?"

"अनु, तुम यह क्या कह रहे हो....मुझे क्या चाहिए? क्या वे मेरे बड़े भैया नहीं हैं? क्या तुम यह बात भूल गये हो?"

"सती अगर व्यंग्य-बाण छोड़ेगी तो? मां, क्या तुम वह सहन कर पाओगी?"

"जिसका मन दुखी हो वह कई तरह की उल्टी-सीधी बातें करेगा पर इससे क्या?"

"मगर कब तक, मां.... ?"

"जब तक मेरी शरीर चलता-फिरता रहेगा?"

सोच-विचार में डूबे अनूप ने खाना, खाना बंद कर दिया। मां ने कहा, "तुम खाना खाओ। दही रखा हुआ है।"

अनूप ने बिना सिर उठाये पूछा, "मां, क्या तुम समझती हो कि कभी न कभी सती को सद्‌बुद्धि आयेगी?"

"जरूर आयेगी।" कहते हुए मां ने चावल और दही परोसा।

अनूप ने धीरे से नजरें उठाईं और मां की ओर देखा। हृदय से जो दीर्घ निःश्वास उठ रही थी, उसे दबा दिया।

"जरूर ठीक हो जायेगी, मैंने कहा न! अब तुम खाना खाओ।" मां ने उसे याद

दिलाया।

अनमनेपन से उसने दो-तीन कौर खाया और उठ गया।

"मैं तुम्हारे मन की बात अच्छी तरह समझती हूं....तुम बड़े अफसर बन गये हो, यह सोचकर तुम मुझसे लुका-छुपी खेलने की कोशिश छोड़ दो।"

अनूप को ऐसा प्रतीत होने लगा, जैसे वह मां के सामने एक बार फिर से छोटा बच्चा बन गया है।

"तुम अपना काम-काज संभालते हुए यहां आराम से रहो। किसी से राग द्वेष रखने की कोई जरूरत नहीं है। सती जैसी कोई भी लड़की मैंने इस संसार में नहीं देखी। और फिर किस आकाश पर बादल नहीं छा जाते? लड़की बनकर जन्म लेने का दुख और नरक तुम नहीं जानते। क्यों, मैं ठीक कह रही हूं न!"

हाथ धोकर अनूप अपने शयनकक्ष में चला गया और भीगे, संतुष्ट मन से खूब रोया। फिर उसे बहते पानी में डुबकी लगाकर नहाने का आनंद आया।

व्यावसायिक जीवन में लौटा तो मन में यात्रा, दफ्तर और दफ्तर के प्रश्नों ने आ घेरा। सोचने लगा कि अपने साथ लाई गयी फाईलों में कोई जरूरी कागज तो नहीं है? दो-तीन दिनों से उस ओर नजर तक नहीं डाली थी।

आफिस-रूम की मेज पर पड़े हुए कागजों पर दृष्टि दौड़ाते हुए उसने वह देखा। बीच से मोड़ी हुई कागजों की तीन-चार गठरियां, जिन्हें बड़े कायदे और करीने से एक के ऊपर एक रखा हुआ था। उस पर एक पेपरवेट रखकर एक कोने में छोड़ दिया गया था।

आफिस में लिखने के लिए इस्तेमाल होने वाला कागज। मगर इस तरह का कोई कागज उसने देखा या लिखा हो, अनूप की यादों में नहीं था। बीच से मुड़ा हुआ ऐसा कागज उसने दफ्तर में कभी नहीं देखा था।

उनमें से एक बंडल को उठाकर उसने सीधा किया।

मामाजी की सुंदर लिखावट दिखाई दी।

सोलह

अदालती ढंग से मुड़े कागज को सीधा करके अनूप ने उस पर नजर दौड़ाई। साफ-सुथरी अंग्रेजी में मामाजी का अपने ही खिलाफ लिखा गया। अपराध-पत्र!

अनूप कुर्सी पर बैठकर शुरू से पढ़ने लगा। मामाजी ने लिखा था—

'यह बड़ा ही विचित्र मामला है। इस पर विशेष ध्यान देना अनिवार्य है। छानबीन करने में काफी कठिनाइयां आयेंगी। सबूत इकट्ठा करने में मुश्किल आ जायेगी। कठघरे में खड़ा व्यक्ति कोई साधारण व्यक्ति नहीं है। कानून और उसके पालन से काफी अच्छी तरह परिचित है। विशेष तौर से ध्यान रहे कि वह एक नामी न्यायाधीश है, जो लंबे अर्से से सरकार को अपनी सेवा अर्पित कर चुका है। इससे मुजरिम के जुर्म की गंभीरता कम नहीं होती, बल्कि संगीन जुर्म का सबूत और पक्का हो जाता है।

'मुजरिम यह हवाला नहीं दे सकता कि इस निर्मम हत्या की गुरुता को मैं नहीं जानता था या इसका दंड क्या होगा, या भविष्य में क्या अंजाम निकलेगा। इन सब बातों के बारे में विश्लेषण करने की शक्ति उसमें नहीं थी, यह बात भी वह नहीं कह सकता।

'मुजरिम ने अपने ही बेटे ही हत्या की है। सबूत साफ साफ बता रहे हैं कि अंतरात्मा की आवाज को दबाकर यह हत्या की गयी है।

'यह क्षणिक क्षोभ या उत्तेजना के कारण किया गया अपराध नहीं है, बल्कि सुनियोजित ढंग से की गयी हत्या है यह।

'घटनाओं का विवरण देते समय सम्माननीय अदालत को बगैर किसी संशय के अवगत करा दिया जायेगा।

'हत्या के बाद मामले को बहुत सफाई से छिपा दिया गया और मुजरिम ने उसे स्वाभाविक मृत्यु सिद्ध करने की सफल चेष्टा की है।

'सुकुमार को मुजरिम के हीन उद्देश्यों से इतने सालों तक बचानेवाली उसकी बड़ी दीदी ही थी। मारा गया लड़का अनाथ, अशरण और आत्मरक्षा करने में समर्थ नहीं था और मुजरिम पर पूरा विश्वास रखता था। सती देवी नाम की उसकी दीदी से नजरें बचाकर मुजरिम ने सुकुमार की हत्या की थी।

'सती दीदी अगर इस मौत पर अपना संदेह प्रकट नहीं करती तो यह निर्मम हत्या केवल एक स्वाभाविक मृत्यु समझी जाती। मुजरिम सही ढंग से सजा नहीं पाता और बचकर निकल जाता।

'पिता ही मुजरिम हो तो भी क्या फर्क पड़ता है? मुजरिम, मुजरिम ही होता

है। जुर्म की उचित सजा दी जानी चाहिए—यह बात बेझिझक, बेधड़क, कानून का आदर-सम्मान करते हुए और उसका सही मतलब निकालकर कह सके, ऐसी उस स्त्री और उसके जैसे अन्य लोगों की कद्र करना समाज का कर्तव्य है।

'अपनी इच्छाओं को सफलतापूर्वक दस-पंद्रह साल छुपाने में मुजरिम ने विदग्धता दिखाई है।

'इस लड़के की पैदाइश के साथ ही उसे मार डालने की इच्छा मुजरिम के मन में पलने लगी थी। यह इच्छा कैसे पैदा हुई, इस बात पर आदरणीय अदालत के मन में न्यायपूर्ण संदेह हो सकता है। इसके स्पष्टीकरण के लिए प्रोसिक्यूशन वकील तैयार है।

'तीन लड़कियों के बाद मुजरिम के घर एक लड़का पैदा हुआ। साधारणतया यह अत्यधिक खुशी का अवसर था, पर बच्चा अपंग है, यह बात मुजरिम के ध्यान में लाई गयी। इससे मुजरिम के अहं को आघात पहुंचा। उसका मन कहने लगा कि कानून के एक पंडित, प्रशस्त और ऊंचे ओहदे पर पहुंचे हुए व्यक्ति के यहां इस तरह की एक संतान का होना बहुत अपमाजनजक है। यही उसके जुर्म की प्रेरणा का स्रोत था।

'शिशु के बड़े होने के साथ साथ इस प्रेरणा का आकार भी बढ़ता चला गया। आस-पड़ोस के दूसरे बच्चों के साथ तुलना करने पर लगा कि पड़ोसी उसके लड़के की हीनता को समझने लगे हैं। दूसरों की नजरों में मैं बहुत ही छोटा होता जा रहा हूं, ऐसा मुजरिम को महसूस होने लगा। बच्चे को मार डालने का ख्याल उसके मन में अधिकाधिक दृढ़ होने लगा।

'तीन-चार साल तक बच्चे की मां के जिंदा रहने की वजह से वह कुछ कर नहीं सका। मां के मरणोपरांत (ऐसा कोई सबूत नहीं है कि पिता के इस इरादे को जानने के बाद दुखी होकर मां चल बसी) सती देवी नाम की दीदी ने अपने भाई की परवरिश की। यद्यपि सती एक छोटी सी ही लड़की थी, पर उसने अपना खान-पान और सोना अपने भाई के पास ही कर लिया। कहना चाहिए कि मां का स्थान ले लिया था। यह भी अपनी उद्देश्य-पूर्ति में मुजरिम के लिए बाधा बन गयी। मुजरिम का एक और लक्ष्य था कि वह न केवल हत्या करे, बल्कि उसे छिपाकर समाज में अपनी हैसियत बनाये रखे। सती देवी किसी वक्त उसे अपने उद्देश्य पूरा करते हुए देख ले और फिर क़भी इसके बारे में दूसरों को बता दे, तो उसकी क्या इज्जत रह जायेगी? तब तो उसकी बनी-बनायी इज्जत मिट्टी में मिल जायेगी। इससे बचाव मुजरिम की सहज मृत्यु के बाद ही हो सकता है।

'इस संदर्भ में प्रोसिक्यूशन आदरणीय अदालत के सामने एक जरूरी बात पेश करने की इजाजत चाहती है—

'एक अपंग बच्चा किसी के भी घर में जन्म ले सकता है। चाहे वह आदमी छोटा हो या बड़ा। मगर ऐसे बच्चे के जन्म के बाद प्राय: उसके पिता की क्या प्रतिक्रिया होगी? आदरणीय अदालत के यहां किसी अपंग बच्चे के पैदा होने का दुर्भाग्य नहीं घटा होगा। (भगवान ऐसा दुर्भाग्य किसी को न दे) मगर ऐसी एक परिस्थिति को वे मन में कल्पित जरूर कर सकते हैं, ऐसा प्रोसिक्यूशन का पूर्ण विश्वास है।

'जन्म से ही अपराध-प्रवृत्ति से मुक्त किसी भी पिता के मन में इस तरह के अपंग और अशरण बच्चे से अधिक प्रेम होना स्वाभाविक है। कोई सोच भी नहीं सकता कि उसके मन में इस बच्चे को मार डालने का विचार कभी सिर उठायेगा। वह इस बच्चे के इलाज और सेवा-शुश्रूषा का भरसक प्रयत्न करेगा। उसकी रक्षा करने की भी कोशिश करेगा। ये सब प्रयास करने के बावजूद कोई फायदा न तो हो वह उस शिशु की देखरेख के निमित्त किसी जिम्मेदार संस्थान में जीवन भर के लिए भर्ती कर देगा। अगर उसके लिए धन का अभाव हो तो अपने ही रिश्तेदारों को स्नेह और विश्वास के नाम पर सौंप सकता है। चाहे उसका कहना केवल जुबान तक ही सीमित रहे।

'लेकिन अपराध-वृत्ति-विहीन भले आदमी जो करते हैं मुजरिम ने वही किया। वह सुकुमार नाम के 'बाल युवा' की बीमारी की तीमारदारी करता रहा। मगर यह दूसरों को बेवकूफ बनाने का नाटक मात्र था।

'इससे दुर्भाग्यग्रस्त एक पिता ने समाज से जितनी सहानुभूति मिल सकी, बटोर ली। अंतरात्मा नाम की कोई चीज मुजरिम के पास न तब थी और न अब होगी।

'सही तो यह है कि मुजरिम चिकित्सा के नाम पर कई बार मद्रास और बेल्लूर भी गये। लेकिन वे यात्राएं विनोद-संचार यानी अपने मनोविनोद के नाम पर ऐसे मौके की तलाश थी जिसमें कभी न कभी वह सुकुमार की हत्या कर सकेगा। कई डाक्टरों से मुजरिम ने अपने गूढ़ोद्देश्य सुंदर ढंग से प्रस्तुत करके सहायता भी मांगी थी। तीसरे साक्षी डा. पीतांबर से एक बार मुजरिम ने पूछा भी था—क्या आप थोड़ा सा जहर देकर उसे इस नरक से छुटकारा नहीं दिला सकते?.....माननीय अदालत चाहे तो इस साक्षी का बयान विस्तारपूर्वक ले सकती है।

'याद रहे कि एक दारुण परपीड़ा का अंत करने की तैयारी किये बैठा मुजरिम एक न्यायाधीश भी है। यह भी सोचने का विषय है कि इस मुजरिम के हाथों न जाने कितने निरपराधी फांसी के तख्ते पर चढ़ाये गये होंगे। प्रोसिक्यूशन के दिये गये अपराध-पत्र को उसी प्रकार मानकर मुजरिम ने न जाने कितने लोगों को किस किस प्रकार की सजा दिलवाई होगी।

'यह अपराध-पत्र एक औपचारिक विवरण भर नहीं है, आरदणीय अदालत कृपया यह बात स्पष्ट करने की अनुमति दें। दुनिया भर के नियमज्ञ और नियमपालकों से प्रोसिक्यूशन की प्रार्थना है कि वे इस केस की जानकारी लें और उस पर चिंतन-मनन भी करें।

'भारत की राजधानी और इस अदालत की परिधि में यह हत्या क्यों हुई, कैसे की गयी, किन परिस्थितियों ने हत्या करने पर उकसाया, इन सब बातों पर विस्तृत प्रकाश डाला जाना चाहिए।

'पिछले चार-पांच साल से मुजरिम अपने निकृष्ट उद्देश्य को पूरा न कर पाने के कारण मन ही मन कुढ़ रहा था। तभी पहला साक्षी, जो मुजरिम का भांजा और केंद्र सरकार का एक जिम्मेदार अफसर है, छुट्टियों में गांव आया। वह मुजरिम की बेटी का प्रेमी भी था और मुजरिम उससे खुला हुआ था। अपना भांजा होने के नाते वह उससे कुछ भी कह सकता था। और आज्ञा भी दे सकता था। वह मात्र भांजा ही नहीं था, पुत्रवत पाला था मुजरिम ने उसे। इसलिए उस पर उसका परम अधिकार भी था। सुकु को चंडीगढ़ ले जाने और वहां मस्तिक-रोग शल्यचिकित्सक को दिखाने की बात उसके भांजे अनूप कुमार ने की थी, मगर मुजरिम ने इसमें सैर-सपाटे और अपना उल्लू सीधा करने का मार्ग ढूंढ़ लिया।

''मुजरिम ने अनूप को भी अपने असली चेहरे को छिपाने के लिए पुत्रवत पाला-पोसा था, लोगों की नजरों में स्वयं को एक पवित्र हृदय व्यक्ति दर्शाने के लिए। आदरणीय अदालत इस बात से अच्छी तरह परिचित होगी कि ऐसे कई उदाहरण हैं जिनमें संसार के बड़े बड़े मुजरिमों ने इस तरह की उलटबाजियां की हैं।

'इस मुजरिम ने भी दो सिर और दो-मुंहे जहरीले सांप की तरह अपना चरित्र प्रस्तुत किया। एक के ऊपर मणि है, जो दुनिया को दिखाने के लिए है और दूसरा विष से भरा हुआ है। मुजरिम का असली रूप दूसरावाला है।

'मुजरिम ने राजधानी में आकर अड़ोसी-पड़ोसियों से अच्छा संबंध कायम किया। स्वयं को दिल का मरीज बताकर डाक्टर को दिखाने की मांग की। (इस उम्र में कौन ऐसा है जिसे दिल की बीमारी नहीं होती?) अनूप कुमार के दोस्त और शहर के जाने-माने विश्वसनीय डाक्टर, जो सामाजिक सेवा कर रहे एक विख्यात नर्सिग होम का मालिक भी था, से परिचय हुआ। ये डाक्टर हैं डाक्टर मोहन सिंह। वे भी एक साक्षी हैं। अपने गूढ़ उद्देश्य के लिए उनसे भी संपर्क स्थापित किया गया। अनूप को दफ्तर की तरफ से मिले बंगले की मुजरिम ने अपने मतलब से अच्छी तरह छान-बीन की।

'वारदात के दिन मुजरिम ने उपवास का बहाना किया। मुजरिम का व्रत-उपवास और भगवत्भक्ति केवल एक छल-कपट था। कोई उसके ऊपर संदेह न करे, इसके लिए बनाया गया रक्षा-कवच।

'मृत सुकुमार को सांझ के समय सोने की आदत थी। उस दिन सोने से पहले उसे नींद की गोली देने का अदेश मुजरिम ने सती को दिया। अपनी साजिश को कामयाब बनाने का इंतजाम था यह।

'मुजरिम कितना कपटी था, यह समझाने के लिए दो उदाहरण मैं आपके सामने रखता हूं—

'एक : जिंदगी में एक बार भी उसने जिस बेटे को कभी गोद में नहीं उठाया या अपने साथ नहीं सुलाया था, उस दोपहर को सबके सामने यानी सती देवी की आंखों के सामने कई बार चूमा।

'कितना ज्यादा प्यार! कितनी दया!

'दूसरा: जो व्यक्ति घर से कभी अकेला बाहर नहीं निकलता था, वही उस रोज असमय सैर करने निकल पड़ा। (ऐसा उसने किसलिए किया था, यह सब भी समय पर सामने आ जायेगा।) वापसी में वह बेटे के लिए चाकलेट लेकर आया, जिसे लेने में सुकुमार हिचकिचाया था। (यह हिचकिचाना बड़े बड़े अक्षरों में लिखा जाना चाहिए यह आपसे विनती है।) मुजरिम ने चाकलेट का चमकीला कागज, जिसमें चाकलेट लिपटा हुआ था, उतारा और बेटे को अपने हाथ से चाकलेट खिलायी। (अगर किसी गलत शब्द का प्रयोग हुआ हो तो अदालत कृपया क्षमा करे!) यह सब भी सती देवी की नजरों के सामने हुआ।

'मुजरिम सैर करने के बहाने हत्या की सामग्री खरीदने निकला था। खान मार्किट के यशपाल सिंह (साक्षी) की 'रणबीर इलेक्ट्रिक' नामक दुकान से उसने एक थ्री पिन प्लग और दस मीटर लंबा वायर खरीदा। फिर यशपाल सिंह से वायर को प्लग में जोड़ने के लिए कहा। श्री सिंह ने वह जोड़ा और दे दिया।

'इस उपकरण को छिपाकर मुजरिम घर के अंदर ले आया। हत्या करने के बाद ये सब चीजें उसने स्टोर में पड़े छुटपुट सामान के बीच में छिपा दीं। ये उपकरण ढूंढ़ने में पुलिस सफल हुई; यह हैरत की बात है। वायर के छोर में, जहां इंसुलेशन नहीं थी वहां जले हुए मांस के कुछ सूक्ष्म कण दिखाई दे रहे थे। (लाश की जांच के बाद मिली चीजें साथ रखी गयी हैं।)

'मुजरिम को यह बात अच्छी तरह मालूम थी कि जिस दिन दवाई खिलाई जाती है, उस दिन सुकुमार को पलंग पर नहीं बल्कि जमीन पर बिस्तरा बिछाकर सुलाया जाता है।

'इसके इंतजार में मुजरिम ने बड़ी मुश्किल से इधर-उधर समय काटा।

'कई दिन की छुट्टियों की समाप्ति के बाद दफ्तर से फाइलों का बंडल लेकर अनूप कुमार शाम को वापस घर आया। इन फाइलों को लेकर वह ऊपर आफिसवाले कमरे में गया और उन्हें खोलकर अपने काम में व्यस्त हो गया।

'अनूप कुमार जब घर में होगा, तभी हत्या की जानी चाहिए, ऐसा मुजरिम ने जरूरी समझा। सती देवी के जीवन से सुकुमार का अप्रत्यक्ष जुड़ाव अनूप की इच्छा समझी जानी चाहिए। यह काम फिर आसान हो जाता है। मुजरिम का निंदनीय श्रम

भी यह था कि अगर पकड़े गये या संदेह के पात्र बने तो सारा इल्जाम अनूप के सिर पर मढ़ दिया जायेगा।

'जब मृत देह ढूंढ़ ली जायेगी तब अनूप कुमार के घर में रहने से किसी शक की गुंजाइश नहीं होगी और अनूप के दोस्तों की सहायता से दाह-संस्कार जल्दी किया जा सकेगा। यह बात मुजरिम ने भली भांति सोच रखी थी।

'इस सबके अलावा एक और नाटक रचा जा चुका था। मुजरिम ने सती को सलाह दी थी कि मैं बूढ़ा होता जा रहा हूं और हृदय-रोगी भी हूं। अतः सुकुमार को किसी अच्छी संस्था में भर्ती करा देना जरूरी है। इस तरह से सती देवी स्वतंत्र हो जायेगी और अनूप से शादी कर सकेगी। यह नाटक उस उद्देश्य-शुद्धि को प्रकट करने के लिए था जो नाम मात्र के लिए भी मुजरिम के व्यक्तित्व में नहीं थी। सती देवी इस सुझाव को कभी भी नहीं मानेगी, यह बात मुजरिम को अच्छी तरह मालूम थी। दो देह और एक प्राण थे, दीदी और छोटा भाई।

'अनूप कुमार इस सुझाव से सहमत था। यह एक बढ़िया रास्ता था उसके विचार में। यह बात अनूप ने सती से साफ साफ कही भी थी।

'मुजरिम को अच्छी तरह मालूम था कि कल को अगर सुकुमार की मृत्यु हो जाये तो सती देवी को अनूप पर ही शक होगा। आप समझ सकते हैं कि मुजरिम के पापी दिमाग में कैसे कैसे षड्यंत्रों की रचना हो रही थी!

'वास्तव में हुआ भी वैसा ही। सती देवी का संदेह शुरू से ही निर्दोष अनूप कुमार के सिर पर पड़ा। सती देवी की जगह कोई और होता तो वह भी ऐसा ही करता।

'एक और बात पर आदरणीय अदालत गौर करें। मुजरिम ऐसा करके अपनी बेटी और पुत्रवत पाले गये (चाहे वो दिखावा मात्र ही था) अनूप कुमार के पावन प्रेम-बंधन और भावी जीवन को तहस-नहस भी कर रहा था। एक घिनौनी हत्या ही नहीं अपितु जो पीछे रह जायेंगे, वे भी खुशी से न जी पायें, ऐसी एक जिद भी थी उसे।

'मुजरिम की कुटिलता और अपराध करने की प्रवृत्ति की एक सही तसवीर माननीय अदालत के सामने आ गयी है।

'मुजरिम सती देवी के नहाने जाने की प्रतीक्षा में बैठा हुआ था। सती ने स्नान करने जाते समय मुजरिम को बताया कि वह स्नान करने जा रही है और सुकुमार का ध्यान रखा जाये। उसके मन में विचार और उद्देश्य की पवित्रता थी और उसका मुजरिम पर पूरा भरोसा था।

'उस समय मुजरिम न्याय और निर्णय का एक प्रामाणिक और विश्वविख्यात ग्रंथ पढ़ रहा था। एक दिलचस्प बात बताने की आज्ञा माननीय अदालत इस प्रोसिक्यूशन

को दें। मुजरिम उस ग्रंथ को उल्टा करके पढ़ रहा था। जैसे ही सती देवी ने गुसलखाने में प्रवेश किया, मुजरिम के अंदर बैठे हत्यारे ने सर्प की तरह अपना फन उठा लिया।

'सुकुमार के कमरे में प्रवेश करते ही मुजरिम ने एक क्षण भी बर्बाद नहीं किया। इतनी ही देर में उसने पतलून की जेब में रखे हुए उपकरण को बाहर निकाला और पहले से तैयार रखे गये साकेट में प्लग घुसा दिया।

'सुकुमार बेसुध पड़ा सो रहा था। मुजरिम ने उसका एक पैर (अगर सही बताया जाये तो दाहिना पैर) बिस्तर से उठाकर धीरे से जमीन पर रख दिया। पावरलाइन इंसुलेशन का हटाया भाग उसने सुकुमार की बाईं कांख में रखा। हाथ उठाकर ऐसा किया था। इसके बाद हाथ को पहले की तरह रख दिया।

'मुजरिम के जीवन की वह निर्णायक घड़ी इस तरह से आ ही गयी। यह एक ऐसा भयानक क्षण था, जिसके बारे में सोचकर अंतरात्मा से परिपूर्ण कोई भी पिता या मनुष्य थरथरा उठता या स्वयं को धिक्कारने लगता।

'मुजरिम ने पावरसाकेट के स्विच को उंगली से दबा दिया।

'सिर्फ एक क्षण!....एक सिसकी लिये बगैर ही सुकुमार खत्म हो गया।

'उसकी अपंगता उसे रोने भी नहीं देगी। यह बात मुजरिम अच्छी तरह जानता था। आदरणीय अदालत भी यह बात समझ ले।

'जब मुजरिम को विश्वास हो गया कि सुकुमार मर चुका है तो उसने स्विच आफ कर दिया। प्लग और वायर को मोड़-माड़कर जेब में डाल लिया और कमरे से बाहर निकल आया।

'शेष सब कार्य भी मुजरिम के मन-मुताबिक चलते रहे।

'डाक्टर के आने और मौत का पता चलने तक मृत देह ठिठुरकर सिकुड़ चुकी थी। देखती आंखों कोई गड़बड़ न होने और कोई संदेहास्पद स्थिति न होने से ऐसे मरीजों की मृत्यु अचानक हुआ करती है, डाक्टर ने बिना शक इस मौत पर स्वाभाविक मृत्यु का ठप्पा लगा दिया।

'इलेक्ट्रिक क्रिमेटोरियम के बारे में मुजरिम ने पहले से ही पता कर लिया था। इसलिए उसे मालूम था कि सब कुछ जल्दी हो जायेगा।

'एक दुखी पिता की भूमिका भी मुजरिम ने बखूबी निभाई।

'इस धरती पर जन्मे अपराधियों में प्रथम समुचित सजा के योग्य, निंदनीय, नीच, निकृष्ट, उपद्रवकारी, समाजद्रोही और भयंकर गलती करनेवाला यह मुजरिम आदरणीय अदालत के सामने कठघरे में खड़ा है।

'माननीय अदालत अगर आज्ञा दे तो प्रोसिक्यूशन यह वाद-विवाद यहीं खत्म करना चाहता है।'

अनूप ने कांपते हाथों से कागज का दूसरा बंडल उठाया और उसे खोलकर पढ़ने लगा।

सत्रह

अनूप पसीने से तर-बतर था। कागज़ के ऊपर लिखा शीर्षक 'आत्मरक्षावाद' देखते ही उसके मन में कई तरह के विचार उठने लगे।

इस अपराध-पत्र को पढ़ते समय मां कमरे में झांककर देख गई हैं, इस बात का भी अनूप को पता नहीं चला।

मां ने सोचा कि अनूप दफ्तर के कुछ जरूरी कागजात पढ़ रहा है। इसलिए उन्होंने अनूप को पुकारा भी नहीं। वे यात्रा की तैयारी में संलग्न हो गयीं।

अनूप सीढ़ियों से दौड़कर उतरा और स्टोर-रूम में पहुंचा। उसने स्टोर का दरवाजा खोला। इस स्टोर, यानी भंडारघर का रसोईघर से कोई संबंध नहीं था। यह तो गुसलखाने के बगल में बना एक छोटा सा कमरा था। यहां रद्दी चीजें रखी जाती हैं। यहां रद्दी पैकिंग केस और पुराने खराब ट्रंक पड़े हुए थे। उसका दरवाजा बंद नहीं किया जाता था। दीवार पर बने स्लैबों पर कई चीजें रखी हुई थीं, जिन पर धूल जमी हुई थी।

अनूप ने एक एक स्लैब में छानबीन करनी शुरू कर दी। नीचे से ऊपर तक यह सिलसिला चल रहा था। सबसे ऊपरवाले स्लैब को देखने के लिए सबसे नीचेवाले स्लैब पर चढ़ना पड़ा।

उस स्लैब पर जहां दो दीवारें मिलती हैं, वहां एक प्रेशर कुकर के खाली डिब्बे में प्लग और तार पड़े हुए थे। कांपते हाथों से अनूप ने उसे उठाया। प्लग से जुड़ी एक लीड की तार तीन इंच दूरी तक नंगी थी। उसका इंसुलेशन हटा दिया गया था। पतले तांबे के तार मानो गोंद में डुबो दिये गये हों। वे आपस में चिपक गये थे और उनका रंग काला पड़ गया था।

तार को हाथ में उठाये हतप्रभ सा खड़ा वह एकटक उसे घूरता ही रहा। उसका हाथ सफेदी और मिट्टी से भर गया था।

रोज से अलग उस कमरे में बत्ती जल रही देखकर मां वहां आ पहुंची। संभालकर रखे जाने वाले कपड़े वे हाथ में लिये हुए थीं।

"तुम क्या ढूंढ़ रहे हो?"

अनूप ने नकारात्मक सिर हिलाया और 'उंहूं' का शब्द कंठ से निकाला, यानी कुछ नहीं।

वापस जाते हुए मां ने कहा, "सब जगह धूल ही धूल भर गयी है। अगर कमरे का इस्तेमाल नहीं किया जाये तो उसकी हालत ऐसी ही हो जाती है। पर क्या किया जा सकता है?"

मां से कहूं या न कहूं—इस दुविधा में पड़ गया था। अनूप।

फिर सोचा कि न बताने में ही भलाई है। अगर किसी तरह वे इस बात पर विश्वास कर भी लेंगी, तो उनके अन्य विश्वास भी छिन्न-भिन्न हो जायेंगे। और उन सब का खंडित होना मां सहन नहीं कर पायेगी।

प्लग और तार यथास्थान रखकर अनूप ने अपना हाथ पोंछा और ऊपर के कमरे में चला गया।

कुर्सी पर बैठकर, मेज पर रखा कागजों का बंडल उठा लिया। लिखावट इसमें भी सुंदर थी, मगर जल्दबाजी में लिखा गया प्रतीत होता था। ऐसा लगता था कि कोई जोर से लगाम खींच रहा है, इसलिए उनकी विचारधारा में तेजी आ गयी थी। मेनोन नामक मुजरिम को जिन दलीलों से निरपराध साबित किया जा सकता है, उन्हीं की काट उसमें थी। अपराध को अस्वीकार नहीं किया, मगर सबूत काफी नहीं हैं, यह प्रमाणित किया गया था।

शीर्षक और उसके नीचे खींची गयी एक रेखा के बाद यह लिखा हुआ था—

प्रोसिक्यूशन की दलीलों में कोई दम नहीं है। वह मात्र शब्दों की कलाबाजी पर टिका एक जोरदार भाषण है। मुजरिम अपराधी है, इसे सिद्ध नहीं किया जा सकता, न ही किया जा सकेगा। मुजरिम को अपराधी प्रमाणित करने के लिए पेश की गयी दलीलें बिलकुल बचकाना हैं। ऐसा कोई प्रमाण नहीं है कि अभियुक्त ने इस ढलती उम्र तक कोई अपराध किया हो।

इतना ही नहीं, उन्होंने निष्पक्ष होकर अपना कार्य किया है। एक ख्यातिप्राप्त न्यायाधीश रहे हैं वे। एक न्यायाधीश की हैसियत से दिये गये उनके फैसलों का माननीय अदालत निरीक्षण कर सकती है।

अपराधियों को संदेह की छाया में खड़ा करके ही ये फैसला सुनाते थे। प्रोसिक्यूशन यानी विपक्ष के वकील को कई बार इस बात पर शिकायत और नाराजगी होती थी। सरकारी वकील द्वारा प्रस्तुत सबूतों की छानबीन करके उसमें दिखाई देनेवाले छिद्रों और विपरीत तत्वों को वे सबके सामने उंगली उठाकर पेश करते।

उनकी अदालत सरकारी वकील के लिए रोज की सिरदर्दी थी। सरकारी वकील इस बात का बदला अपराध-पत्र द्वारा ले रहे हैं। माननीय अदालत को चाहिए कि वे अपने अनुभवों के आधार पर आरोपों का निरीक्षण-परीक्षण करें।

गिरफ्तारी के दिन से लेकर मुजरिम ने मौन व्रत रखा हुआ है। उसने न तो अपराध स्वीकार किया है, न ही अस्वीकार किया है। माननीय अदालत न्यायपूर्ण निर्णय लें, यही मुजरिम की इच्छा है।

अगर यह बात स्पष्ट हो जाती है कि वह अपराधी है तो वह खुशी से मृत्युदंड भी स्वीकार करने को तैयार है, ऐसा उसके हावभाव से प्रतीत होता है। वह समझता है कि इस प्रकार आत्महत्या जैसे जघन्य अपराध से उसका बचाव हो सकता है।

उसका जीवन ही एक दारुण दुख-भरी कहानी है। यह बात तो माननीय अदालत को अब तक समझ में आ गयी होगी। अभियुक्त यह सब सहानुभूति अर्जित करने के लिए नहीं कह रहा है। यह तो एक सत्य है।

उसके प्राणों से भी प्यारा था उसका वह मृत पुत्र, जो शारीरिक ही नहीं, अपितु मानसिक रूप से भी अपंग था। इस बात का उसे भारी दुख भी था।

बच्चे की मृत्यु के बाद वह इस जीवन और दीन-दुनियां से उदासीन हो चुका है। हृदय-रोगी होने के बावजूद उसने दवाई लेना और भोजन पर रखे नियंत्रण को छोड़ दिया। ये बातें भी यह इंगित करती हैं कि वह बहुत दुखी था।

जहां तक बच्चों का सवाल है, अभियुक्त एक अच्छा पिता साबित नहीं हुआ, ऐसा कहना दुनिया के तमाम पिताओं के प्रति घोर अन्याय होगा।

न जाने कितने देवी-देवताओं से मनौती मांगकर और हाथ जोड़कर प्राप्त किये थे ये बच्चे! यह साबित करना मुश्किल है, क्योंकि देवी-देवताओं को साक्षी बनाकर अदालत में पेश नहीं किया जा सकता।

अभियुक्त इस संसार का सबसे श्रेष्ठ पिता है, यह कहना भी मुश्किल है। सर्वोपरि पिता तो केवल ईश्वर ही हो सकता है। अदालती जीवन में (यह अदालती जीवन कितना समय लेता है, यह माननीय अदालत को बताने की जरूरत नहीं है) बच्चों के लिए उनकी आवश्यकतानुसार समय देना कई बार मुश्किल भी हो जाता है। यह ठीक तो नहीं था, मगर आदरणीय अदालत इसे गलत नहीं समझे तो कृपा होगी।

यह हो सकता है कि बच्चे की जान लेने के लिए अभियुक्त ने थोड़े से विष की मांग की। ऐसा उसने नहीं किया, यह कहने की इजाजत अभियुक्त नहीं देता। यह तो केवल एक निराश और दुखी पिता की स्वाभाविक प्रतिक्रिया ही मानी जा सकती है। यह उसका विलाप ही था। मगर इसका मतलब यह नहीं है कि अगर डाक्टर विष नहीं देगा तो वह खुद दे देगा। चाहे डाक्टर उसे विष देता या न देता, मगर वह उसे शिशु के पास कभी नहीं ले जा सकता, इस बात को अभियुक्त अच्छी तरह से जानता था।

अगर उसने एक डाक्टर से जहर मांगा था, तो और सौ डाक्टरों से अपने बेटे के लिए दवाई लिखवाई भी होगी और उसे नियमित रूप से खिलाने के लिए कोई न कोई बंदोबस्त भी किया होगा।

उन डाक्टरों में से चाहे कितनों को साक्षी बनाकर आप उनकी गवाही ले सकते हैं, मगर अभियुक्त के मौन रहने से उन व्यक्तियों को बुलाया नहीं जा सका। इसकी पत्नी जो उनके नामों से परिचित थी, अब इस संसार में नहीं है। अत: कुछ किया नहीं जा सकता।

इन लोगों की अनुपस्थिति में सरकारी वकील की दलीलें बिलकुल खोंखली मालूम देती हैं।

कभी न कभी उसका बेटा ठीक हो जायेगा, यह विश्वास अभियुक्त के मन में बना ही रहा। ऐसे विश्वास ही अक्सर एक दुखी पिता को इन हालात में जीने की प्रेरणा देते हैं।

शुद्ध उद्देश्य शुद्धता वाले लोगों पर कालिख पोतना बहुत आसान है। आप किसी व्यक्ति को किस नजरिये से देखते हैं, इसकी बड़ी मान्यता है। जब आप चलने लगते हैं। तो भूमि चपटी दिखाई देती है, जबकि कौन नहीं जानता कि दुनिया गोल है?

ऐसा कोई पिता इस धरती पर नहीं होगा जिसने अपने बच्चों को डांटा-डपटा न हो। पिता छड़ी उठा ले तो क्या वह अपने बच्चों को मार डालेगा? यदि ऐसा है तो इस संसार के नब्बे फीसदी पिताओं को खूनी समझकर सजा देनी पड़ेगी।

सजा की बात करते समय एक जरूरी बात कहनी है। अभियुक्त जितने दिनों न्यायाधीश के पद पर रहा, उसने किसी निरपराध को सजा नहीं दी, पूरे विश्वास से कहना कठिन है। न्यायाधीश भी आखिर इंसान ही होता है। उसकी भी कुछ सीमाएं होती हैं। सबूत कई बार केस को गलत दिशा में ले जाते हैं, इसलिए यथासंभव शब्द का प्रयोग अक्सर ही करना पड़ता है।

इस शब्द का प्रयोग न केवल अदालत की कार्रवाई में करना पड़ता है, बल्कि मनुष्य के निजी कार्यक्षेत्रों में भी करना पड़ता है। यथासंभव प्रेम करो, यथासंभव विश्वास करो और यथासंभव सोच-विचार करो। व्यवहार में यही सब होता है।

प्रत्येक मनुष्य में अलग अलग खूबियां होती हैं। गुणों से परिपूर्ण इस संसार में कोई नहीं हो सकता।

हर: कोई यही चाहता है कि उसके घर जन्म लेनेवाला बच्चा सर्वांगपूर्ण और बुद्धिमान हो। एक अंग-भंग या अपंग बच्चे का जन्म मां-बाप की किसी गलती से नहीं होता। इसे संजोग, या पूर्व जन्मों के पापों का फल, किस्मत का लेखा, देव-कोप, या किसी शाप को परिणाम—कुछ भी कहा जा सकता है। जन्मना कारण कोई भी हो, ऐसे बच्चे की पूरी देखभाल करना माता-पिता का कर्तव्य है। इस मामले में अभियुक्त ने किसी प्रकार की कमी दिखाई है, ऐसा कहना पाप है।

स्नेह हथेली पर रखकर नुमाइश करने की चीज तो नहीं है। दुनिया की अन्य चीजों का प्रदर्शन करना कोई मुश्किल कार्य नहीं है। परस्पर प्यार करनेवाले दो व्यक्तियों को देखकर एक तीसरा व्यक्ति उसकी थाह तक कहां पहुंच पायेगा?

देखने वालों में गलतफहमी का शिकार होने की पूरी संभावना रहती है। किसी कड़वी दवाई को गोकर्ण (आउंस गिलास) में डालकर एक मां अपने बच्चे को सीधा लिटाकर पिलाने की कोशिश कर रही हो। बच्चा उसे कहीं थूक न दे, इसलिए कुछ क्षणों तक के लिए वह उसकी नाक को उंगली से हल्के दबाये रहती है। कोई बाहरी लोक से आया व्यक्ति, जिसे इस बात का ज्ञान नहीं कि नाक बंद करने पर सांस लेने के लिए बच्चा अपना मुंह खोलेगा और दवाई कंठ से नीचे चली जायेगी, तो यही सोचेगा कि यह कैसी मां है जो अपने बच्चे को दम घोटकर मार देना चाहती है। ऐसा व्यक्ति यदि गवाही देगा तो उसकी बात पर कोई विश्वास नहीं करेगा।

अभियुक्त को सरकारी वकील बेवकूफ समझता है। सरकारी वकील घुमा-फिराकर अभियुक्त की मानसिक अवस्था पर कटाक्ष करता है और कहता है कि उसने अपने पुत्र सुकुमार को मार डालने का अच्छा अवसर निकाला था। मगर सोचने की बात यह है कि ऐसे अनेक अवसर आये थे, तो फिर अभियुक्त ने उन अवसरों का फायदा क्यों नहीं उठाया? यह काम उन क्षणों में करना कठिन तो नहीं था। नींद की दवाइयां जो उसे नित्य दी जाती थीं, उनमें से किसी एक की मात्रा बढ़ाकर दे देना अधिक सुविधाजनक था और कौन इस बात को जान पाता?

नित्य प्रात: उठकर वह सबसे पहले अपने पुत्र का मुंह देखता था। यह बात सभी जानकार कहते हैं। वह ठीक हो रहा है या नहीं, यही देखा जाता था, न कि वह जीवित है या मृत।

सरकारी वकील का कहना है कि सुकुमार को किसी संस्था में भर्ती कराने के लिए अभियुक्त ने व्यग्रता दिखाई थी। तो यह तो एक पिता के अपने पुत्र के प्रति असीम प्रेम को दर्शाता है। उसको यह मालूम था कि उसके जीवन की संध्या आ चुकी है, कुछ गिने-चुने दिन ही हैं। न जाने कब हृदय की ताल बंद हो जाये और उसका बेटा निराधार हो जायेगा। जब तक सुकुमार जीवित है और उसकी स्वाभाविक मौत नहीं होती, तब तक उसकी सही देखभाल होती रहे। सती के सुनहरे भविष्य, अनूप के जीवन की खुशी और स्वयं उसके लिए भी यही उचित मार्ग है, यह बात अभियुक्त अच्छी तरह जानता था।

सरकारी वकील पूर्वाग्रह के चश्मे से सारी घटनाओं को देख रहा है। इसी चश्मे से अभियुक्त का बेटे को चूमना और चाकलेट देना शक की नजर से देखा जा रहा है। माननीय अदालत इंसानियत के नाते इस चश्मे को उतारकर दूर फेंक देंगे, ऐसा हमें पूर्ण विश्वास है।

अभियुक्त के मौन धारण करने से, जो बातें सामने आयी हैं, उन्हीं के आधार पर गवाही दी जा सकती है।

अभियुक्त ने प्लग और तार खरीदा था, इसका कोई प्रमाण नहीं है। अभियुक्त के नाम से काटा गया बिल भी पेश नहीं किया गया। पैसा चुकाने के लिए उसका कोई चैक भी माननीय अदालत के सम्मुख नहीं लाया गया। दुकान के मालिक की अभियुक्त से कोई नाराजगी भी हो सकती है। (अभियुक्त एक न्यायाधीश थे, यह बात तो सबको ज्ञात है।) हो सकता है, उन्होंने इनको किसी केस में सजा दी हो। इस व्यक्ति के रिश्तेदार केरल में भी हैं जो वहां अपना धंधा करते हैं। यह तथ्य बयान में उसने स्वीकारा भी है। केरल जाकर उसके रिश्तेदारों से सबूत एकत्रित करने में अभियुक्त के असहयोग और समय की कमी के कारण कुछ किया नहीं जा सका, यही सच है।

अथवा, अभियुक्त ने ऐसा कोई तार और प्लग खरीदा भी हो तो वह हत्या के उद्देश्य से खरीदा था, यह साबित नहीं किया जा सकता। उस दिन अन्य लोगों ने भी उस दुकान से तार और प्लग खरीदा था। उनमें से किसी ने हत्या करने के लिए इन चीजों का उपयोग किया हो, यह ज्ञात नहीं।

अभियुक्त को पहले से ही शक की नजर से देख रहे सरकारी वकील को जब कोई सबूत नहीं मिला तो ऐसे मनगढ़ंत सबूत का आविष्कार किया गया। तार के एक छोर में लगा जला हुआ मांस मनुष्य का ही है, ऐसा किसी फोरेंसिक एक्सपर्ट की रिपोर्ट में नहीं कहा गया। किसी का गढ़ा गया सबूत है यह तार और प्लग। अनूप कुमार ने अपनी किसी जरूरत के लिए पहले कभी मंगवाकर रखा होगा यह प्लग और तार। प्लग से जुड़े हुए तार के टुकड़े से किसी चूहे के मृत शरीर के अवशिष्ट रह गये होंगे।

उस दिन अभियुक्त सारी शाम कानून की पुस्तकें पढ़ने में तल्लीन रहा। हत्या की तैयारी में बैठा कौन सा व्यक्ति पढ़ाई कर सकता है?

मृत व्यक्ति ने जरा सी चूं तक नहीं की। किसी ने ऐसा करते भी नहीं सुना। अनूप कुमार और सती देवी भी उस समय घर पर मौजूद थे। एक मक्खी जैसे छोटे प्राणी तक को पता न चले और घर में हत्या हो जाये, क्या यह मुमकिन है? रोना तो नहीं आता था, मगर मृतक गले से आवाज तो निकाल ही सकता था।

अचानक ही इतनी मात्रा में बिजली दौड़े तो शार्ट सर्किट होने पर साधारणतया फ्यूज का उड़ना जरूरी है। मगर ऐसा नहीं हुआ। दिल्ली इलैक्ट्रिक सप्लाई की नियमावली में स्पष्ट बताया गया है कि नियमानुसार बताये गये फ्यूज का इस्तेमाल ही करना चाहिए। अनूप जैसे एक जिम्मेदार अफसर का नियम के विरुद्ध मोटा-तगड़ा फ्यूज लगाना विश्वास के परे है।

अभियुक्त ने फ्यूज की पहले से ही तैयारी कर रखी थी, यह बात सरकारी वकील ने स्पष्ट नहीं की है। उस घर में मेन स्विच कहां है या मेन फ्यूज कहां है, यह बात अभियुक्त जानता भी नहीं होगा। बिजली का उपयोग किस तरह होना चाहिए, यह हुनर उसने जीवन में नहीं सीखा था, बल्कि नियम और नियम संबंधी पुस्तकें ही उसने अपनी जिंदगी में पढ़ी नहीं थीं।

अभियुक्त को सुकुमार के कमरे में प्रवेश करते हुए, प्लग साकेट में डालते हुए, सुकुमार का बायां पैर जमीन पर रखते हुए, कांख में तार छुआते हुए, स्विच दबाते हुए, और प्लग और तार को बाहर निकालते हुए किसी ने भी नहीं देखा।

इस तरह के रोगियों का बिना किसी पूर्वानुमान के दम तोड़ना सहज और स्वाभाविक है, यह बात माननीय अदालत को विद्वान डाक्टरों ने बतायी थी। इसलिए सुकुमार की मृत्यु प्राकृतिक और सहज स्वाभाविक होने के अलावा बिना किसी परेशानी के हुई है, ऐसा ही मानना पड़ेगा।

यही नहीं, डाक्टर, मोहन सिंह जैसे प्रतिष्ठित और अनुभवी डाक्टर द्वारा इसे साधारण मौत बताने के बाद ही मृतदेह के दाह-संस्कार की तैयारियां की गयीं। यद्यपि डा. सिंह अनूप कुमार के मित्र हैं, मगर वे अपने चिकित्साशास्त्र की सीमा लांघकर दोस्ती के नाम पर झूठा सर्टिफिकेट देंगे, ऐसा सोचना भी पाप है।

डाक्टर के अलावा अड़ोसी-पड़ोसियों ने भी आकर मृत देह को देखा था। उनमें से किसी के मन में जरा भी संदेह नहीं हुआ।

क्रिमेटोरियम के अफसरों को भी किसी तरह का संदेह हुआ हो, यह ज्ञात नहीं है।

संक्षेप में, अभियुक्त ने कोई गलती की हो, ऐसा सोचने लायक कारण परिस्थितियों, सबूतों, दलीलों आदि के आधार पर नहीं मिल रहा।

अभियुक्त की गलत कार्य करने की प्रेरणा के नाम पर सरकारी वकील एक बड़ी अनोखी दलील प्रस्तुत कर रहे हैं। उसके बारे में जितना कम कहा जाये, वही ठीक है। अपनी इज्जत बनाये रखने के लिए एक पिता ने अपने पुत्र की हत्या कर दी, यह दलील दी जा रही है। एक बददिमाग, बदतमीज, धूर्त, शराबी, दुष्ट और पैशाचिक प्रवृत्तिवाला पुत्र होता तो इस दलील में दम जरूर होता। तब कुछ सोचने पर बाध्य भी हुआ जा सकता था।

अनूप कुमार, सती देवी और डा. मोहन सिंह के बयान पर बगैर सोचे-समझे पूर्ण रूप से विश्वास नहीं किया जा सकता।

सती देवी मानसिक परेशानियों का इलाज करा रही है। उसकी कई बातें परस्पर विरोधी हैं। अभियुक्त सुकुमार की हत्या करेगा, ऐसा उसे पूर्ण विश्वास था, फिर भी उसकी देखभाल करने के लिए अभियुक्त से कहकर वह स्नान करने के लिए गुसलखाने में गयी। इन बातों में परस्पर विरोध साफ झलक रहा है और सती की मानसिक स्थिति कितनी डावांडोल है, यह भी दिखाई दे रहा है।

अनूप कुमार के मन में स्पष्ट रूप से एक भय था। वह सती देवी से प्रेम करता था और उसके सपनों के साकार होने में सुकुमार एक रोड़ा बना हुआ था। ऐसा सरकारी वकील ने भी बयान दिया था। इस परिस्थिति में सुकुमार के मरने का इल्जाम उस पर लग सकता है, इस बात का उसे भय था। अतः अनूप कुमार को अपने बचाव के लिए एक साक्षी के रूप में अदालत में प्रवेश करने के लिए सरकारी वकील ने बाध्य किया। यह सब एक अच्छे प्रेमी व्यक्ति के बचाव में भी मार्गदर्शक हुआ। एक अच्छा दोस्त होने के नाते भी डा. मोहन सिंह ने अनूप कुमार की मदद के लिए अदालत में पहुंचना जरूरी समझा।

सती देवी को अनूप पर शक था, ऐसा मनोरोग चिकित्सक डा. पुरोहित ने बयान दिया है।

पुत्र की मृत्यु और अपनी बदकिस्मती पर अपना छलनी हृदय लिये, मन से मृत्यु का आह्वान करता हुआ। अभियुक्त मुजरिम के कठघरे में खड़ा हुआ है। बुढ़ापे, पितृत्व और निर्दोषिता पर की जानेवाली सबसे बड़ी क्रूरता है यह।

इन हालात में माननीय अदालत से मेरी विनम्र प्रार्थना यह है कि वह जो शारीरिक और मानसिक यातना भुगत रहा है, उसका अंत करने के लिए उसे निरपराधी घोषित करके छोड़ दिया जाये।

अभियुक्त के लिए दी जानेवाली दलीलों को अदालत की आज्ञा से यहीं पर खत्म करने दिया जाये।

इसके अलावा कागज का एक और पन्ना भी था।

यह इस केस का न्यायपूर्ण फैसला था। फैसला पन्ने के आखिर में, एक वाक्य में सीमित था। नजरें दौड़ाने पर अनूप ने जो पढ़ा, वह यह था—

''रिटायर्ड हाईकोर्ट जज भास्कर मेनोन नामक व्यक्ति के खिलाफ अदालत में पेश की गयी दलीलों और सबूतों को गौर से देखा जाये तो ऐसा कोई विश्वसनीय, असंदिग्ध प्रमाण नहीं है, जिससे उन्हें अपराधी सिद्ध किया जा सके, इसलिए यह अदालत अभियुक्त को अपराध-मुक्त करती है।''

क्षण भर भी और बरबाद किये बगैर अनूप ने अगला बंडल खोला, और उसे सीधा किया। उस पर लिखी बड़ी विचित्र पंक्तियों को रेखांकित किया गया था।

अठारह

शीर्षकविहीन उस पोथी को पढ़ना आरंभ करते ही अनूप की हैरत बढ़ती जा रही थी।

उसके ऊपर यह लिखा हुआ था : 'इस प्रपंच के बारे में सर्वोच्च अदालत की जानकारी, विचार-विमर्श, निर्णय और दया के लिए दी गयी एक पिता की याचिका।' विवरण इस प्रकार है—

मेरे घर में चार बच्चों ने जन्म लिया। पहली तीन कन्याएं हैं। एक बेटा भी पैदा हो, यह मेरी तीव्र इच्छा थी। सभी देवी-देवताओं के आगे मैंने प्रार्थना की।

दूसरी और तीसरी बेटियों से, उनके बेटा न होने की वजह से, शुरू शुरू में मुझे कम प्रेम था। यहां तक कि जो गलती उन्होंने नहीं की थी, उसके लिए भी मैंने उन्हें सजा दी। एक पिता होने के नाते मेरे स्वार्थ और मिथ्या भ्रम ने ही इस अपराध के लिए मुझे प्रेरित किया। यह मेरी बहुत बड़ी गलती थी, यह मैं अब समझ रहा हूं। अभी ही नहीं, कुछ वर्षों पहले से ही मुझे यह महसूस होने लगा था। मगर संसार की किसी भी विधि-संहिता में इस तरह की एक गलती के लिए कोई दंड नहीं लिखा गया। दंड भोगे बगैर मेरे मन को शांति भी नहीं मिलेगी। आदरणीय सर्वोच्च न्यायालय मुझ पर दया करके न्यायसंगत और कायदे-कानून के मुताबिक दंड सुना दे। इस प्रकार की नियमपुस्तकों में इस दंड को स्थान मिलना चाहिए और मेरे जैसे पिताओं पर उसे लागू करने की सुविधा भी होनी चाहिए।

मैंने अपने पुत्र को बेहद प्यार किया था। यह एक बहुत बड़ी गलती थी, इस बात को मैं अब समझ रहा हूं। मंदबुद्धि और असहाय बेटे के स्वास्थ्य के लिए हर तरह की चिकित्सा मैंने कराई। यह मैंने पुत्र-प्रेम में विवश होकर किया। इनमें कई चिकित्सा-विधियां पीड़ादायी और कई दवाएं कड़वी भी होंगी। निषेध या मना करने की हिम्मत उस बालक में नहीं थी।

उसकी बीमारी दूर करने के लिए वह जरूरी नहीं था, यह कहना तो कठिन है; लेकिन जरूरी था, यह कहना भी मुश्किल है। इन सबसे अधिक उसका ठीक होना मेरी भी जरूरत थी। प्रकृति ने उसे चाहे जिस रूप में भी निर्मित किया हो, लेकिन वह उससे उबरकर, स्वस्थ होकर मेरे जैसा ही बन जाये, यही मेरा श्रम था। इसके लिए उसे मैंने दुख और कड़वाहट का घूंट पिलाया। यह किस हद तक था, यह मैं नहीं जानता। उसके लिए आवश्यक भोजन, वस्त्र, पानी और प्राथमिक शुचिकरण प्रदान करके छोड़ देना ही पर्याप्त था।

मगर मैंने ऐसा नहीं किया। क्या यह एक अपराध नहीं था? मेरा ऐसा ही विश्वास है। इस अपराध के लिए न्याययुक्त और नियमानुसार दंड देने की कृपया करें।

स्पष्ट शब्दों में कहा जाये तो बिना किसी नुक्स या नुकसान के पैदा हुई शेष तीनों बेटियों की बारी मैंने यह गलती की है। यद्यपि वह गलती चिकित्सा और कड़वाहट से नहीं

भरी थी, मगर उपदेशों के द्वारा—जो मुझे ठीक मालूम देता—जबर्दस्ती उन पर थोपने की कोशिश करता। यह सब कभी डांट-डपट से तो कभी आदेश के बल-बूते होता।

यह सब करने का मुझे क्या अधिकार था? मुझे ऐसा अधिकार है, यह मैंने अपने मन में सोच लिया था। संक्षेप में कहा जाय तो मैंने कानून को अपने हाथ में ले लिया था। मैंने जिन नहरों का निर्माण किया था, उनमें मानो एक प्रवाह के समान थीं वे। मैं उनको जिस दिशा में चाहता था, ले जा रहा था और जरूरत पड़ने पर बांध बनाकर उछलने पर मजबूर भी करता रहा था। क्या यह सब मेरे स्वार्थ के कारण नहीं था?

अगर उन्हें हरे कपड़े पसंद थे, तो मुझे 'ओलोर' (आम की एक किस्म) आम का हल्का पीला रंग भाता था। मैं कहता, यह रंग अच्छा है। ये रंग अच्छा है।

वे रोने लगती थीं।

एक दशक तक मैं उन्हें भारी स्कूल-बैग लेकर स्कूल भेजता रहा। अनावश्यक सवालों का जवाब नहीं दे पाने पर उन्हें सजा दी जाती। वे रोती ही रह जातीं।

इसके बावजूद उन्होंने मुझसे प्यार किया। उस प्रेम का मैं दुरुपयोग कर रहा था।

मेरा स्वार्थ फिर सामने आ गया। मैं चाहता था कि वे कई तरह की परीक्षा में बैठें और हर बार प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण हों। वे (क्योंकि वे 'मेरे' बच्चे हैं) बड़े आदमी बनने चाहिए। उनकी बड़े लोगों से रिश्तेदारी होना चाहिए, उनको बड़प्पन भरी बातें करनी चाहिए। अर्थात इस बड़प्पन के साथ मेरा भी नाम होना चाहिए।

वे लोग न जाने किस तरीके से बड़े होते, पुष्पित-पल्लवित होते या विकसित होते, मगर मैंने अपनी मन-मर्जी के मुताबिक उन्हें अपने बनाये एक पिंजरे में संजो दिया था, जिसमें उनका दम घुटने लगा था। उस पिंजरे के हिसाब से वे बड़े हों, या मेरी ही मांग थी। केवल मेरी। मैंने उनके साथ एक अनजान, अज्ञात व्यक्ति की तरह बर्ताव किया। कानून के बारे में न जानना कोई अज्ञानता नहीं है, ऐसा किसी भी नियम-संहिता के पहले पाठ में लिखा मिलेगा।

इस गलती के लिए भी मुझे न्यायोचित सजा मिलनी ही चाहिए।

इस प्रपंच के सारे कार्य-व्यवहार की ओर ध्यान न देने की जिम्मेदारी होने के कारण सर्वोच्च न्यायालय की व्यस्तता का मैं अच्छी तरह अनुमान लगा सकता हूं। फिर भी मेरी आपसे विनती है कि जितनी जल्दी हो सके, जो गलतियां की गयी हैं, उनका दंड निश्चित हो जाना चाहिए। एक दिल का मरीज होने के नाते मेरे जीवन के दिन गिने-चुने ही हैं।

यह बात तय है कि मेरा कसूर छोटा करके नहीं देखा जाना चाहिए। एक अभियुक्त होने के नाते मैंने अपने खिलाफ ही अपराध-पत्र तैयार किया हैं और माफी की अर्जी भी नहीं दी है। माफ करने से मेरी यातना का अंत नहीं हो सकेगा।

मेरी गलती की गहराई मापनी हो तो दो बातों पर ध्यान देना होगा। पहली, सुमति देवी नामक मेरी दूसरी पुत्री के विवाह की चर्चा। उसके लिए दो रिश्ते आये। जो रिश्ता उसकी मां को पसंद था, मुझे पसंद नहीं था। सुमति की इच्छा क्या है, यह तो मैंने उससे पूछा नहीं,

पर उसकी मां से आखिरी बार कहा—बात ऐसी है, तुम चाहे कुछ भी कहो, इन मामलों में मैं जो ठीक समझूंगा वही करूंगा।

देखा न आपने, कितनी बदतमीजी है यह!

दूसरी कहानी सुकु की है। वह 'औसत बुद्धिवाला बच्चा' नहीं है, यह था मेरा और अन्य लोगों का मत। वह औसत बुद्धिवाला नहीं है, यह निर्णय कैसे लिया जा सकता है? कौन कह सकता है कि किसी असाधारण कार्य के लिए एक ऐसे मानव की रचना नहीं की गयी है?

बगैर कुछ सोचे-समझे मैंने निर्णय लिया और उसका उपचार भी करवाया। इस गलती की गंभीरता बढ़ते बढ़ते आखिर एक दूसरे अपराध तक पहुंच गयी।

मैंने अपने पुत्र की हत्या कर दी।

बहुत सोच-विचार के बाद मैंने अपने आपको विश्वास दिलाया कि यही सही रास्ता है और फिर अपने इन्हीं हाथों से मैंने उसे मौत के घाट उतार दिया।

अब वह मुझे कभी भी वापस नहीं मिलेगा। उसका जन्म किसलिए हुआ था, अब यह दुनिया नहीं जान पायेगी। प्रकृति के एक उद्देश्य को मैंने कुचलकर नष्ट कर डाला।

सबसे पहली बात तो यह है कि जिसे रचने की ताकत मुझमें नहीं है, उसे मैंने नष्ट कर दिया। दूसरी बात, इसके लिए मैंने लुंज-पुंज न्याय की बैसाखियां भी ढूंढ़ लीं।

प्रकृति की इच्छाशक्ति में टांग अड़ाकर मैंने भयंकर अपराध किया है।

सेशन कोर्ट के अपराध-पत्र और उसके खिलाफ दिये बयानों की ओर भी जरा नजर दौड़ाइए। कितने झूठे हैं वे! मेरे खिलाफ लगाये गये अधिकतर आरोप सत्य के विरुद्ध हैं। एक अभियुक्त होने के नाते यह मेरा परीक्षण है; जिसे ध्यान से देखने पर मैंने उसमें कमी और गलतियों के लक्षण पाये हैं।

अपनी गलतियों का निषेध करने या उन्हें मानने के बजाय मौन रहने का आशय यह था कि अगर मैं अपने पुत्र की तरह मुंदबुद्धि, मूक या बधिर होता और अभियुक्त बनकर मुजरिम के कठघरे में होता, तो मुझ पर क्या गुजरती!

मगर ऐसा कहने से वास्तविकता पर पर्दा पड़ जाता है। गलती का निषेध करने से वह असत्य हो जायेगी, यह बात मैं अच्छी तरह जानता हूं। उसको मान लेने का अर्थ है कि मैं दोनों हाथों से सजा की याचना कर रहा हूं। मैंने अपने आपको यह विश्वास दिलाया था कि मैं इस बात से आशंकित हूं कि अगर मैं अपना अपराध कबूल कर लेता हूं तो सती के भावी जीवन पर क्या असर पड़ेगा। और यथार्थ (?) में मैं अपने आप को एक हत्यारा कहलाने और सजा पाने से घबरा रहा था।

बेटी के लिए मैंने यह क्रूर कर्म किया है, यह जानने पर जिंदगी भर उसका मानसिक स्वास्थ्य बिगड़ जाने के डर से भयभीत होकर मैं इधर-उधर करता रहा।

सुकु के जीवन से उलझकर सती की जिंदगी बर्बाद नहीं होनी चाहिए, यह इच्छा अगर मेरे मन में होती तो बचपन से ही मैं दोनों को अलग कर देता।

भविष्य में क्या होनेवाला है, इसका अंदाजा मुझे नहीं था या मैं नहीं देख सका, ऐसा झूठ बोलने से क्या मैं बच सकता हूं? आज मैं इन सब बातों का पूर्वानुमान लगा सकता हूं और इस समय इसकी अव्यक्त छाया भी मुझे दिखाई नहीं दी, ऐसा कहकर मैं अपने आपको कैसे विश्वास दिलाऊं?

सुकु को आजीवन संरक्षण देने के लिए सती रहेगी तो मेरे मन को तसल्ली रहेगी, यह इच्छा उनकी मां के मरने के बाद मुझमें बनी रही। एक ही गड्ढे में आम के दो पौधे लगाये थे मैंने। कई साल बाद उनमें से एक को उखाड़ने पर दूसरा सूख जायेगा, क्योंकि उनकी जड़ें आपस में लिपटकर उलझ गयी हैं, यह बात भी मैं जानता था। आज इस बात से इंकार करने से क्या फायदा?

अन्यथा सती जब विवाहित हो जायेगी तो उसके साथ सुकु और मैं भी रह लेंगे, ऐसे स्वार्थपूर्ण विचार का आस्वादन क्या मैंने नहीं किया? अवश्य किया था, यही सत्य है।

सुकु को किसी नर्सिंग होम में अकेले छोड़ने में मेरा मन हिचकिचा रहा था। साथ ही सती का भविष्य भी बर्बाद हो जायेगा, इस बात से भी मेरा मन संतप्त हो रहा था।

संक्षेप में अगर कहूं तो सुकु में मैंने अपने भाग्य और व्यक्तित्व को देखा। उसकी हत्या करना, जहां तक मेरा सवाल है, आत्महत्या के बराबर था। इतना अधिक था मेरा उसके प्रति स्नेह, अथवा मेरा अपने प्रति प्रेम। मेरे सब कार्य स्वार्थ से ही उत्पन्न हुए थे।

सुकु की हत्या जैसे आत्महत्या से मैंने किससे बदला लिया? सारी प्रकृति और जगत-प्रपंच से, साथ में सती और मुझे पिता समान मानने वाले अनूप से!

मैं चाहे कितने ही बहाने बनाऊं कि मेरा उद्देश्य यह नहीं था या कितनी ही कसमें खाऊं, लेकिन मुझे अच्छी तरह मालूम था कि जिन परिस्थितियों में हत्या या आत्महत्या की गयी है, सारा संदेह अनूप के सिर ही जायेगा।

होशियार, समझदार और हठीला अनूप एक न एक दिन सती को सुकु से, यानी मुझसे जरूर अलग कर देगा यह मेरा पूर्ण विश्वास था। अब वह इस जीवन में कभी भी अनूप के साथ नहीं जायेगी, इसी बात को पक्का किया था न मैंने इसके जरिए?

सुकु का मृत शरीर देखने पर सती को अप्रत्याशित आघात पहुंचेगा, यह बात क्या मैं नहीं जानता था? इस बात से मैं अनभिज्ञ था और निरपराधी हूं, यह मैं अब नहीं कहूंगा।

मेरे मरने पर उसके हृदय को जो आघात पहुंचेगा, उसे देखने का एक दुर्लभ अवसर था यह। संभव है, उसे ही देखने की इच्छा मेरे मन में रही हो!

जब मैं और सती नहीं रहेंगे, तब किस स्थिति में रहेगा सुकु, यह सोचकर मेरा मन उद्विग्न हो रहा था। अपने मरणोपरांत और सती के विवाह के बाद अनाथ हुए स्वयं को ही याद कर रहा था मैं! यही वास्तविकता है।

सुकु को खत्म करके, उसे इस नरक और भविष्य के कष्टों से मुक्त करके, सती का अनूप के साथ विवाह करके, मैं अपना यह दुखी जीवन नष्ट कर दूंगा, इसी निश्चय ने मुझे उस ओर प्रेरित किया। मुझे मरना बिलकुल पसंद नहीं था। पर एक आत्महत्या भी जरूरी

थी। इसलिए मैंने अपने प्रतिरूप को मारकर अपने हाथ साफ कर लिये। मुझे मरने की जरूरत नहीं पड़ेगी, यह मुझे मालूम था। सती को अनूप के पास सुरक्षित देखकर मैं मर जाऊं तो अच्छा हो, यही मेरा निश्चय और इच्छा थी। पर ऐसा होते देखना मेरे नसीब में नहीं है, यह भी मैं जानता था। उस स्थिति में मुझे मरना भी नहीं पड़ेगा। सुकु की मृत्यु से दुखी और थकी-हारी सती, उस मृत्यु के लिए अनूप को कसूरवार ठहरायेगी और सारा जीवन मेरे साथ बनी रहेगी! यही था मेरा पितृवात्सल्य!

मेरा मन मुझे बंदर की तरह नचा रहा था। मेरे मानस-पटल पर स्पष्ट दिखाई देनेवाले विचार, अभिलाषाएं, निर्णय और गूढ़ आलोचनाएं उस समय अनजाने में पनपे अपराधी उद्देश्यों के मुखौटे मात्र थे।

मैंने यह सब जान-बूझकर नहीं किया, ऐसा संतोष मुझे नहीं मिल पा रहा! 'मैं' का अर्थ है, वह सब कुछ जो मुझमें है। आमाशय, आंत, हृदय आदि शरीर के हिस्से बाहर तो दिखाई नहीं देते, मगर मेरे अंदर ये सब विद्यमान नहीं है अथवा उनकी प्रवृत्तियों का उत्तरदायित्व मेरा नहीं है, ऐसा कहना युक्तिसंगत नहीं है।

मेरे सब कार्यों का प्रेरक केवल स्वार्थ ही था। मुझे हमेशा अपने अंतर्मन की ओर ले जानेवाली शक्ति थी मेरा अहं भाव और 'मुझको' और 'मेरा' नामक उपभाव! यही मेरे प्रेरणा-स्रोत थे।

मैंने अपने आपको विश्वास दिलाया कि जानू में पीड़ा सहन करने की असाधारण शक्ति है। कारण यह कि ऐसा विश्वास होने से मुझे उसके दर्द में दर्द का अनुभव नहीं करना पड़ेगा। उसके लिए दुख-दर्द तिनके के समान निकृष्ट है, ऐसा मैंने अपने आप को समझा दिया था।

मेरी जीवन-संगिनी की छाती में अर्बुद यानी कैंसर है, इसका मुझे काफी देर तक पता नहीं चला। सही बात तो यह है कि मैंने यह सब जानने की चेष्टा भी नहीं की थी। क्या उसके चेहरे पर पीड़ा की झलक कभी भी प्रकट नहीं हुई? क्या मैंने उसे देखने की कोशिश की थी?

मैंने सर्वाधिक सर्वप्रथम प्रेम केवल अपने आपको ही किया है। उसके बाद अपने प्रतिरूप और अपने शरीर के एकांश सुकु को। वह भी प्रिय था। मैंने अपने शेष बच्चों और अन्य लोगों को केवल उपकरण मात्र समझा। उनका मेरे प्रति जो स्नेह था, उसके बलबूते पर मैंने उन्हें कसकर बांध दिया था। अपनी सुख-सुविधाओं के लिए अपनी मानसिक और शारीरिक आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए मैंने उनको इस्तेमाल किया।'

मैं अपनी इस अपराध-वृत्ति के बारे में कह रहा हूं। यह मुझमें नहीं है, ऐसा मैं नहीं कह रहा हूं, बल्कि यही एक प्रवृत्ति मुझमें है और यही मेरे दुख का कारण है।

इस संकट से मुझे उबार लीजिए और मुझे न्यायसंगत और नियमानुसार दंड देने की व्यवस्था भी कर दीजिए।

इस प्रपंच में अदृश्य रूप में ही सही, पर यह सम्माननीय सर्वोच्च न्यायालय भी

विद्यमान है, ऐसा मेरा दृढ़ विश्वास है। इसके पास सही ढंग से बने विधि-विधान भी होंगे। उन नियमों का एक छोटा सा अंश ही इस वक्त मेरे मन में प्रवेश कर सका है।

अगर ऐसा नहीं होता तो इस जीवन-संध्या में मेरे मन का विश्वरूप मेरे सामने कैसे प्रकट हो गया?

मैं तो अपने अपराधों की हद पर पहुंच चुका हूं। मेरे पुत्र की मृत्यु आने तक मेरी यह बुद्धि और अंतरदृष्टि कहां चली गयी थी? स्नेह के वास्तविक रूप को किसने मुझसे छिपाकर चुपचाप रख दिया था? आप कृपा करके यह फैसला कीजिए कि अपने पापों का प्रायश्चित् मैं किस प्रकार करूंगा।

मैं एक बहुत अच्छा नियमज्ञ हूं, ऐसा अहंकार मेरे मन में बना हुआ था। अब मुझे पता चला कि मुझे कुछ भी मालूम नहीं है।

जन्म से ही स्वार्थी मनुष्य को किसी मुकदमे का फैसला सुनाने, किसी सहजीवी को दंड देनें का अधिकार नहीं है। पूर्ण ज्ञान होने पर ही सही फैसला दिया जा सकता है। मगर ऐसी जानकारी किसके पास है? जो व्यक्ति अपने आपको नहीं जानता, वह भला दूसरे को क्या जान सकता है? मगर अपराध- प्रवृत्ति जब मनुष्य में विद्यमान है, तो उस पर सोच-विचार करना और उसे दंडित करना भी जरूरी है।

सच कहा जाये तो सेशन कोर्ट तो एक बड़े धर्मसंकट में फंसे हुए हैं। उन्हें तो असल में अपना फैसला देने का अधिकार ही नहीं है, मगर फैसला दिये बिना उनका गुजारा भी नहीं है।

मुझसे प्रेम करनेवालों के लिए मैंने जो जाल बिछाये थे वे मेरे प्रेमवश ही उसमें जकड़े गये थे उनसे उन्हें मुक्त किया जाये और अपने अपराधों से छुटकारा दिलाने का मार्ग सुझाने के लिए मैं आपसे विनती करता हूं।

अनावश्यक और अकारण-अपराध-बोध ही मुझे इस तरह की अर्जी तैयार करने के लिए प्रेरित कर रहा है। मैं इससे पीछे हटने की कोशिश नहीं कर रहा हूं। यह बात कानून का सम्मान करनेवाले एक व्यक्ति होने के नाते मुझे नहीं करनी चाहिए। इस बात को अब मैं भली भांति समझ चुका हूं।

मैं और मेरी ऐसी विचारधारा ही प्रेम को शक्ति देती है और बांधकर रखती है, इस बात को को मैं मानता हूं। मगर स्नेह नाम छुरी का इस्तेमाल मैंने प्यार करनेवालों का खून पीने के लिए किया।

मैं मनुष्य-रूप में इस संसार में जन्मा, यही मेरी दुर्गीत का कारण है क्या? दूसरों के बारे में मैं कुछ नहीं जानता, इसलिए उनके बारे में कुछ कहने की हिम्मत भी नहीं कर रहा।

मैंने जो भी किया था, अच्छे के लिए ही किया था, कृपया इस बात का मुझे विश्वास दिलाने की कोशिश मत कीजिए। मैंने सचमुच अच्छे के लिए नहीं किया था, यह बात मुझे भली भांति ज्ञात हो चुकी है।

कहीं न कहीं तो अपने पैर जमाने होंगे। मगर मुझे अभी तक यह पता नहीं चल रहा

कि गहराई कितनी है। फलस्वरूप मैं तैरता चला जा रहा हूं और थक गया हूं। अत्यधिक खोज करने के बाद मुझे प्राप्त हुई सिर्फ मेरी महापराध-रूपी नुकीली चट्टान।

सुकु की हत्या मैंने इस कारण की है कि मेरे बाद उसकी देखभाल करने वाला कोई नहीं होगा। यही दलील दी है मैंने। मगर इस दलील में क्या दम है, क्या सच्चाई है ? क्या संसार में अच्छे लोग नहीं बसते ? हस्पताल नहीं है, सरकार नहीं है ? यद्यपि सरकार को ऐसी बातों में अधिक दिलचस्पी नहीं होती, मगर कल क्या स्थिति बदल नहीं सकती ? अगर मैं उसे अपने साथ रख भी लूं तो एक वृद्ध, बीमार हृदयरोगी होने के नाते मैं उसका संरक्षण कैसे कर सकता हूं ?

बात यह नहीं है। मेरे न होने पर कोई और व्यक्ति उस पर अपना अधिकार और पूर्ण नियंत्रण रखे, यह बात भी मैं पसंद नहीं करता। उसका जीवन सुकु के लिए कितना कीमती था, यह बात उसके जाने के बाद ही मैं जान पाया।

सुकु का जीवन मैंने नष्ट कर दिया। अनूप के जीवन के चीथड़े उड़ा दिये। मैंने अनजाने ही इन सब बातों के सद्पक्षों का आस्वादन करना चाहा होगा!

फिर क्या हुआ ?

मैं एक ऐसे पानी में तैर रहा हूं जिसका कोई छोर मुझे नहीं मिल रहा। मेरा किया-धरा पूरी तरह से नष्ट नहीं हुआ। नियम विज्ञान और सामान्यबुद्धि के बलबूते आचरण किया गया, पकड़ में न आने वाली निर्मम हत्या का सफलतापूर्वक समापन हो गया। मगर, मैं नहीं बच सका !

एक ऐसा समय आया जब मैं अपने आप पर ही टीका-टिप्पणी करने लगा। अब मेरा अपराधी रूप मेरी नजरों के सामने साफ साफ दिखाई देने लगा है।

मछली पकड़नेवाले कांटे को निगल गयी मछली की तरह मैं आगे बढ़ रहा था। मगर मैं अपनी सीमाओं को पहचान न सका। अनजाने में मैं न जाने कहां चला जा रहा था। हे मेरे प्रिय, समर्थ और विवेकवान मछुवारे! कृपाकर मुझे किनारे लगा दो!

अपराधियों के कठघरे में खड़े कई मुजरिमों को देखकर मुझे, न्यायाधीश को, कई बार ऐसा महसूस हुआ—इसका चेहरा देखने से ही पता चलता है कि इसने कोई अपराध किया है! कई बार ऐसा होता कि उसका चेहरा मुझे किसी नापसंद व्यक्ति से मिलता-जुलता दिखाई देता और इसके फलस्वरूप वह व्यक्ति सजा का पात्र भी बन जाता। तब मैंने यह नहीं सोचा कि वह कितनी गलत बात है। अब दर्पण में जब भी मैं अपना चेहरा देखता हूं तो ऐसा प्रतीत होता है कि तू एक भयंकर अपराधी है!

अब मैं बड़े विनीत भाव से हाथ जोड़कर आपसे एक बार फिर प्रार्थना करता हूं कि आप मेरे चेहरे और मन पर चढ़े मुखौटे को उतार दीजिए! कृपाकर मुझे, मैंने जो अपराध गिनाये हैं, उन पर न्यायसंगत और नियमानुसार विचार करते हुए दंड दें और इस पाप से मेरी रक्षा करें।

उन्नीस

मामाजी में यह सब सोच-विचार और विश्लेषण करने की मानसिक क्षमता है, यह जानकारी अनूप के लिए न उठाये जाने वाले बोझ की तरह भारी-भरकम हो गयी।

कागजों का चौथा बंडल खोलकर पढ़ना शुरू करने से पहले कुछ देर तक अनूप कुछ सोचता रहा, लेकिन उसका सोच-विचार कुछ अस्पष्ट-सा ही था। पहली बार जब वह सागर-तट पर बैठा था, तो अपने मन में हुई अनुभूति को याद करने लगा। सागर—जिसका दूसरा छोर नहीं होता, पूरी ताकत से लहरा रहा था। उस सागर तक मामाजी ही उसे पहली बार ले गये थे। तेजहीन नग्न सूर्य को समुद्र में दूर कहीं अस्त होते उसने तभी देखा था! विदाई लेते सूर्य का जो स्वरूप था, वही आज मामाजी की याद दिला रहा था।

स्नेह-रूपी इंद्रधनुष के बारे में वह सोच रहा था। सतरंगी प्रेम का ख्याल आते ही उसे लगा कि उसके कंठ में कुछ फंस गया है। सती के प्रति उसका जो प्रेम था, वह एक नयी रोशनी में चमकने लगा। उस स्नेह की पवित्रता को आत्मावलोकन करने के बाद ही वह जांच सका। इस परीक्षा में खरा उतरने और पूर्ण सफलता प्राप्त करने के लिए अभी उसे धैर्य और त्याग की कितनी ही सीढ़ियां और चढ़नी हैं, इसको जानने का अवसर भी मिल गया।

अपने गले में स्वयं फांसी का फंदा डाले मामाजी तैयार खड़े हैं, यह बात भी अनूप जान गया। एक नया सूर्योदय होने पर अपनी आंखें मूंदने की जिद लिये तथा सही और गलत को उजागर करने के बाद विदा लेकर निकल पड़ने की इच्छा लिये चले थे मामाजी। किंतु दोनों बातें ही नहीं हो पाईं।

चौथे और आखिरी बंडल में कई जगह अक्षर और वाक्य गलत पाये गये।

बिना किसी शीर्षक के लिखना आरंभ कर दिया गया था—

स्नान करने के लिए नदी में उतर पड़ा था। अंगोछे को पानी में भिगोकर अच्छी तरह निचोड़ लिया। उसमें एक मछली आकर फंस गयी। अब क्या यह कहा जा सकता है कि मैं नहाने नहीं, मछली पकड़ने आया था? नदी में मछली है, यह मैं जानता हूं। वह धोती में फंस सकती है, इस बात का भी आभास है। मगर यह कार्य जान-बूझकर किया गया, क्या कोई यह कह सकता है? स्नान करने आकर मैंने मछली को मार डाला है, इसलिए मुझे मुजरिम कहा जा सकता है। पर क्या यह उचित है?

सभी पहलुओं को सही ढंग से देखने की कोशिश करनी चाहिए।

एक शल्यक्रिया चल रही है। सब तरह की सावधानियां बरती गयी हैं। शल्यक्रिया सफलतापूर्वक खत्म हो जाती है, मगर रोगी मर जाता है, तो क्या यह कहा जा सकता है कि डाक्टर का उद्देश्य रोगी को मारना था? रोगी के रिश्तेदार यदि उसे मुजरिम मान लें, तो क्या

यह न्याय-संगत है ?

रास्ते में चलते हुए नारियल सिर पर आकर गिरता है। राह चलते हुए व्यक्ति को मार डालने के लिए ही वह नारियल गिरने का इंतजार कर रहा था, क्या ऐसा कहना उचित होगा ? यदि नारियल क्षण भर पहले या बाद में गिरता, तो राहगीर नहीं मरता।

चलो, नारियल की कहानी छोड़ देते हैं। नारियल के मन में कोई लक्ष्य था, यह बात असंभव है। एक बच्चा एक आम तोड़ने के लिए पत्थर मारता है। वह पत्थर दूसरी ओर जाते हुए व्यक्ति के सिर पर लग जाता है। राहगीर को जाते हुए बच्चे ने देखा भी होगा, नहीं भी देखा हो सकता है। पत्थर उसके सिर पर गिरेगा, यह बच्चे को पता नहीं है।बच्चे के मन में उसे मारने की इच्छा निहित थी, यह कहने का कोई मतलब नहीं है। इस मृत्यु से बचा भी जा सकता था। फिर भी बच्चे पर हत्या का आरोप नहीं लगाया जा सकता।

सुकु की मृत्यु सती और अनूप के जीवन पर कैसा प्रभाव डालेगी, इसे पहले से देखने में कोई कठिनाई नहीं थी। सती अनूप पर शक करेगी, ऐसा सोचा भी नहीं था। पत्थर आम पर फेंका गया था, मगर वह जाकर गिरा कहीं और। अंगोछा निकाला था नहाने के लिए, मगर उसमें फंस गयी मछली। रोगमुक्ति के लिए शल्यक्रिया की गयी, मगर उसका नतीजा ?

नतीजा क्या निकला, यह सोचकर यहां किसी प्रकार से उद्देश्य की शुद्धता पर शक नहीं किया जाना चाहिए। किसी तरह की कोई मुसीबत किसी पर भी आ सकती है। आपत्ति किसी भी कार्य के साथ जुड़ सकती है। प्रत्येक प्रवृत्ति एक तरह का जुआ है। लक्ष्य तक कोई पूरी तरह पहुंच सकेगा, यह निश्चित करना किसी के बस में नहीं है।

स्पष्ट कहा जाये तो मन में जो उद्देश्य है, वही वास्तविकता है। मेरे अनजाने में कोई उद्देश्य मन में उठे तो वह वास्तविक नहीं है। जिसे मैं जानता नहीं उसका अस्तित्व भी मेरे लिए नहीं है। जो उद्देश्य ही नहीं है उसके लिए मुझे सजा मिले, यह उचित नहीं।

पत्थर मारने पर आम न गिरे और किसी व्यक्ति को लग जाये, तो अपराध-बोध स्वाभाविक है। हारने के लिए जुआ कोई नहीं खेलता। पर यदि ऐसा किया जाये, तो यही मन में अपराध-बोध पैदा करेगा। पत्नी को दांव पर लगाकर जुआ खेल रहे पांडवों का उदाहरण सामने है। लाभ ही होगा, यही सोचकर जुआ खेलना चाहिए। इसके अलावा किसी तरह की जिद से कोई फायदा नहीं होनेवाला। अगर यह लगने लगे कि हारने की संभावना भी बराबर या बहुत अधिक है, तो किसी को भी जुआ नहीं खेलना चाहिए।

बड़े बड़े दांव लगाकर जुआ खेलते हुए हारने पर कष्ट और अपराध-बोध का होना स्वाभाविक है।

सुकु के जीवन को अत्यधिक सोच-विचार के बाद ही खत्म किया गया था। उसके पीछे जरा सी भी बदले, विद्वेष या स्वार्थ-लाभ की भावना नहीं थी। एक ऐसा समय आया, जब मैंने उससे आवश्यकता से अधिक प्रेम किया। इतना स्नेह नहीं करना चाहिए था मुझे।

सत्रह-अठारह बार आकाश में चक्कर लगाने के बाद ही चील अपने आखेट पर झपटती है। सुकु की भलाई, यानी यदि स्पष्ट कहा जाये तो उसकी मुक्ति ही मेरा लक्ष्य था।

चाहे कितने ही साल गुजर जाते, उसक बीमारी ठीक होनेवाली नहीं थी। साधारण व्यक्तियों जैसा नहीं था वह। ऐसा समझने का कोई कारण नहीं था। अपना जीवन स्वयं समाप्त करने लायक भी नहीं था वह। उसे जीवन-मुक्त करना इस दुनिया में मेरे अलावा किसी और के बस की बात नहीं थी। ऐसे शिशुओं को जन्म लेते ही खत्म कर देना चाहिए। असाध्य रोग से तड़पनेवाले रोगी को मार डालना हत्या करना नहीं कहलाता।

अपने आपको मारने से भी अधिक दर्द का अनुभव हुआ था मुझे। आज भी मैं उस दर्द का अनुभव कर रहा हूं। भविष्य में मेरा मन मुझे निरंतर तिल तिलकर मारेगा, यद्यपि शरीर से मैं जीवित रहूंगा, इस बात को मैं जानता हूं।

फिर भी कौन सी शक्ति थी जो मुझे राह दिखा रही थी और आगे बढ़ने का संकेत दे रही थी? उस पावर स्विच को दबाने की हिम्मत किसने बंधायी थी मेरी?

मेरा लक्ष्य केवल सुकु और सती को मुक्त करना था।

जीवन, वह चाहे किसी का भी हो—मनुष्य का या किसी प्राणी का, नष्ट करना हिंसा है और निषिद्ध भी है। मनुष्य जीवन को नष्ट करना खून करने के ही बराबर है। और जब यह स्पष्ट हो जाये कि किसी ने खून किया है तो उसकी सजा मृत्युदंड ही है। अपना जीवन समाप्त करके उस सजा को कार्यान्वित करने का निश्चय किया है मैंने।

सती की गलतफहमी दूर करना जरूरी है। दुख के आघात से उसे सामान्य रूप से मुक्त करना होगा। इसके लिए एक ही रास्ता दिखाई देता है—खून मैंने ही किया है, यह बात उसे बतानी होगी। मगर इससे एक ही झंझट पैदा होगा। वह सोचेगी कि पिताजी स्नेहातिरेक से तथा उसके और अनूप के लिए झूठ बोल रहे हैं। मेरा कहना वह मान भी जाये, तो भी यह बहुत बड़ा आघात होगा उसके लिए। यद्यपि पहले यह सुकु की मुक्ति के उद्देश्य से किया गया था, मगर अब उसके लिए पिताजी ने ऐसा किया है, यह धारणा जीवन भर उसके मन से नहीं निकलेगी और उसे चैन से नहीं रहने देगी। मगर यह छोटा नरक जीवन भर के नरक और अनाथत्व से कहीं बेहतर है। बच्चों को नरक से हमेशा के लिए मुक्त कर दिया, इस बात को पक्का किये बिना कोई पिता आराम से नहीं मर सकता।

आयु के साथ साथ मनोबल का कम होना बड़ा दुखदायी है। मनोभावों के साथ युक्तियां घुल-मिल जाती हैं। युक्ति के नाम पर दुःस्वप्नों का जाल बुनकर उसमें उलझ जाना कोई समझदारी की बात नहीं है।

बच्चों को जी भरकर लाड़-प्यार नहीं किया, यह विचार हरेक मां-बाप के मन में उठता है। जन्म लेनेवाली संतान लड़का या लड़की हो, ऐसी चाहत भी गलत नहीं है। दो पुत्रों के बाद एक पुत्री या इसके विपरीत एक या दो कन्याओं के बाद एक पुत्र की इच्छा करना एकदम जायज है।

अपनी रुचियों और विचारों को अपने बच्चों में उतारने की कोशिश भी एक तरह से ठीक ही समझी जायेगी। अपने जीवन में कमाये हुए धन और संपत्ति को अगली पीढ़ी तक पहुंचाना भी कुछ गलत नहीं।

इसके विपरीत सोचकर अपने मन को दुखी करना किसी न्यायाधीश को शोभा नहीं देता।

वही अदालत सर्वोच्च है, जिसमें वादी, प्रतिवादी और न्यायाधीश—तीनों एक ही व्यक्ति हों। कोई किसी को अच्छी तरह नहीं जानता। अगर वादी, प्रतिवादी और न्यायाधीश एक ही त्रिकोण के तीन कोनों में रहनेवाले अलग अलग व्यक्ति हों, और अपने मन में कुछ और बाहर कुछ और हों तो इन हालात में सुनवाई और निर्णय में भूलचूक हो सकती है। अगर तीनों एक ही व्यक्ति हों तो उन्हें एक-दूसरे से कुछ छिपाने या डरने की आवश्यकता नहीं होगी। ऐसे में सच्चाई सामने आ जायेगी और केवल वाद-विवाद से काम बन जायेगा। वाद-विवाद की इन युक्तियों को ही फैसले में जगह प्राप्त करनी होगी।

किसी परेशानी में वादी प्रतिवादी के लिए भी लड़ने को उद्यत हो जाता है। यह परेशानी वास्तव में कोई परेशानी नहीं है। वादी जब अपने खिलाफ और प्रतिवादी के लिए वाद-विवाद करेगा तो व्यक्ति-निरपेक्ष नीति-न्याय अच्छी तरह लागू हो जायेगा।

एक और परेशानी यह होगी कि आखिरी फैसला करने में कठिनाई आयेगी और समय लगेगा। एक बार फैसला करने के बाद सुनवाई फिर से शुरू करनी पड़ेगी। अपील पर फिर से अविलंब विचार-विमर्श करना पड़ेगा। फिर एक फैसला होगा। फिर एक अपील....। अक्सर यह एक अंतहीन प्रक्रिया हो जाती है।

सुकु का जीवन समाप्त करने से पहले मेरे मन की अदालत में वाद-प्रतिवाद चलते ही रहे। इस बहस के साथ ही साफ साफ फैसला भी दे दिया गया। पुनर्विचार के बाद निर्णय को कई बार रोक दिया गया था।

घटना घटने के बाद पुनरावलोकन करना जरूरी हो गया। सुनवाई शुरू हो गयी। अब तक चल रही है। वादी प्रतिवादी बन गया है और प्रतिवादी एक न्यायाधीश।

इस तरह की सुनवाई का कोई अंत नहीं है, यह बात मैं अच्छी तरह समझ रहा हूं। संभव है, भविष्य में ऐसी विचारधारा सर्वत्र लागू हो जाये और अदालतों की आवश्यकता ही नहीं रहे। अपना फैसला सुनाने के लिए खुद अभियुक्त को ही जिम्मेदार बनाया जायेगा। इस फैसले के पालन के लिए अपराधी को साहस और जिम्मेदारी से भरी एक परिस्थिति का निर्माण करना होगा।

आखिरी फैसला देने में कठिनाई के कारण ही शायद इस तरह की परंपरा कार्यान्वित नहीं हो पाती। आखिरी फैसला देने के लिए एक हद के बाद मानसिक चिंताओं और विकारों पर पूर्ण विराम लगाने की हिम्मत मनुष्य में होनी चाहिए। नहीं तो मनुष्य के आज जो हालात हैं, उन्हें बदलना पड़ेगा। मन के भीतर एक और मन, उसमें एक दूसरा मन—इस तरह हजारों मनों का होना और फिर उन सबको संगठित करके एक ही मन बनाना पड़ेगा।

ये दोनों कार्य असंभव से प्रतीत होते हैं। कारण यह है कि दोनों उन्नति और नवीनता के लिए रुकावट होने से आत्महत्यावत हैं। और इस जीवन का असली स्वरूप यह नहीं है।

इस वजह से मन के भीतर स्थित अदालत के बाहर खुलनेवाले न तो दरवाजे हैं, न

ही खिड़कियां। यह मृत्युपर्यंत इस मन से न बिछुड़नेवाली अदालत है।

इस अदालत में आनेवाली ज्यादातर अपीलें सजा कम करने के लिए नहीं, बढ़ाने के लिए ही होती हैं ! अपील के साथ उपस्थित हुआ अभियुक्त कुछ समय बाद अपनी गलती को पूर्णत: नकारकर एक निषेध पत्रिका लेकर आ पहुंचता है। अभियुक्त को नरकाग्नि में भस्म करने के समर्थन में लड़ रहा व्यक्ति कुछ क्षणों बाद एकदम बदल जाता है और प्रार्थना करता है कि इस धरती पर दया की सबसे बड़ी वर्षा उस पर की जाये। बिना शर्त मुजरिम को छोड़ देने का फैसला करनेवाला न्यायाधीश, एक बार और विचार-विमर्श करने के बाद आजीवन कठिन कारावास देने का फैसला करता है—एक बिलकुल विपरीत फैसला।

इसका एक उदाहरण प्रस्तुत है—एक लाइलाज महाव्याधि से पीड़ित, असह्य वेदना से तड़पते एक रोगी को मार डालना खून करना नहीं है, ऐसा मैंने पहले फैसला दिया था। क्या यह सही है ? प्रत्येक रोगी के मन में यह विश्वास बना रहता है कि कभी न कभी मैं जरूर स्वस्थ हो जाऊंगा। क्या यह सच नहीं है ? जब वह कहता है, 'मैं मर जाता तो अच्छा होता', तब केवल उसके दर्द की तीव्रता ही उसे ऐसा कहने पर मजबूर कर रही होती है। वास्तव में इससे उसके मरने की इच्छा प्रकट नहीं होती। इस रोगी को ही नहीं, किसी भी रोगी को किसी भी अवस्था में मार डालना हत्या ही कहलायेगी। इसमें शक की गुजाइंश नहीं है।

इधर सुकु का मामला कुछ निराला सा है। उसे किसी तरह की वेदना का अनुभव नहीं हो रहा था। न ही उसमें मर जाने की कोई इच्छा निहित थी, न ही उसने ऐसी कोई इच्छा प्रकट की। ऐसी इच्छा प्रकट करने की क्षमता भी उसमें नहीं थी। उसके मन में ऐसी इच्छा कभी उठी भी होगी, ऐसा सोचना भी न्यायोचित नहीं है। मैं इस बात पर विश्वास नहीं करूंगा।

वास्तव में यह पीड़ा मेरे ही मन में थी। उसको देखने और उसके भविष्य के बारे में सोचने पर मन दुखी हो जाता था। यी पीड़ा असह्य हो चुकी थी। इस दुख की समाप्ति जल्दी से जल्दी हो जाये, यह सोचते हुए मैं व्यग्र हो उठा था। इसके लिए दो में से एक काम का होना जरूरी था—या तो वह रोग-मुक्त हो जाये अथवा मौत के आगोश में समा जाये। जब यह निश्चित हो गया कि उसका ठीक होना असंभव है, तो मैंने उसे मार डाला।

आपको अब बात समझ में आ गयी होगी ? अपने दर्द से मुक्त होने के लिए मैंने उसकी हत्या कर दी।

मान लीजिए, मैं एक घातक बीमारी से पीड़ित हूं और असह्य वेदना से छटपटा रहा हूं। मेरे मन में विचार उठ रहा है कि मैं मर जाता तो अच्छा होता। अगर इस समय कोई चुपके से मेरे कान में कह दे, 'ठीक है, तू मर जा', तो क्या मैं इस बात पर ध्यान दूंगा और मरने के लिए तैयार हो जाऊंगा ? नहीं, कभी नहीं। एक नया डाक्टर आता है जो इस आश्वासन के साथ एक नयी दवाई देता है कि मैं ठीक हो जाऊंगा। तो मैं तो यही विश्वास करूंगा कि कल-परसों तक मैं अवश्य ठीक हो जाऊंगा। मैं अपने मन को सांत्वना भी दूंगा। इस हालत

में यदि कोई मुझे मरने की दवा देता है तो वह मेरा जन्म-जन्मांतर का शत्रु बन जायेगा। इस बात में कोई संदेह नहीं किया जा सकता।

मेरी व्यथा की समाप्ति के लिए अगर मेरा मरना जरूरी है, तो भी मैं मरने को तैयार नहीं। इसके विपरीत यदि मेरे हक में किसी दूसरे का मरना जरूरी है, तो उसकी मृत्यु की कामना ही नहीं, उसे मौत के घाट उतारने के लिए भी मैं तैयार हूं। और उसे मार भी डाला मैंने। वह भी पुत्र को, जिसे मैंने बड़ी मिन्नतों और पूजा-पाठ के बाद प्राप्त किया था।

अगर मैं जलता हूं, तुझे जलना होगा, यानी यह जो एक कहावत है कि हम तो डूबेंगे सनम मगर तुझे भी ले डूबेंगे—यही बात यहां लागू हो रही है।

उसका दुख तो मेरा दुख है, परंतु उसकी जिंदगी केवल उसी की है।

लेकिन दूसरों की पीड़ा में मेरा दुखी होना भी सिर्फ स्वार्थ जैसा है। उसका दुख मेरा तभी हो सकता है जब उसके स्थान पर मेरा मन मुझे वहां बैठने पर बाध्य करता है। मेरी दया सिर्फ मेरे अपने प्रति निहित दया मात्र है। इसमें पूजनीय और सराहनीय कोई बात नहीं है।

मैंने पहले जो दूसरा फैसला दिया था वो क्या है? ऐसे शिशुओं को जन्म लेते ही मार डालना चाहिए जो अनाथ, अशरण और दूसरों से स्पर्धा करके आगे निकलकर जीवन बिताने की क्षमता नहीं रखते। उनका पालन करना क्या जरूरी है? आप जरा एक न्यायाधीश का संस्कार तो देखिए! नौ महीने अपने पेट में रखकर, प्रसव-पीड़ा सहकर बच्चों को जन्म देनेवाली माताओं को यह फैसला अगर कोई सुनाये तो उनकी क्या प्रतिक्रिया होगी?

मैं कितना नीच हूं, कमीना हूं—इस वास्तविकता को छिपाने की कोशिश मैं अब क्यों करूं? सुकु के मरने के बाद मैंने एक लालची की तरह भर-पेट खाना खाया और जगह-बेजगह फूहड़ मजाक भी किये।

अगर मैं किसी की हत्या करता हूं तो अपने एक बड़े हिस्से को नष्ट कर रहा हूं। यदि मारा जानेवाला कोई अपना हो तो यह हिस्सा और बड़ा हो जाता है। इसका मतलब यह नहीं है कि जितनी अधिक हत्याएं मैं करूंगा उतना ही ज्यादा मैं खत्म हो जाऊंगा। मैं खत्म नहीं होऊंगा। कारण यह है कि प्रत्येक हत्या के साथ हृदय का एक बड़ा हिस्सा मर गया। अब मेरे लिए मौत नहीं है। मेरी मृत्यु हो चुकी है। यही ख्याल मेरे मन में उस समय उठा था, यही सच्चाई है। यही कारण है कि हृदय-रोगी होने के बावजूद मैंने अधिक चिकनाई और चीनीवाला खाना खाया और अपने रोग की दवाई भी नहीं ली। इस बात ने मेरा धीरज बंधाया और खुशी प्रदान की।

इस समय सफाई वकील सरकारी वकील की ओर से दलीलें दे रहा है। क्या यह ठीक है? हरेक को अपने लिए ही सफाई देनी चाहिए। एक व्यक्ति निरपराधी है, उसे बचाने के लिए सबूत इकट्ठे करने की कोशिश करनी चाहिए। उसके लिए वाद-विवाद भी करना चाहिए। जिस हिस्से में हानि हुई है, उसी को ढूंढ़ ठीक करने का प्रयत्न करना होगा। इसे कहते हैं, 'स्पोर्ट्समैन स्पिरिट', यानी एक खिलाड़ी जैसी भावना। कोई भी अच्छा खिलाड़ी

हार-जीत को समान मानता है। वह अपनी हार पर दुखी नहीं होता और न जीतनेवाले पर रोष प्रकट करता है। जीतनेवाले के लिए भी उसे खुशी होती है। अपने गोल-पोस्ट की तरफ पिछले पैर से गेंद मारकर वह गोल नहीं करता। यह कोई खेल नहीं है और सही बात भी नहीं है। सिर पर तेल लगाना हो तो उसके बजाय कहीं और लगाने का कोई अर्थ नहीं होता। यानी कि जो काम करना है उसे ढंग से ही करना चाहिए। खेल का मैदान छोड़कर खेलने का कोई मतलब नहीं है।

आदमी को युकेलिप्टस के पत्तों की तरह हवा में नहीं झूलना चाहिए, न ही कटे हुए लकड़ी के तने की तरह पानी में बहते जाना चाहिए।

नहीं सुकु, मैंने तुम्हें अत्यंत पवित्र उद्देश्य के लिए मारा था। मैं तुम्हारा मजाक उड़ते देख रहा हूं। मुझे सब कुछ समझ में आ रहा है। अगर तुममें पर्याप्त बुद्धि होती तो मेरी मानसिक दशा को भली भांति समझ पाते।

मैं भी कैसी कैसी बेवकूफियां कर रहा हूं! अगर उसके पास पर्याप्त बुद्धि होती तो मुझे उसकी हत्या करने की आवश्यकता ही क्या थी?

तो क्या सभी बातें अब तक मेरे मन में अस्पष्ट है! सारी बातें न तो अच्छी तरह मैंने पढ़ी हैं, न ही समझी हैं!

शुरू से ही फिर इसकी चर्चा हमें खुलकर और अच्छी तरह करनी पड़ेगी। जहां से शुरू किया था, वहीं से फिर से शुरू करना होगा। नंबरवार फिर से गिनकर देखते हैं। अब चाहे कुछ भी हो, अंतिम निर्णय तक पहुंचना जरूरी है।

सारी दलीलें सुनने के बाद ही कोई निर्णय लिया जा सकता है। सब कुछ तरीके से सोचने पर मैं....'

आखिरी पृष्ठ का अधूरा वाक्य था वह।

कागजों को करीने से बांधकर अनूप कुर्सी पर टेक लगाकर लेट गया।

मामाजी की बड़बड़ाहट और हाथ के इशारों का मतलब अब उसकी समझ में आने लगा था।

कभी वादी, कभी प्रतिवादी और कभी जज बनकर वे पक्ष-विपक्ष में वाद-विवाद कर रहे थे और अपील पर विचार-विमर्श कर रहे थे!

वक्ता और श्रोता दोनों के अपने मन में ही होने से आवाज बाहर नहीं निकल रही थी। हत्या के बारे में ही तो बात कर रहे थे। उन्हें बात को बाहर उजागर करने में संकोच हो रहा होगा। यह तो स्वाभाविक भी है।

अनूप सोच रहा था कि यह बात डा. पुरोहित को बतानी चाहिए या नहीं? मामाजी के मन में जो चोर है, उस की गहराई बहुत ज्यादा है। डा. पुरोहित क्या कर पायेंगे, यह बात सोचकर अनूप परेशान हो रहा था। कोई तीसरा व्यक्ति यह बात न जान सके तो अच्छा है। बताने से अगर मामाजी को कुछ फायदा हो तभी बताना चाहिए। मगर इसकी सभावना दिखाई नहीं दे रही। अनूप ने बताना ठीक नहीं समझा।

यह बात सती को नहीं मालूम होनी चाहिए, यह चिंता भी अनूप को सता रही थी। यों अपने प्रति बनी हुई गलतफहमियां हटाने के लिए कागजों के ये बंडल काफी हैं। मगर ऐसा करना क्या ठीक होगा? एक जख्मी मन के रहस्यों को उस पर खोलना?

अनूप आश्वस्त हुआ कि अब चाहे कोई कुछ भी करे, इससे अधिक आफत आनेवाली नहीं। एक गलतफहमी में पड़ी रहकर वह सारी जिंदगी बरबाद न करे, यही अच्छा होगा। अनूप अच्छी तरह समझ रहा था कि इसमें स्वार्थ-चिंता निहित है। मगर किसी को दुखी किये बिना बचाव का एक रास्ता ढूंढ़ रहा था वह।

देखना यह है कि गांव जाकर सती की मानसिक स्थिति कैसी रहती है। यह भी उसके लिए एक आघात सिद्ध हो सकता है। इस आघात को सहने की शक्ति उसमें है या नहीं, यह जान लेने के बाद ही ये कागज उसके हाथ में थमाये जा सकते हैं।

कागज के बंडलों को ब्रीफकेस में रखकर अनूप बिस्तर पर लेट गया।

बीस

रेलवे स्टेशन पर उन्हें विदा करने आये थे डा. सिंह, मीरा बहन, भट्टाचार्य जी और श्रीमती भट्टाचार्य।

मामाजी उस समय भी पूर्ववत इशारे कर रहे थे और बड़बड़ाते जा रहे थे। दिल्ली रवाना होते समय जिस तरह सुकु खिड़की के पास बैठा था, बिलकुल वैसे ही मामाजी भी बैठे हुए थे।

हस्पताल से निकलकर स्टेशन पहुंचने तक सती मौन ही रही। स्टेशन पहुंचने पर वह सिर्फ मां और मामाजी से बात करती रही। कभी कभी अपने आप से भी बात करती थी। मामाजी से की गयी बातचीत में वह अक्सर 'पिताजी' कहकर संबोधित कर रही थी। मगर यह निरर्थक है, यह बात वह अब पूरी तरह समझ नहीं पाई है, यह अनूप ने ध्यान दिया। यानी कि मामाजी की ओर से कोई प्रतिक्रिया नहीं हो रही थी।

मामाजी को रात की नींद के लिए डा. पुरोहित ने खास तौर पर गोलियां दी थीं। यह मामाजी की सुविधा के लिए नहीं था, बल्कि दूसरों की सुविधा के लिए था।

सती उस दिन सवेरे भी डा. पुरोहित से खोदकर पिताजी की बीमारी के बारे में पूछ रही थी।

झूठी तसल्ली देने को डा. पुरोहित तैयार नहीं थे। मगर सती की आकुलता और दुख देखकर आखिरकार उन्होंने सिर्फ यही कहा, 'जहां जन्म लिया है और पले-बढ़े हैं। वहां की आबोहवा में पहुंचकर शायद उनकी बीमारी कम हो जाये!'

इस कथन ने एक हद तक सती को आश्वस्त भी कर दिया था।

सती ने डा. पुरोहित से अपने पिता की अस्वस्थता का कारण भी पूछा था।

डाक्टर पुरोहित सहानुभूतिपूर्वक मुस्कुराये थे, 'यह बात मुझे कहनी तो नहीं चाहिए, सती देवी! आप को इस बारे में जितना ज्ञान है, उसके अधिक मैं भी कुछ नहीं जानता।

यह वार्तालाप मामाजी के कमरे में हुआ था। कमरे में रखे सामान को करीने से रखने में व्यस्त थीं मां। मगर बीच बीच में वह मुझे और सती को देख रही थीं। इस बात पर मैंने गौर किया था।

अनूप अच्छी तरह जानता था कि सती उसे ही पूर्णतया दोषी समझ रही है। उसके मनोभाव को वह उसके चेहरे पर साफ साफ पढ़ रहा था। उसके चेहरे पर ये भाव थे—

अनूप दुर्भावना से एक पिता और उसके बच्चों को दिल्ली लेकर आया। बड़ी होशियारी से बनाई गयी योजना से निर्दयतापूर्वक उसने सुकु की हत्या की और अब अपनी गलती

छुपाकर सफेदपोश और इज्जतदार बना खुल्लम-खुल्ला घूम रहा है। यह सब किसलिए किया गया, यह मैं जानती हूं। सुकु की मौत का सदमा बर्दाश्त न कर पाने से पिताजी का दिमाग खराब हो गया है....नहीं, कभी नहीं। यह बात इस जीवन-काल में सोचनी भी नहीं है।

अनूप ने ही नहीं, डा. सिंह और मीरा बहन ने भी सती के चेहरे पर लिखी यह बात स्पष्ट पढ़ी होगी।

सती पिताजी के पास बैठी हुई थी। उसने अपने बाएं हाथ से उनका दाहिना हाथ पकड़ रखा था।

अनूप बाहर प्लेटफार्म पर खड़ा हुआ था।

सती और मामाजी के सामने वाली बर्थ पर खिड़की के पार बैठी थीं मां।

मां के चेहरे पर असीम दुख झलक रहा था।

डा. सिंह ने खिड़की की सलाखों के बीच से झांककर सती के चेहरे पर लिखा सब सही सही पढ़ लिया था। फिर उन्होंने अनूप से हाथ मिलाते हुए कहा था, ''विश यू आल द बेस्ट!'' यानी मैं तुम्हारे लिए सर्वोत्तम की कामना करता हूं। फिर अपनी आवाज धीमी करके कहा था, ''आई रियली मीन आल दैट यू विल नीड दैट एंड मोर!'' यानी मैं तहेदिल से कह रहा हूं कि तुम्हें इसकी जरूरत पड़ेगी इससे ज्यादा की भी।

अनूप ने फीकी हंसी हंसते हुए कहा था, ''धन्यवाद!''

भट्टाचार्य जी ने पूछा था, ''कब लौटने का इरादा है?''

भट्टाचार्य जी स्वभावत: हर बात जोर से बोलते थे। उनकी बात सती ने अवश्य सुनी होगी। कारण, सती ने अपना सिर हल्के से घुमाया भी और अनूप की ओर पूरी तरह मुड़े बगैर उसके जवाब को ध्यान से सुना था।

''इन्हें घर पहुंचाने के तुरंत बाद वापस आ जाऊंगा।''

रेलगाड़ी की लंबी सीटी गूंज उठी थी। अनूप ने दरवाजे पर खड़े होकर हाथ हिलाया ही था कि गाड़ी की सीटी के पीछे गार्ड की सीटी बजी और गाड़ी चल पड़ी थी।

उनकी यह लंबी यात्रा यद्यपि बाहर से देखने में शांत थी, लेकिन भीतर से एक विलाप-यात्रा की तरह दुख से भरी हुई थी।

खरीदे गये अखबारों और पत्रिकाओं पर, और उन्हें पढ़ने का बहाना करते हुए अनूप ने कुछ समय बिता दिया। केबिन उसे एक जेलखाने की तरह लग रहा था।

ऊपर बर्थ पर रखे ब्रीफकेस पर बार बार अनूप की नजर जा रही थी। उस बर्थ को किसी ने भी इस्तेमाल नहीं किया।

सती मामाजी के पास ही लेट गयी। मां निचले बर्थ पर लेटी।

रात को ऊपर वाले बर्थ पर जाकर एक अर्ध-स्वाधीन दुनिया में पहुंचने का अनुभव हुआ अनूप को। यहां एक लंबी सांस तो ले सकता हूं। चाहूं तो थोड़ा रो भी सकता हूं। मगर ऐसा कुछ भी नहीं किया अनूप ने। जो होगा सो देखा जायेगा, ऐसा भी एक रुख अपनाया जा सकता है। यह तसल्ली भी उसे थी कि इस तिलिस्म को खोलने की चाबी उसके ब्रीफकेस

में है।

निचले होंठ को दांतों से दबाये और बिना किसी की ओर देखे यात्रा समाप्त होने तक सती बैठी रही। ठोड़ी को हथेली पर, कोहनी को घुटनों पर और आंखों को जमीन पर गड़ाये खिड़की से बाहर देखती रही थी सती और एक हाथ से मामाजी का हाथ पकड़े बैठी रही, मानो उसे डर हो कि कहीं पिताजी खिड़की से कूदकर बाहर न निकल जायें।

कंपार्टमेंट में लाये गये भोजन को ही सती ने मामाजी को खिलाया। दवाइयां भी उसने अपने हैंडबैग में रख ली थीं।

डा. सिंह और मीरा बहन कुछ फल लेकर आये थे, लेकिन सती ने उन्हें छुआ तक नहीं। मामाजी को भी उसमें से कुछ नहीं दिया।

असल में उसके मन में यह डर बना हुआ था कि उसके एक मात्र बंधु-पिताजी को भी अनूप और उसके मित्र मार न डालें!

यह सब देख-समझकर ही शायद मां लंबी आहें भरकर चुप रह जाती थीं।

अनूप चाह रहा था कि यह यात्रा जितनी जल्दी हो सके, खत्म हो जाये। यहां पास बैठकर भी दूर बने रहने की यह परिस्थिति खत्म होनी चाहिए। मन से दूर हुए लोगों को इस तरह बैठने में कुछ हो या न हो, यह निश्चित है कि एक तरह से बदला लेने का सुख मिलेगा। लेकिन दूसरी ओर प्रेम-भरा हृदय लेकर और सब कुछ जानते हुए भी चुपचाप बैठने वालों की हालत क्या होगी?

जैसे जैसे गंतव्य नजदीक आता जा रहा था, अनूप का उतावलापन बढ़ता जा रहा था। यह उतावलापन भी ऐसा था, जैसे एक मजदूर भारी बोझा सिर पर ढोये चला जा रहा हो और कुछ दूर एक दुकान देखकर उसे नीचे उतार देना चाहता हो, क्योंकि उसके साहस का अंतिम कण भी भाप बनकर उड़ चुका है।

किसी को भी अपने आने की खबर नहीं दी थी। इसलिए कोई इंतजार भी नहीं कर रहा था। मगर सती के चेहरे पर ऐसा भाव था, जैसे एक नदी को सागर से मिलने पर होता है। चेहरे पर एक ऐसी शांति उतर आयी थी जो पहले नहीं थी। क्षोभ और संताप के ऊपर और उनके बीचोबीच शांति की लहरें उठती हुई दिखाई दे रही थीं। अनूप ने एक लंबी सांस ली।

इस यात्रा के बीच में यदि कोई ऊंच-नीच हो जाती तो न जाने क्या होता, यह चिंता एकाएक अनूप के मन में उठने लगी।

सोचते ही वह हल्के से चौंक गया।

छोटी सी पहाड़ी से उतरकर टैक्सी गली से होती हुई घर के बगीचे के पास रुक गयी। मानवविहीन वह बड़ा सा घर एक उपेक्षित पुरातत्त्व विभाग के खंडहर के समान प्रतीत हो रहा था।

नाणियम्मा गाय को गोशाला में बांधने के लिए जा रही थी। आवाज सुनकर गाय को बांधे बगैर, खुला छोड़कर दौड़ी आयी। उसके पीछे, गले में बंधी रस्सी समेत गाय भी आ

रही थी। सती ने पिता को पकड़कर धीरे से उतारा।

मां अपने आप उतरी, आगे की सीट से अनूप भी उतर पड़ा।

घर पहुंचने पर मि. मेनोन को अपने आसपास का कोई बोध नहीं था। उनके मुख पर कुछ भी पहचानने के लक्षण नजर नहीं आ रहे थे। पूर्ववत हाथों का इशारा और बड़बड़ाहट बेरोकटोक चलती ही रही। सामान उतारकर रख रहे टैक्सी-ड्राइवर से अनूप ने पूछा, ''क्या तुम दस मिनट इंतजार कर सकते हो?''

''साहब, क्या आप वापस चलेंगे?''

दोनों की बातें सुनकर मां ने जवाब दिया, ''नहीं, नहीं। अभी नहीं जाना है।'' फिर अनूप से कहा, ''नहा-धोकर, कुछ खा-पीकर थोड़ी देर आराम कर लो। फिर चले जाना। दो-तीन रातों से तुम सोये भी तो नहीं।''

''क्या यह जरूरी है?'' इस दृष्टि से अनूप ने मां की ओर देखा।

मां ने कहा, ''हां, यही ठीक रहेगा।''

अनूप ने टैक्सी-चालक को पैसा दे दिया। उसे थकान थी, यह बात वास्तव में ठीक ही थी।

रोने को उद्यत नाणियम्मा मामाजी के हाव-भाव देखकर विस्मय से ताकने लगी।

मां ने कहा, ''बड़े भैया की तबीयत कुछ ठीक नहीं है।''

चारों ओर से अड़ोस-पड़ोस के लोग आने लगे। तब तक सती मामाजी को अंदर ले जा चुकी थी।

अनूप ने ब्रीफकेस के ताले के नंबर मिलाये। फिर उसे खोलकर एक तौलिया निकाला। एक धोती निकालकर पहन ली और ब्रीफकेस का फिर से ताला लगा दिया।

लाला पत्थरों की सीढ़ियोंवाले तालाब का पानी बहुत ठंडा था। दिल खोले जोर से हंस रहे कमल के फूल अनूप के स्पर्श से हिले तो पानी भी तरंगित हो उठा। वे तरंगें सीढ़ियों से टकराकर मधुर स्वर करने लगीं।

स्नान करके घर पहुंचने पर उसे खाने को मिला—पानी और चावल मिली कंजी, छोटी अमियों का राईवाला अचार और अंगारे पर भुना हुआ पापड़।

जब मां खाना परोस रही थीं, तब नाणियम्मा आंगन के एक कोने में सिमटी, अपराध-बोध से परिपूर्ण खड़ी सिसकियां भरती हुई कह रही थी, ''कोई आयेगा, मुझे मालूम ही नहीं था। इसलिए कुछ तैयारी भी नहीं कर पाई।''

दक्षिणी दालान में बिछे तख्त पर मां ने एक चटाई और तकिया रख दिया था। चंवर की तरह हिलते-डुलते नारियल के पत्तों को देखते हुए अनूप आराम से लेटा रहा।

वही चिर-परिचित अंतरिक्ष, हजारों यादों का एक घरौंदा! मगर, उस समय मौजूद दो चीजें आज नहीं थीं।

मन की शांति और स्नेह नामक ये दोनों वस्तुएं जल-भुनकर राख हो गयी थीं, उनका पौधा सूख गया था।

स्नान करने से थकावट तो कम नहीं हुई, मगर निद्रा का आवेग बढ़ने लगा। अनूप के लिए स्नेहशून्य यह घर ऐसा हो गया था, जैसे आत्मा और जीवनविहीन एक निर्जीव शरीर।

उसके मन में केवल एक ही इच्छा थी कि जितनी जल्दी हो सके, यहां से भाग लिया जाये। यह इच्छा उसके मन में तब भी निहित थी, जब उसने निद्रा के मंडप में प्रवेश किया।

दोपहर को मां ने उसे जगाया। उसने दही-भात मिलाकर खाना खाया। घर में और कुछ नहीं था। दही पूर्ववत स्वादिष्ट ही था। अनूप ने मन ही मन कहा—यह घर ऐसा लग रहा है मानो कोई शरीर पर एक भी खरोंच खाये बिना मर गया हो!

खाना खाने के बाद अनूप ने अपने कपड़े बदले और एक सिगरेट जलाई। मां ने प्रश्नसूचक दृष्टि से अनूप की ओर देखा। अनूप ने उनकी ओर देखे बगैर कहा, ''अब मेरा यहां ठहरना बेकार है। अगर मैं अभी चल पड़ूं तो एरनाकुलम से दूसरा विमान पकड़ सकता हूं।''

ब्रीफकेस उठाकर वह दालान में चला गया। मामाजी सुकु के कमरे में बैठे हुए थे। मां अनूप के साथ थीं और सती मामाजी के साथ। नाणियम्मा को पता चल गया था कि अनूप जाने की तैयारी में है, इसलिए वह कमरे के दरवाजे के आसपास मंडरा रही थी।

मां ने कहा, ''मामाजी की चरणवंदना करके जाना।''

विदा नहीं ले पा रहा था, और विदा लिये बिना जा भी नहीं सकता था। ऐसा भी एक समय आ सकता है जब विदा लेने की जरूरत ही न पड़े। हो सकता है, मामाजी को वह फिर जीवित न देख पाये।

अनूप ने मामाजी के चरण-स्पर्श करके पग-धूलि माथे से लगायी।

अचानक अनूप के मन में यह ख्याल आया, 'अब शायद मैं इस घर में कदम भी न रखूं।'

सबसे बेहतर यही होगा कि वह अब किसी चीज का इंतजार न करे।

अनूप ने मुड़कर मां से पूछा, ''तो फिर?''

''तो फिर क्या.... ? तुम होकर आओ।''

''और मां, तुम..... ?''

''यहां अब कौन है? उन लोगों में से कोई आ जाये तब तक मैं यहां.... ।''

''अगर किसी चीज की जरूरत हो तो खबर देना।''

''पहुंचते ही चिट्ठी लिखना। भूलना मत।''

खिड़की के पास खड़े मामाजी के निकट सिर झुकाये खड़ी थी सती।

ब्रीफकेस खोलकर अनूप ने मामाजी के कागजों के बंडल निकाले। कहा, ''मामाजी ने आखिरी बार लिखा था यह सब।''

सती ने चेहरा उठाया और उसके पास आ पहुंची। अनूप ने वे बंडल सती की ओर बढ़ाये, ''बहुत सारी बातें हैं इनमें। पढ़कर देख लेना। मगर, और किसी को दिखाने की जरूरत नहीं है।''

यह यात्रा शुरू होने के बाद पहली बार सती ने अनूप के चेहरे की ओर देखा। अश्रुकणों से भरी उसकी आंखों में हैरानी झलक रही थी।

''मैं आऊंगा।'' अनूप ने विदा ली। कोई उद्देश्य नहीं था, पर मुंह से न जाने कैसे यह बात निकल गयी!

'मैं जा रहा हूं', ऐसी बात कही जानेवाले व्यक्ति को कहनी भी नहीं चाहिए। इसे विदा के विरुद्ध माना गया है।

सती बंडलों को खोलकर देख रही थी, अतः अनूप की पूरी बात उसने नहीं सुनी, ऐसा प्रतीत हुआ।

ब्रीफकेस लेकर आंगन की सीढ़ियां उतरने लगा अनूप।

दोपहर को गर्मी थी। हवा का चलना भी बंद हो गया था, मानो वह भी सुषुप्तावस्था में लीन हो गयी हो। फिर भी गली में बाड़ के उस पार पर उग रही जंगली अरबी के पत्ते और कोमल कोंपलें मानो 'ऐसा मत करो, ऐसा मत करो' कहते हुए सिर हिला रही थीं।

अनूप पीछे मुड़कर देखे बिना चलता ही रहा।

ऐसा लग रहा था जैसे वह एक युग से निकलकर दूसरे युग की ओर बढ़ रहा है।

सिर्फ कुछ ही दिनों पहले मां को लेकर अनूप यहां आया था। तब मन में सती का ही चेहरा था। इस बार तो वह कम से कम एक अनुकूल उत्तर देगी, यह निश्चित था। एक जिंदगी को पुष्पित-पल्लवित करने की व्यग्रता लेकर वह इस टीले से नीचे उतरा था।

लेकिन अब देखो क्या हुआ? सब इस तरह उलटा-पुलटा हो गया!

कागजों के बंडल पढ़ने के बाद सती की मनःस्थिति और प्रतिक्रिया क्या होगी, यह बात अनूप ने अपने आप से पूछी। यही प्रश्न उसने अपनी यात्रा में भी कई बार दोहराया था।

—यह सवाल न ही किया जाये, तो ही ठीक है, ऐसा अनूप ने स्वयं को डांटकर कहा— उसके मन के भाव चाहे कुछ भी हों, मेरे मन में तो एक ही भाव है : उससे मैं तब भी प्यार करता था, आज भी करता हूं। मेरी इच्छा यही थी कि मैं उसके साथ अपना घर-संसार बसा लूं। अब भी मुझे विश्वास है कि कभी न कभी मैं अवश्य घर बसा पाऊंगा, चाहे इसके लिए कितने ही साल इंतजार क्यों न करना पड़े।

—उचित यही है कि सती को अपना निर्णय लेने की स्वतंत्रता दी जाये। मैं उससे प्रेम करता हूं इसका यह अर्थ नहीं कि मैं कोई जोर-जबर्दस्ती करके अपनी बात मनवा लूं। इसकी न तो मुझे चाहत है, न ही मुझे ऐसा करने का अधिकार है।

—अब किसी और लड़की के बारे में सोच भी नहीं सकता।

—सारी उम्र बड़बड़ाने और हाथों से इशारा करने के लिए बाध्य एक पिता के साथ, उस कमरे की मद्धिम रोशनी में बैठकर वह स्वयं सोच-विचारकर निर्णय ले। मामाजी के ठीक होने के बाद सही, यहां तक कि उनके मरणोपरांत सही!

इस पर भी उसे लगा कि यदि सही वक्त नहीं आया और उसका मन नहीं बदला तो भी ठीक है। मैं यही तसल्ली कर लूंगा कि जिसने एक बार यह स्नेह-रस चख लिया, उसे

जीवन भर के लिए तो उसका स्वाद पर्याप्त ही है। अनूप अपने पैरों को घसीटकर टीला पार करने लगा।

अनूप को ऐसा लग रहा था कि चमचमाता, खिला हुआ सूरज आभा बिखेरता हुआ एक दिन काले बादलों के छा जाने से धुंधला पड़ गया है। और अस्त होने लगा है।

टीले से उतरकर एक तिराहे पर वह बस की प्रतीक्षा करने लगा। बरगद के पेड़ के नन्हें कोमल पत्ते मामाजी की तरह बड़बड़ा रहे थे।

आती हुई पहली बस में वह चढ़ गया। दो बार घंटी बजाकर बस, मानो कुछ भी नहीं हुआ, आगे बढ़ गयी।

''एक एरनाकुलम।''

''क्या रेजगारी नहीं है?''

उसका मन कह रहा था : 'मेरे पास तो सब कुछ थोक में ही है। यही तो परेशानी की बात है!' निस्सहाय भाव से धीरे से बोला, ''माफ करना, नहीं है।''

धूप और गर्मी से उबलते रास्ते में भरी उमस की लहरों को काटती हुई दौड़ी चली जा रही थी बस। न जाने कहां कहां वह रुकी। न जाने कौन कौन चढ़ा और उतरा, अनूप को कुछ पता नहीं।

देर से ही सही, मगर सौभाग्य से फ्लाइट में एक सीट मिल गयी। अनूप याद कर रहा था कि मेरे जीवन में भी सब कुछ मुझे इसी तरह मिला है। जब नहीं मिलना लगभग निश्चित होता है, तभी हर चीज मिलती है।

विमान ने जब उड़ान भरी तो सूरज-ढली धूप मद्धिम पड़ने लगी थी।

विशाल झील के हरे-भरे द्वीप छोटे दिखाई देने लगे थे। समुद्र की विशाल लहरें छोटे से बुलबुले बन गयी थीं। बड़ी बड़ी नदियां छोटी नाली जैसी लगने लगी थीं।

नीचे दिखाई देनेवाले मकान और खेत किसी तैलचित्र के समान प्रतीत हो रहे थे।

अपने बोधमंडल में एक लघुता का भाव उत्पन्न हो गया। सब कुछ अपने सही स्वरूप में, पूर्णता को प्राप्त किये दिखाई देता, तो मन को तसल्ली हो जाती।

नीचे एक नजर में दिखाई देनेवाले हजारों घरों में कितने कितने लोग कितने ही प्रश्नों को लिए एक ही समय मल्लयुद्ध कर रहे हैं। अपने अपने प्रश्नों से जूझ रहे हैं। केवल अपनी चिंता करते रहने से चिंता का भार अधिकाधिक बढ़ता जाता है और संभाले नहीं संभलता।

चाहे भार हो या न हो, किसी को भी दोष देने या किसी से शिकायत करने से कोई फायदा नहीं होनेवाला।

पगडंडियां गुजरती जा रही हैं। लंबी होती जा रही हैं। अपना चाहे कोई हो या न हो, छोर का पता लगे बगैर फैलती जा रही हैं। चाहे कोई लक्ष्य हो या न हो, चलते ही जाना होगा। आगे बढ़ रहे इन पथिकों में दौड़नेवाले भी होंगे, लंगड़ानेवाले भी होंगे, और थके, कमजोर पांवों को घसीटकर हांफते हुए लोग भी। किसी भी व्यक्ति के सिर पर रखा हुआ भार कोई दूसरा व्यक्ति नहीं संभाल सकता। टेढ़े-मेढ़े ये तमाम अलग दिखाई दे रहे रास्ते

अचानक एक-दूसरे से मिल जाते हैं, बिछुड़ जाते हैं; और फिर....

अब, कब, कैसे और कहां—यह तो कोई ठीक-ठीक नहीं बता सकता।

ट्रे लेकर आयी विमान-परिचारिका मुस्कुराई। पूछा, ''क्यों, क्या तबीयत ठीक नहीं है? चाय या कॉफी लेंगे?''

''शुक्रिया!'' अनूप ने कहा, ''कुछ भी चलेगा।''

उसने मन ही मन दृढ़ निश्चय कर लिया था : 'हां, कुछ भी हो सकता है। विश्वास करो तो भला ही होगा, भले के लिए ही होगा।'

दि सेन्ट्रल इलैक्ट्रिक प्रेस, ए-12/1 नरायणा इन्डस्ट्रियल एरिया-I, नई दिल्ली 110028 द्वारा मुद्रित